श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान्	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२		वर्णीसंघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	,,	मंत्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन, रईस	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनसंघी,	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन	,,
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	,,

श्रीमान् सेठ फूलचन्द वैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
,, सुखवीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत
,, गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा,	लालगोला
,, दीपचंद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इंजीनियर,	कानपुर
,, मंत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
,, संचालिका, दि० जैन महिलामंडल, नमक की मंडी,	आगरा
,, नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
,, झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
,, रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
,, मोल्हड़मल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
,, बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन.	शिमला
,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन.	सदर मेरठ
,, दिगम्बर जैनसमाज	गोटे गाँव
,, [illegible] जैन, गंजगंज,	इटावा
	रुड़की

प्रकाशनीय

हर्षकी बात है कि अध्यात्मयोगी वर्णी जी द्वारा उपदिष्ट 'धर्म प्रवचन' के तीसरे संस्करणके प्रकाशनका सौभाग्य हमें प्राप्त हो रहा है। गत दो संस्करणोंमें प्रस्तुत रचनाकी पाँच हजार प्रतियाँ प्रकाशित की गईं और प्रबुद्ध समाजने जिस प्रकार उसका स्वागत और सदुपयोग किया, उससे प्रेरित होकर ही पुस्तकका तृतीय संस्करण धर्मप्रेमी पाठकोंके कर-कमलोंमें प्रस्तुत है।

यद्यपि 'धर्म-प्रवचन' का आधार मुख्यतया कविवर रयधूकृत 'दशधर्म जयमाल' है, तथापि श्रद्धेय क्षुल्लक जी महाराजकी अनुपम आत्मसाधना तथा गहन शास्त्र-चिन्तनशीलताने इस रचनाको अत्यन्त रोचक सुबोध और हृदयग्राही बना दिया है। जयपुरमें दशधर्मोंके सम्बन्धमें जो प्रवचन पूज्य श्री ने दिये थे और आगराके चातुर्मासकी अवधिमें भी जो प्रवचन दिये गये, इस संस्करणमें उनका सम्मिलित और परिवर्द्धित रूप भी अपनी उपयोगिता रख रहा है। सन् १९७१ के दश लक्षणपर्वमें सदर मेरठमें वर्णी जी के सार्वजनिक प्रवचन हुए, उनका भी इसमें संकलन कर दिया है।

आशा है, स्वाध्याय प्रेमी पाठक प्रस्तुत रचनासे पूरा लाभ लेंगे।

१८५ ए०, रणजीतपुरी,
सदर मेरठ (उ० प्र०)

खेमचन्द जैन सर्राफ,
मन्त्री,
श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी

'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः प्राप्स्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरसमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविशासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥

धर्म प्रवचन

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

उत्तम क्षमा

आजसे दशलाक्षणी पर्व प्रारम्भ हो रहा है। ये दशलाक्षणी पर्व प्रति वर्ष आते हैं। मान लो धर्मकी याद दिलाते आते हैं, इनका पर्युषण भी होता है, अर्थात् आत्माकी प्रीतिपूर्वक सेवा करना सो आत्मसेवाका दिन है। वैसे तो प्रत्येक मनुष्यको आत्मसेवाके इस नर-जीवन रूप पर्वपर ध्यान रखना चाहिये। फिर भी कुछ कारणोंसे इन भादोंके १० दिनोंमें गृहस्थ लोग अपना अधिक समय दे पाते हैं, इसलिए इन दिनोंमें ऐसी स्पीड कर ली जाय कि वर्ष भर को एक नया नियम बन जाय। यह पर्व भादों सुदी पंचमीसे लगता है। इसमें एक कल्पना हो सकती है कि जब भी प्रलयकाल होता है तो किसी वर्षके अन्तमें अर्थात् आषाढ़के अन्तमें वर्ष समाप्त होता है और सावनके महीनेसे नया वर्ष लगता है।

यद्यपि अनेक प्रकारसे और अनेक सम्वतोंके आधारसे कोई चैत सुदीसे वर्ष मानते हैं और कोई आषाढ़से ही मानते हैं। अंग्रेजीमें अन्य तिथियोंसे मानते हैं, पर प्राकृतिक वर्षका प्रारम्भ सावनसे होता है। जब प्रलयकाल होता है सो आषाढ़ सुदी पूर्णिमाको वर्ष मानते हैं और सावन बदीसे नया वर्ष मानते हैं। सावनसे लेकर ४९ दिन तक ये सुवर्षायें चलती हैं और ४९ वां दिन समाप्त होता है भादों सुदी चौथको। जब सुवृष्टि हो चुकती है तब जीवको उल्लास होता है और धर्मके वास्ते विशेष प्रभावना जगती है। यह पर्युषण पर्व भाद्र सुदी पंचमीसे माना गया है। यह दशलाक्षणी धर्म क्या है, कौन-कौन है, इसको अंग पूजामें क्षमा धर्मसे पहिले बताया है।

उत्तमखम मद्दउ अज्जउ सच्चउ पुण सउच्च संजम सुतउ।
चाउ वि आकिंचणु भवभय वंचणु बंभचेर धम्मजु अखउ॥

दशलक्षणधर्म व प्रथम उत्तमक्षमाधर्म—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य,

संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य तथा ब्रह्मचर्य—ये १० धर्म हैं। धर्म कहते हैं स्वभावका। यह आत्माका स्वभाव है। उन दसों उपायों द्वारा हम आत्माके स्वभावकी प्राप्ति कर सकते हैं। इसलिए यह दश धर्म कहलाता है, इसका वर्णन प्रतिदिन एकका आयगा। आज उत्तम क्षमा का दिन है इसलिए उत्तम क्षमाके विषयमें यह वर्णन आ रहा है। आज उत्तम क्षमाका दिवस है। क्षमा आत्माका गुण है। आत्मामें विकार न आकर सत्य शांति रहना क्षमा है। क्षमा क्रोधके कितने ही साधन हों उनके निमित्तसे हृदयमें विकार भाव नहीं आने देती। ऐसी क्षमा का धारण करना क्षमा, क्षमा है और इसका धारण सम्यग्दर्शनपूर्वक हो तो वह उत्तम क्षमा है। ऐसा न समझना कि गृहस्थोंकी क्षमा, क्षमा है और साधु संतोंकी क्षमा उत्तम क्षमा होती है। साधु जनोंके सर्वांश जैसी उत्तमक्षमा होती है, उस जातिकी सम्यग्दृष्टि गृह जालमें पड़े हुए गृहस्थ जनोंके एकदेश उत्तम क्षमा होती है।

उत्तमखम तिल्लोयहिसारी, उत्तमखम जम्मोदहितारी।
उत्तमखम रयणत्तयधारी, उत्तमखम दुग्गइदुहहारी॥

उत्तमक्षमाकी त्रिलोकसारता—उत्तमखम तिल्लोयहि सारी—उत्तम क्षमा तीन लोक का सार है। जगतके अनेक संकट मिटानेका कोई शरण है तो विषय कषायोंका अभाव है। कषाय चार प्रकारके हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ। सो क्रोधके अभावमें क्षमा गुण प्रकट होता है, मानके अभावमें मार्दव, मायाके अभावमें आर्जव और लोभके अभावमें शौच धर्म प्रकट होता है। यहां उत्तम क्षमाके सम्बन्धमें कहते हैं कि यह गुण तीन लोकमें सार है। [illegible] निराग आत्मस्वभावकी दृष्टि रखकर स्वयं सहज स्वरूप हो जाना [illegible] क्षमा है। यह क्षमा अपने आपके कल्याणके लिये आती है, दूसरेके कल्याणके लिए [illegible]।

[illegible] स्वयंपर क्षमाकी शक्यता—वास्तवमें अपने [illegible] ही यह क्षमा कर [illegible] दूसरे आत्माको न कोई क्षमा कर सकता है और न दूसरेके क्षमा करनेसे [illegible]। यह तो रूढ़ि है कि हमसे कोई अपराध बन जाय तो हम उससे [illegible] तो क्षमा हो गई, परन्तु [illegible] तो सही कि [illegible] सकता है अथवा [illegible] क्षमा कर सकते हो? [illegible] है। [illegible] हो गया, उससे मैं [illegible] तो मैं [illegible] धर्मका मार्ग [illegible] नहीं होगा। हम [illegible]? क्षमा तो [illegible]। क्षमा तो

सच्ची यह है कि यदि कोई अपराध किया गया तो इस अपराधको ही क्षमा कर दें। निरपराध ज्ञानस्वभावके अभिमुख होकर अपराधको फिर न होने दें।

अपनी भलाईके लिये दूसरोंपर क्षमाकी कृति—परमार्थसे जो पुरुष दूसरोंको क्षमा कर देता है वह अपना ही भला करता है। इस जगतमें अनन्त जीव हैं। ऐसा नहीं है कि गृहस्थकी क्षमा तो क्षमा कहलाती है और साधुकी क्षमा और कुछ कहलाती है। किन्तु जो सम्यक्त्वसहित क्षमा है उसको कहते हैं उत्तम क्षमा और जो सम्यक्त्वरहित क्षमा है उसको कहते हैं लौकिक क्षमा। यह अपना उपयोग अपने आपके ज्ञानमय प्रभुपर कितना संकट डाल रहा है? पंचेन्द्रियके विषयोंमें लगकर बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि देकर यह अपने आपका कितना विनाश कर रहा है? जिस विनाशके फलमें जीव मरकर ८४ लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता है। तो इस अपने आपके प्रभुपर महान् अन्याय हो रहा है, इस अन्यायको मिटाना और इन निरपराधोंकी क्षमा करना, शुद्ध शांतस्वरूप ज्ञानात्मक आत्मतत्त्वकी दृष्टि करना यही सर्वोत्तम क्षमा है। इस क्षमाके होनेपर जब बाह्य जीवोंसे व्यवहार चलता है तब उन सब जीवोंपर यह क्षमा व्यवहार रखता है। दिखावटी क्षमासे आत्माको लाभ नहीं है। एक ज्ञानघन प्रभुकी आपत्तियां दूर करनेके लिये, दूसरे जीवोंका संक्लेश परिणाम हटानेके लिए जो लौकिक और पारमार्थिक उपाय किया जाता है वह वास्तवमें क्षमा है। यों तो कोई सोचे कि क्षमा या क्षमाके दस्तूरको कोई निभा दे तो कुछ आत्माकी उन्नति हो जाय, सो नहीं हो सकता है।

अपने उपशम भावमें ही वास्तविकी क्षमा—हमारा किसीने अपराध किया, उसे हमने क्षमा कर दिया, ऐसा भाव करे तो परमार्थसे इस भावमें भी विकल्प ही तो किया। यदि हम दूसरेसे क्षमा मांगनेमें ही रहे और पुनः पुनः वही अपराध हम करते रहे तो वह क्षमाकी दिशा भी नहीं, बच्चोंका खेल है और भाई आजकल प्रायः ऐसा ही होता है। वहाँ हम समझ बैठते हैं कि हमने व इसने क्षमा मांग ली, चलो, छुट्टी हुई। दूसरेसे क्षमा मांगो, दूसरेको क्षमा करो या दूसरेके प्रति क्षमा याचना करो इत्यादि विकल्पभावोंका बढ़ाना भी तो उत्तम क्षमाका लक्षण नहीं है। विकल्पको तो धर्म नहीं कहते। इसमें तो विकल्प भाव छिपा हुआ है। अतः क्षमा क्या है, यह जाने बिना क्षमा करने करानेके विकल्प अवस्थामें भी क्षमाकी शैली नहीं आती। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिसके ज्ञानदृष्टि हुई, अपराधसे अरुचि होकर ज्ञानाराधना की रुचि हुई, उनके विकल्प होता है तो वे क्षमा मांगने जाते ही हैं। वहां भी उसके क्षमा कर देनेसे क्षमा गुण प्रकट नहीं हो जायेगा, किन्तु मेरे निमित्तसे इन्हें क्लेश नहीं रहा। इस भावके बाद परिस्थितियोंका सहयोग मिल लेता है, जिनके अनन्तर क्षमा प्रकट हो लेती है।

क्षमाके रस्म-रिवाजमात्रमें क्षमाके तथ्यका अभाव—एक बुढ़िया थी, अपने घरको

सारभूत है।

स्वयंपर ही क्रोधकी व स्वयंपर ही क्षमाकी शक्यता—परभावोंसे भी अपने स्वभा घात न होने देना सो उत्तम क्षमा है। किसीने कोई अपराध किया तो, जिसे हमने अपने नि रूपमें देखा तो हमें क्रोध आ गया तो हमने उसपर कुछ क्रोध नहीं किया, अपनेपर ही क किया, तब ? तब उस क्रोधके संतापको दूर करनेके लिये इच्छा होती है कि उसका बिगाड़ जावे या मुझसे क्षमा मांगे। देखो भैया मोहमें क्षमाकी कैसी उटपटी सूरत बना ली जाती भैया क्रोध तो तुमने किया तो उसके क्षमा मांगनेसे क्षमा होगी या तेरे ही सत्य पुरुषा क्षमा होगी। अपने इस एकाकी चैतन्य भावको ही देखकर अपने निज ज्ञानस्वभावकी आराध में लगें तो उत्तम क्षमा प्रकट होती है। क्रोध नहीं करनेको उत्तम क्षमा कहते हैं। जीव कि पर क्रोध नहीं करता। यह तो स्वयंपर ही क्रोध करता है, स्वयंको बरबाद करता है, स्वय हानि करता है। इस प्रकार क्रोध न करनेकी बात तो मुख्य हुई, किसी भी प्रकारका विक... न आने देना आत्मगुणोंका घात न होने देना, सो अपने आपको क्षमा करना है।

उत्तमक्षमासे जन्मोदधिनिस्तरण—उत्तमखम जम्मोदहितारी—यह उत्तम क्षमा जन्म रूपी संसारसमुद्रमें तार देने वाली है। जो समागम मिले, जो वैभव मिला, उसमें मद नहीं आना चाहिए। कर्मोंसे लिप्त हैं सो अपनेको गरीब समझना चाहिये। आज किसी सेठने अगर अनाप-सनाप वर्ताव कर लिया तो कुछ पुण्यका उदय है इसलिए जितनी सामर्थ्य है अटपट किया, पर मरणके बाद तो कोई कला न चलेगी। नये जीवनमें पशु पक्षी कीड़े मकोड़े बन जाना ही पड़ेगा, इसलिए इस चार दिनोंकी चांदनीको देखकर एकदम मस्त नहीं होना चाहिए। कुछ

अपने आपपर भी दया करना चाहिए, अपने आपकी भी क्षमा करना चाहिये। ऐसा उपाय करो जिससे तुम्हारा यह संसार छूट जाय। उन उपायोंमें प्रधान उपाय है यह उत्तम क्षमा। कोई समझे कि मैं अपने घरमें स्त्री सहित वड़े प्रेमसे रहता हूं, मेरेसे बाहर वालोंका कोई विगाड़ नहीं होता, बाहरके किसी पुरुषपर या अन्य किसी पर गुस्सा ही नहीं करता, फिर हम तो क्षमावान ही हैं, हमको कहांसे क्रोधका बन्ध लगेगा, परन्तु ऐसा नहीं है। स्त्रीसे प्रेम करते हैं और मोह वढ़ा रहे हैं, तभी वे अपने आपपर खूब क्रोध कर रहे हैं। अपनेको क्षमा करो। विकार व विकल्पकी रुचि मत रखो, खुदके विकार-परिणामसे आत्माके गुणोंका घात होता है। अपनी दया करो। देखो तो ज्ञाता द्रष्टा मात्रकी परिस्थिति रूप शांतिका भंडार यह चैतन्यस्वरूप भगवान् इन पर्यायोंके रूपसे नष्ट (तिरोहित) हो रहा है, जिससे तुम दुःखी हो रहे हो। इस चैतन्यस्वरूपसे क्षमा मांगो, किसीसे और कुछ न मांगो। हे चैतन्यस्वरूप ! तेरेमें परस्पर विरुद्ध दो बातें पाई जा रही हैं। एक तो अंतःप्रकाशमान त्रिकालमें रहने वाला ज्ञान-स्वभाव और ऊपर व्यक्त हुआ उससे उल्टा क्रोध भाव। क्रोध भाव परका उपयोग रखाने वाला है। जिससे इसनें संक्लिष्ट अज्ञानी बनकर इस सरल महान् चैतन्यस्वरूप पर अन्याय किया है। अतः हे जीव ! ज्ञानस्वभावका जिसमें तादात्म्य है, ऐसी आत्मासे तू क्षमा मांग। हे व्यवहार ! तू निश्चयसे माफी मांग। व्यवहार कहता जा रहा है कि तू ऐसा सोच अथवा व्यवहारमें ग्रस्त अपनेको, ऐसा सोचना युक्त है।

प्रतिकूल वचनोंको अनसुनासा कर देनेमें लाभ—एक पुरुष ससुराल गया। पहुंच गये दामाद साहब। सास थी वड़ी कंजूस। उसने सोचा कि लो अब दो चार रुपया रोज विगड़ेंगे, जब तक यह रहेंगे। सो कहा लाला जी आपको मैं ऐसा वढ़िया खाना बनाऊंगी जिससे आपका भला होगा, शरीर स्वस्थ रहेगा। यदि बूंदीके लड्डू बना दिया या हलुवा आदि बना दिया तो उससे स्वास्थ्य ठीक न रहेगा। उनके अवगुण बता दिया। कहा तुम्हें हम वढ़िया चीज खिलायेंगी, जिससे आपका शरीर सवाया हो जाय। वही वढ़िया भोजन बनाया। क्या ? खिचड़ी। अब वह खिचड़ी जीमने बैठ गया। उसमें घी न डाला। वह दामाद खिचड़ीका एक-एक दाना चुगे। सासने कहा दामाद जी क्यों खिचड़ीका एक-एक दाना चुगते हो। कहा—क्या करू विना घी के खिचड़ी पेटमें ही नहीं जाती। और कुछ न हो तो केवल घी की हवा तो खिला दो, तो खाकर चले जायेंगे। सो कुछ जाड़ेके दिन थे। एक चौड़ी मुँहकी डबुलिया में पावभर घी रखा था, सो उसको लाकर सासने औंधा दिया और थाली भरमें फिरा दिया और हवा खिला दिया। अब दामाद सोचता है कि कला तो खूब खेली, पर फेल हो गया। अब क्या कला खेलना चाहिए सो खाते हुए में पानीके लोटेमें टेहुनी लगा दी। पानी ढरक गया। पानी जरा दूरसे लाना था, सो सास पानी लेने चली गयी। पानी दूरसे लानेमें लगभग

१०-१२ मिनट लग ही जायेंगे सो उतनेमें दामादने डवुलियाको आगमें रखकर घी पिघला लिया और वैसे ही डवुलियाको रख दिया। इतनेमें सास आयी। फिर दामाद एक-एक दाना खाने लगा। सासने कहा दामाद जी क्यों खिचड़ीका एक-एक दाना खाते हो ? कहा बहुत देर हो गई, कुछ घी की हवा फिर लगा दो। उसने फिर डवुलियाको औंधा दिया तो सारा घी थालीमें गिर गया। सास सोचती है कि मैंने बहुत उपाय किया, मगर फेल हो गई। बोली दामाद जी मुझे तुमसे बड़ा प्रेम है। हम तुम्हारी थालीमें खाना चाहती हैं। अब वह सारा घी अपनी तरफ करनेके लिए उसे बातोंमें लगाया। थालीमें अंगुलीसे लकीर करके सास कहे कि—तुम्हारे पिता जी हमारी लड़कीको ऐसा कहते हैं, तुम्हारे भैया हमारी लड़कीसे यों बोलते हैं। तुम्हारी बहिन हमारी लडकीको यों कहती है, तुम कुछ नहीं बोलते हो। इतनेमें सारा घी अपनी तरफ अंगुलीसे कर लिया। दामादने सोचा कि हमारी सारी हिकमतें फेल हो गईं। सो वह कहता है सासू जी तुम्हारी लड़कीसे कोई कुछ कहे, मगर तुम्हारी लड़कीको वे सब बातें यों पी जाना चाहिए यह कहता हुआ दामाद सारा घी एक चुल्लूमें लेकर पी गया। इसी तरह भैया ! हमें भी प्रतिकूल बातें पीकर उन्हें अलग कर देना चाहिए।

संसार-समुद्रसे तारने वाला होगा।

उत्तम क्षमामें रत्नत्रयका विकास—उत्तमखम रयणत्तयधारी—उत्तम क्षमा रत्नत्रय का धारण करने वाली है, क्रोध सब गुणोंको फूंक देता है। अग्निकी ज्वालासे अधिक भयंकर क्रोधकी ज्वाला होती है, आत्माका यथार्थ विश्वास, आत्माका यथार्थ ज्ञान और आत्मामें ही रम जाना—इस रत्नत्रयकी पूर्ति साधना क्षमागुण से होती है। जिसके क्षमा नहीं है, जिसके अनन्तानुबंधी कषाय है उनके सम्यक्त्व नहीं रह सकता है जिनके प्रत्याख्यानावरण कषाय है, उनके संयम नहीं रह सकता है और ज्ञानके दोनों साधनोंमें लगा होना सारतत्त्व है। इसकी शोभा तो उत्तम क्षमाके धर्मसे होती है। हे चैतन्यप्रभो! तू अनादिसे प्रगट है, परन्तु मैंने अब तक तुझे ढका ही रखा। जैसी जैसी पर्याय मिली वैसा ही मैं अपनेको समझने लगा। मनुष्य की देह पाई तो मैं अपने उपयोगमें निज द्रव्यको, निज पदार्थको मनुष्य समझा, देवका शरीर मिला, मैं अपनेको देव समझने लगा। जरा शरीर गर्म हुआ तब समझा मुझे बुखार हुआ। इस तरह अपनेको पर्यायमात्र समझा, परन्तु उन सब पर्यायोंमें सामान्यरूप सदा एकसा रहने वाला शुद्ध, निर्विकार, निरंजन, ज्योतिर्मय, सर्वसे भिन्न निज परमात्मद्रव्य उसकी सुध भी न ली। अहो! वही तो मैं हूं। तब मेरा, विकृतपर्यायोंका, विकारका कितना निष्ठुर व्यवहार रहा? हे निजचैतन्य प्रभो! इससे बढ़कर तुझपर और कोई अन्याय क्या हो सकता है? इस इस तरह अपने आपसे क्षमा मांगो। हे चैतन्य भगवान्, मैंने तेरा अपमान किया। तेरी खबर भी नहीं ली। अब मैं क्षमा चाहता हूं। अब मैं तेरी भक्तिपूर्वक सेवा करूंगा। मैं क्रोध, मान, विषय, कषाय आदि भावोंमें अपने आपको नहीं लगाऊंगा। इस तरहके भावसे क्षमा मांगना उत्तम क्षमा है। ऐसी उत्तम क्षमाके धारी ज्ञानी जीव बाह्यमें किसी भी तरहका अहित, विकल्प नहीं करते। उनका जब जो व्यवहार होता है उससे परको पीड़ाकारी योग नहीं होता। यदि कोई पर्याय बुद्धिभ्रमसे दुःखी हो तो यह दुःखी होने वालेका ही दोष है। ज्ञानी व्यवहारमें विरुद्ध नहीं और सत्य क्षमाशील है। किसी दुष्टके द्वारा पीड़ा दिये जानेपर भी वह भव्य जीव कभी क्षमाभावको नहीं छोड़ता।

उत्तमक्षमाकी दुर्गतिदुःखहारिता—उत्तमखम दुग्गइदुहहारी—उत्तमक्षमा दुर्गतिसे दूर करने वाली है, यहाँ की दुर्गति और परलोककी दुर्गति दोनोंसे ही दूर करने वाली यह क्षमा है। दोनों ही दुर्गतियोंसे दूर करनेकी सामर्थ्य इस क्षमामें है। जिसे कहते हैं गम खाना। क्रोधकी वृत्ति जो बना रहे हैं उनको जगह जगह दण्ड मिल जाता है। जिनको क्षमाकी प्रकृति आयी है उन्हें सब जगह सत्कार या सद्व्यवहार होता है, तो इस लोकमें भी दुर्गति नहीं हो पाती, जो क्षमा अंगीकार करता है और परलोकमें भी उसकी दुर्गति नहीं होती, खोटी पर्यायोंमें जन्म नहीं होता। गृहस्थको दो ही बातोंसे तो प्रयोजन है, एक तो आजीविका और

की प्राप्ति होती है तो इस प्रकारके भावसे क्षमा करना भी उत्तम क्षमा नहीं है, क्योंकि इससे तो उसने मिथ्यात्वको ही बढ़ाया, संसार ही बढ़ाया, अभी तो भ्रम भी दूर नहीं किया, उत्तम क्षमा तो दूर ही है। उत्तम क्षमामें अनादि, अनन्त, अहेतुक, ज्ञानस्वभावका विशुद्ध विकास है। इस उपादानका विचार करके इस ज्ञानस्वभावमें क्षमा परिणति रूप उपयोगको स्थिर रखनेसे रागादि भाव नहीं आयेगा। ऐसी स्थितिको उत्तम क्षमा कहते हैं। जहाँ मिथ्यात्वकी स्थिति नहीं है, फिर भी क्रोध आये तो सोचो, क्या यह क्रोध मेरे स्वभावसे बना है ? नहीं; क्रोध व्यवहारिक पर्याय है, मेरे स्वभावमें नहीं है, मैं उसका ज्ञाता मात्र हूं, इस प्रकार क्रोध का ज्ञान होनेपर भी क्रोधके बिना ज्ञानस्वभावकी जागृति रखना यहां उत्तम क्षमा आंशिक है।

उत्तम क्षमासे संवर व निःश्रेयस—दशलक्षण धर्मसे संवर होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रसे ही तो संवर होता। दशलक्षण धर्म अंतरंग चारित्र है, वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानका अविनाभावी है। धर्म तत्पूर्वक ही है, अतः जहाँ सम्यक्दर्शनका लेश नहीं वहां उत्तम क्षमाका आभास नहीं हो सकता। उत्तम क्षमामें ही यह सामर्थ्य है कि समस्त गुणोंके विकासको बढ़ा देती है। यह उत्तम क्षमा अनेक उपद्रवोंको लीला मात्रमें हटा देती है। एक साधु था। उसके उपसर्ग आया। उसके भक्तने उसके उपसर्गको दूर किया, बचा लिया, परंतु उपसर्गमें व उपसर्गके बाद साधुको यह विकल्प ही नहीं था कि यह तो उसका भक्त है और यह उसका दोषी है। उसके यह जाननेका विकल्प ही नहीं आया कि किसने मेरा उपसर्ग दूर किया ? जिसके मनमें मित्र और शत्रुका विकल्प ही नहीं उठता ऐसे साधुओंका वह उत्तम क्षमा धर्म है। भगवान् पार्श्वनाथपर कमठने तरह-तरहके उपसर्ग किये। भगवान्के उन उपसर्गोंका धरणेन्द्र पद्मावतीने निवारण किया, परन्तु भगवानका यह लक्ष्य ही नहीं था कि कमठ तो उपसर्गका करने वाला है और धरणेन्द्र पद्मावती रक्षा करने वाले हैं। इसी वीतरागमय उत्तम क्षमासे अंतर्मुहूर्तमें केवल ज्ञान हो गया।

राग द्वेषके प्रतिषेधमें उत्तम क्षमाका अभ्युदय—उत्तम क्षमा वह कहलाती है जिसका न इष्टमें राग जाय और न अनिष्टमें द्वेष ही जाय। जगतमें जितने भी झगड़े होते हैं वे राग भावसे होते हैं, द्वेषभावसे नहीं होते। द्वेषभावसे जितने झगड़े हो रहे हैं, उन द्वेषोंकी जड़ क्या है ? उत्तर मिलता है कि अमुक चीजपर राग था तब उसमें बाधा देने वालेको हमने द्वेषी समझा। अर्थात् उस द्वेषकी जड़ राग ही हुई। यदि मूल बात विचारो तो यही सिद्ध होता है कि क्रोध रागसे किया जायगा, द्वेष तो क्रोध है ही। इस प्रकार राग ही क्रोध है, परन्तु यह चैतन्यस्वभाव तो स्वयं एकाकी है; यह किसीसे राग क्यों करेगा ? ऐसे चैतन्यस्वभावका अवलोकन करने वाले ज्ञानी मुनि ही होते हैं। उन्हींके उत्तम क्षमा होती है, वहाँ न राग है, न द्वेष है। यदि उनकी विषयोंमें प्रवृत्ति होती तो वे रागका त्याग नहीं कर सकते थे।

उत्तमक्षमाकी सज्जनप्रियता—उत्तमक्षम मुणिविदपियारी—यह उत्तम क्षमा मुनियों को प्रिय है। अहिंसाकी पूर्ति इस उत्तम क्षमासे होती है। अहिंसाका पालन भी क्षमाका अंग है। धर्मका पालन किसीके ठेकेमें नहीं है। कोई भी पुरुष हो जो अहिंसामें रुचि रखता है उसको लाभ मिलता है। कुछ समय पहिलेकी एक घटना है कि एक नवावकी लड़की किसी अच्छे धनी मुसलमानके घर व्याही गयी थी। पापका उदय आया, गरीब हो गई। उसका पति मांस खाने, मदिरा पीने और अन्य सब प्रकारके व्यसनोंमें रहने लगा। निर्धन भी हो गया। कोढ़ भी उसके निकल आया। इतनेपर भी लोगोंने उस लड़कीको समझाया कि दूसरा विवाह कर लो, पर उसने कहा कि यह नहीं होगा। वह पतिकी सेवा करे और शिक्षा भी दे कि मांस-मदिराके हिंसामय प्रयोगसे यह तुम्हारी अवस्था हुई। इन सबको त्याग दो। वह गरीब स्त्री जैनी लोगोंके यहाँसे रोटियां मांग लाये व अपने पतिको खिलाये और अपना पेट भरे। मगर दुर्व्यसन और दुराचारका उसका मन नहीं होता था। अहिंसाकी श्रद्धा हुई। कुछ समय बाद अपने आप ही पतिका कोढ़ मिटा और अहिंसा व्रतका नियम लिया। तो धर्म जो पालेगा उसीको लाभ है। उत्तमक्षमा सहज स्वभावसे उदयमें आती है।

क्षमागुणकी सहज सिद्धि—मैं क्षमा करूं तो अमुक लाभ होगा, इस भावसे उत्तम क्षमा नहीं होती। एक राज्यमें राजाज्ञा हुई कि कोई चोरी न करे और १०, ००० से अधिक सम्पत्ति न रखे। तो जो राजाज्ञासे चोरी नहीं कर सकता था, जिसने १०, ००० से अधिक सम्पत्तिका त्याग कर दिया तो क्या वह परिग्रहत्यागी बन गया? नहीं, राजाज्ञासे उसने सम्पत्तिका त्याग किया, परन्तु हृदयमें तो तृष्णा है। सम्पत्तिसे उसका राग तो नहीं गया। अतः तृष्णा और राग होनेके कारण वह परिग्रहत्यागी नहीं हुआ। इसी तरह उत्तम क्षमा भी जबर्दस्तीसे नहीं होती है। अहेतुक स्वभावकी दृष्टिमें क्रोध स्वतः नहीं रहता। क्रोधके करनेसे दुर्गतिमें चले जावेंगे, यह समझकर क्रोध न होने देनेका परिश्रम करना भी उत्तम क्षमा नहीं कहला सकती। ऐसे धर्म माननेके अभिप्राय पर्यायबुद्धियोंके ही होते हैं, परन्तु ज्ञानी इस-लिये क्रोध नहीं करता, उसके तो क्रोधरहित राग भाव रहित ज्ञानस्वभावपर ही लक्ष्य रहता है, ऐसा ही आत्मीय स्वलक्षण जहां समझा गया, वहां क्रोधभाव स्वतः नहीं होता। ऐसा उत्तम क्षमाका स्वरूप ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानीके कदाचित् यदि क्रोधभाव भी रहता तो भी भेद-विज्ञानके बलसे अंतरमें उत्तमक्षमाके अंश रहते ही हैं। हमको तो यह चाहिये कि कहींसे कुछ भी बात आये, कुछ भी उपसर्ग आये, उससे लक्ष्य हटायें, दृढ़ भेदविज्ञानका सहारा लें और उपयोगके शुद्ध लक्ष्यपर होनेके बाद अभेदस्वभावमें स्थिर होकर क्षमाशील रहें।

क्षमाप्रयोगसे शान्तिका लाभ—कोई बाबू बम्बई जा रहे हों और पड़ौसकी स्त्रियां

आकर कहें कि हमारे बाबूको खिलौनेका हवाई जहाज ले आना, कोई स्त्री कहे कि हमारे बाबू की खेलनेका रेलका इंजन ले आना और कोई गरीब बुढ़िया आकर यह कहे कि बाबू जी हमारे पास ये दो पैसे हैं इन्हें लो और हमारे बबुवाको एक मिट्टीका खिलौना ला देना। तो बबुवा किसका खेलेगा? बबुवा उस गरीब बुढ़ियाका ही खेलेगा। तो गपोड़ियोंसे लाभ नहीं होता, किन्तु गुप्त ही अपने आप छिपे हुए अपने उद्धारके लिए संसारके जन्म मरणके चक्रोंसे छूटने के लिए अपने आत्माके ज्ञानस्वभावकी आराधना हो तो यही उत्तम क्षमा है। यह उत्तम क्षमा चिंतामणिकी तरह है। जैसे चिंतामणिसे जो विचारो सो मिल जाये। इसी तरह उत्तम क्षमा का सद्भाव करे उसके परिणामसे शांति उसे तुरन्त मिलेगी। शांतिका बड़ा प्रभाव होता है। घरमें रहने वाले पुरुषोंमें एक मुख्य पुरुष यदि शांतिका स्वभाव रखता हो तो घरके सब परिवार जनोंका उस शांतिमें ढलनेका व्यवहार बन जाता है।

शान्तपुरुषकी वृत्तिका सत्प्रभाव—एक सेठ सेठानी थे। सेठानी क्रुद्ध थी और सेठ शांत था। बजाजीकी दूकान करता था। दूकानमें बहुत काम करना होता था। रात दिन वहीं रहे। समयपर भोजन खाने घर आये। तो उस सेठानीको और कोई समय न मिले कि वह सेठसे कुछ कह सके। जब सेठ जी भोजन करने आते तो उसी समय वह अपना क्रोध निकालती, मुझे अमुक चीज बनवा दो, मुझे कभी बनवाकर नहीं देते और दो चार गालियां भी सुना दे, वह बेचारा आरामसे सुन ले और भर पेट भोजन करके अपना चल दे। एक दिन भोजन करके सीढ़ियोंसे नीचे उतर रहा था। सेठानीको बड़ा गुस्सा आया तो जो दाल चावल का धोवन होता है उसे सेठकी पगड़ीपर डाल दिया। सेठके कपड़े भीग गये। सेठ सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़कर सेठानीसे कहते हैं कि सेठानी जी! तुम गरजी तो बहुत थीं पर बरसी आज हो। बड़ी शांतिसे उन्होंने जवाब दिया। तो सेठानी शर्मके मारे गड़ गई कि हमने कितना उपद्रव किया, मगर इनकी क्षमाशीलताको धन्य है। अब वह सेठके पैरोंमें गिर गई और बोली—अब मैं कभी क्रोध न करूंगी। यह क्षमा विद्वानोंका आभूषण है। विवेकी पुरुषोंको यह क्षमा अन्तरङ्गमें रखनी चाहिये। जैसे मान लो कोई तुम्हें मार रहा है, वहाँ तुम यह समझ लो कि यह मुझे तो नहीं मार रहा है इस शरीरको ही मार रहा है, परन्तु शरीर तो मैं नहीं हूं, इस विवेकसे क्षमा आ ही जायगी। मान लो व्यवहारमें यदि कोई गाली-गलौज अथवा बुरा भला कह रहा है तो समझ सकते हो कि यह मुझे तो नहीं कह रहा, जिसने कुछ किया है उसे कह रहा होगा। जिसको कह रहा हो कह ले, यह उसके कषायका विपाक है। वह इस चैतन्यस्वभावको तो नहीं कह रहा है, यह समझकर उन बुरे वचनोंको भी पी जाये अर्थात् उपेक्षित कर दे, इसीको उत्तम क्षमा कहते हैं, क्योंकि ऐसा विचार करनेसे उसे अवसर मिलता है कि वह अनन्तर निर्विकल्प तत्त्वको अवलोकन करे। इस प्रकरणमें उसके दिलमें क्रोधभाव

उत्पन्न ही नहीं होता।

क्षमासे मनकी स्थिरता—उत्तमक्षमा सांसारिक स्थितिमें भी आत्मा मनको स्थिर रखनेमें समर्थ है। क्रोधको रखते हुए हृदय स्थिर नहीं हो पाता है। ऐसा मनकी स्थिरता तो सभी चाहते हैं, किन्तु मनकी स्थिरता रखनेका अच्छा उपाय है क्षमा रखना। एक घरमें एक सांप था। जब उस घरमें बच्चेको दूध पीनेके लिए कटोरा भर दिया जाता तो वह सांप आये और उस दूधको पी ले। बच्चा उस सांपको हाथसे मारता जाए, मगर उस सांपने क्षमा व्रत लिया था, सो वह खूब आरामसे रहे। एक दिन दूसरे सांपने देखा कि यह तो दूध पी आया है और मस्त है। कहा यार तुम तो बड़े मस्त हो, हमसे सुख चंगा है, आप कहां दौर मारा करते हो? हम तो बच्चेके पाससे दूध पी आते हैं। हमें बता दो, हम भी पी लिया करें। तुम नहीं पी सकते हो। क्यों? बोला दूध वही पी सकता है जिसमें क्षमा हो। वह बच्चा थप्पड़ मारता है। जिसको थप्पड़ सहनेकी शक्ति हो वही दूध पी सकता है, अरे तो हम भी सह लेंगे। कहा—नहीं सह सकते हो। द्वितीय सांपने संकल्प किया कि अच्छा तो लो १०० थप्पड़ तक हम जरा भी नहीं क्रोध करेंगे। उसने १०० थप्पड़ तक सहनेका नियम ले लिया। सो वह दूध पीने गया। बच्चा थप्पड़ मारे। जब ८०, ९०, ९५, ९७, ९९ और १०० थप्पड़ हो गये तब तक कुछ न कहा पर जब १०१वां थप्पड़ बच्चेने मारा तो उसने फुंकार मारी, बच्चा डर गया, चिल्ला पड़ा। घरके लोग दौड़े, सांपको देखा और मार डाला। तो सुख और शांतिपूर्वक अपना जीवन चलानेके लिये क्षमाका गुण होना चाहिए।

क्षमागुणसे सर्वत्र उत्थान—घरमें भी, समाजमें भी, देशमें भी जिसका उत्थान होता है वह क्षमागुणके कारण होता है। बड़े-बड़े नेताओंको देखो—उत्तम क्षमा सम्पूर्ण गुणोंके साथ रहने वाली है। ऐसा नहीं होगा कि कोई सोच ले कि मैं उत्तम क्षमा रख लूं और गुण रहें या न रहें। उत्तम क्षमा वहाँ ही रहती है जहाँ और सब गुण भी रहते हैं। इसके आते ही और गुण भी प्रगट होने लगते हैं। मुनि जन उत्तम क्षमाको नहीं छोड़ते। जरा भी अवसर क्षोभ भावके पैदा होनेका आवे तो स्वाभाविक सत्य शांतिके लिए वे बहुत विह्वल रहते हैं। उनकी आकुलता तब तक नहीं मिटती जब तक वे क्षमाभावको नहीं पा लेते। जब वे क्षमाको प्राप्त करनेके लिये ऐसा अन्तरंग तप करते हैं तब हमें तो, जिनको सदा क्रोधकी संभावना रहती है बहुत ही सावधान रहना चाहिये। हमारी तो विजय इस सत्य श्रद्धापर है कि "मैं परका कुछ नहीं कर रहा हूँ" फिर मुझे क्रोध कहाँ? "मैं परको करता हूँ" इस प्रकारका मित्यात्व ही उस व्यक्तिके लिए क्रोध बन गया, जिसने ऐसा विचार किया कि मैं परका कर्ता हूँ। अतः आत्मासे इस क्रोधभावको मिटाओ।

उत्रमखम महणिज्ज सयलजणि, उत्तमखम मिच्छत्त तमोमणि ।
जहिं असमत्थहिं दोस खमिज्जइ, जहिं असमत्थहिं ण उ रूसिज्जई ॥

उत्तमक्षमाकी सकलजनमहनीयता—उत्तमखम महणिज्ज सयलजणि—यह क्षमा समस्त पुरुषोंके द्वारा पूज्य है, सब इसकी आराधना करते हैं। क्षमा नाम पृथ्वीका भी है। संस्कृत शब्द है क्षमा। इस पृथ्वीको क्षमा क्यों कहते हैं कि पृथ्वीपर लोग टट्टी करें, पेशाब करें, कूड़ा जलायें, फिर भी यह पृथ्वी अचल स्थिर रहती है। इस प्रकार एक क्षमाका परिणाम ही ऐसा गुण है कि बड़े-बड़े उपद्रव और उपसर्ग भी आयें तो भी उनमें अपने मनमें कषाय नहीं बांधते। यह क्षमा समस्त जनोंके द्वारा पूज्य भाव है।

उत्तमक्षमासे मिथ्याभावका विहंडन—उद्यमखम मिच्छत्त विहंडणु—यह उत्तम क्षमा मिथ्यात्वरूप अंधकारको नष्ट करनेके लिए मणि समान है। है ना ऐसा ? क्रोधमें अपना सन्मार्ग अथवा आत्मस्वभाव या परमात्माका स्वरूप—ये सब भूल जाते हैं और पर्यायबुद्धि घर कर लेती है। मिथ्यात्व न आ पाये ऐसी शक्ति क्षमा गुणमें है। क्षमा गुणके प्रसादसे मिथ्यात्व अंधकार नहीं आता। जहाँ वस्तुका, स्वरूपका बोध हो जाता है वहाँ यह सोचता है कि परपदार्थ चाहे जैसे परिणमो, इससे मेरा कोई सुधार बिगाड़ नहीं है। यदि कोई उपसर्ग भी हमपर करे, कोई गाली भी देवे तो एक उपाय यह करे, यह समझे कि यह हमारी परीक्षा करनेके लिए तो नहीं कह रहा है। एक पाकेटमार किसीकी पाकेटमें से नोट निकाल रहा था। नोट निकालता हुआ वह पकड़ा गया तो बोलता है कि मैं तो आपकी परीक्षा कर रहा था कि आपको ध्यान भी रहता है या नहीं। आप सावधान भी हो या नहीं। अतः यदि किसीने गालीगलौज दी भी तो सोच लो कहीं यह परीक्षा तो नहीं कर रहा है। पहले ही क्रोधी बन जाओगे तो जब वह यह कह देगा कि मैं तो परीक्षा कर रहा था तो तुम्हें नीचा देखना पड़ेगा अथवा क्रोध करनेपर वह यह कह सकता है कि मैं तो परीक्षा कर रहा था कि आपमें क्रोध भी आ सकता है या नहीं। बहुतसे सचमुच हमारी परीक्षा लेनेके लिए क्रोध करानेका प्रयत्न करते हैं। अतः परीक्षाको ठीक रखना और मनमें क्षोभभावको नहीं लाना। अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञानस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके ज्ञानोपयोगका परिणमन होना सो उत्तम क्षमा है। अपनी दृष्टि निर्मल बनाओ, विशुद्ध एक ध्येय बना लो, फिर स्वव्यवसाय चल उठेगा, फिर कोई शक्ति विचलित नहीं कर सकेगी।

असमर्थ प्राणियोंके दोषोंकी क्षमाकी महनीयता—जहँ असमत्थहँ दोष खमिज्जई—दोष वहाँ नहीं है जहां असमर्थ पुरुषके दोषोंको क्षमा कर दिया जाता है। एक बार कोई बादशाह शिकार खेलने जंगल गया। साथमें मन्त्री भी गया। एक हिरणीके पीछे उसने दौड़ लगाना शुरू कर दिया। हिरणी कुछ तो दौड़ी और बादमें उसने सोचा कि हम बच थोड़े ही

सकती हैं, सो एक दयाभरी निगाहसे बादशाहको देखने लगी, खड़ी हो गई, वहाँसे न हटी। बादशाह मंत्रीसे कहता है कि देखो यह हिरणी अपने प्राण गंवानेके लिये यहाँ खड़ी हुई है। मन्त्री बोला—महाराज यह हिरणी आपसे दया चाहती है। यह निवेदन कर रही है कि मेरे बच्चे दो दिनसे विना दूध पिये हुये भूखे पडे हुये हैं। उन्हें मैं दूध पिला आऊँ और फिर इसी जगह अपने प्राण देनेके लिये आ जाऊँगी। बादशाह बोला—यह कैसे हो सकता? मन्त्रीने कहा महाराज एक बार देख लो क्या हर्ज है? बहुतसे शिकार हैं, दूसरेको मार डालना। देख तो लो कि आखिर भाव ठीक हैं कि नहीं? कहा—जाओ, अपने बच्चोंको दूध पिला आवो। दौड़कर अपने बच्चोंके पास पहुंची। अपने बच्चोंसे कहा—ऐ बच्चों! जल्दी दूध पियो, मैंने शिकारीसे वायदा किया है, तुम्हें दूध पिलानेके लिए शिकारीने छोड़ दिया है। बच्चोंनें कहा—जावो, जल्दी जावो, हमें दूध नहीं पीना है, तुम जल्दी जावो, कहीं तुम्हारा वचन भंग न हो जाय। एक दिन हमने दूध पी लिया तो उससे क्या होगा? तुम जल्दीसे शिकारीके पास पहुंचो। हिरणी तुरन्त उसी स्थानपर शिकारीके पास पहुंची। बादशाहने यह देखकर अपने हथियार डाल दिये और यह प्रण किया कि अब किसी भी प्राणीको न सतायेंगे। जहाँ असमर्थ व्यक्तियों पर द्वेष नहीं किया जाता है उसे उत्तम क्षमा कहते हैं। यह तत्त्व आत्मामें भर लिया जाय तो बहुत काम देगा।

उपशम भावसे भव्य सृष्टि—इन लौकिक जीवोंको इस जगतसे मरण होनेके बाद कौन रचना करता है कि मनुष्य बन जाय या पशु पक्षी बन जाय? ये भाव ही रचना करते हैं। जीवनमें सद्भाव हो, क्षमाका परिणाम हो तो उससे ऐसी सृष्टि होगी कि जहाँ मन भी पावन हो जायगा। अगंशी जीवोंमें जन्म होगा। यह अपने सद्व्यवहारोंपर निर्भर है। देखो भैया! क्रोधसे कर्म बंध होता और अपने आपमें आकुलता बढ़ानेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता, किन्तु क्षमासे स्वयं और अन्य भी सुखी रहते हैं। यह उत्तम क्षमा तो क्रोधके अभावमें ही पैदा होती है। क्रोध करके कोई चाहे कि मैं क्लेशसे छूट जाऊँ यह असम्भव है, उत्तम क्षमा ही जन्ममरणरूपी संसारसे छुटकारा दिलाने वाली है। कोई क्रोध करके इस संसारसे निकल पाता नहीं है। क्रोध तो व्रत, संयम तप, चारित्र सब गुणोंपर पानी फेर देता है। व्रत, संयम, चारित्र दुर्लभता परोपकार आदि सर्व गुण क्रोधके साथ नहीं रहते। इसके विपरीत उत्तम क्षमा दुर्गतिके दुःखोंको हरने वाली है और रत्नत्रयकी रक्षा करने वाली है।

जहिं [illegible] वयणि सहिज्जइ,
जहिं परदोसु ण जणि भासिज्जइ।
जहिं चेयणगुण[illegible] धरिज्जइ,
तहिं उत्तमखम जिणें कहिज्जइ॥

[illegible] उत्पन्न होती है [illegible] — उत्तम क्षमा वहाँ होती है जहाँ इसलिये [illegible] समान भी [illegible] लिये जाते हैं। उत्तम क्षमा उदार है, जहाँ दूसरोंके दोषोंको [illegible] नहीं आता। जब इतनी [illegible] होती है, तब यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि प्रत्येक पदार्थ अपना-अपना अस्तित्व लिये हुये है। उनके गुण प्रत्येक उन्हींके हैं। किसी पदार्थसे किसी अन्य पदार्थमें कोई बाधा नहीं पहुँचती है। कोई पुरुष इस [illegible] आत्माको दुःख नहीं पहुँचाता है। किसी आत्माने किसी भी दूसरे आत्माका कोई नुकसान नहीं [illegible] है। [illegible] अपने ही [illegible] हुए अपने परिणामोंसे, अपनी कल्पनासे [illegible] है। जिनको [illegible] ज्ञान हुआ [illegible] मनुष्य अपनी [illegible] है। यह दूसरेकी [illegible] इसलिये [illegible] नहीं सकता। भैया! [illegible] कि कोई हमें बुरा कहे, [illegible] है, हमें [illegible] चाहिए अर्थात् [illegible] अर्थात् [illegible] देनी चाहिए, या फिर [illegible] चाहिए कि फिर कहीं परिणाम [illegible] प्राप्त नहीं हो सके। [illegible] ही यह जीवन है। फिर [illegible] इस [illegible] नर-जीवनको पाकर चैतन्य भगवान्, जो निर्दोष [illegible] विराजमान है, उसको निर्दोष बनाओ। जैसे किसी भी पदार्थ का [illegible] है, ऐसी तरह भगवानका स्वरूप कभी विराजमान नहीं होता। क्रोध अग्निके समान माना गया है। यह अग्निके समान [illegible] भी जला दिया सकता है। अतः क्रोध महान् पाप है। जो भी [illegible] अपने [illegible] है, उसको यह [illegible] है। [illegible] गया है कि [illegible] कोई है तो वह क्रोध है। [illegible] नहीं [illegible], यदि क्रोध [illegible] हो। अतः जिस प्रकार भी अपने [illegible] भी क्षमा धारे वही उत्तम क्षमा है। ऐसी क्षमाधर्मकी भावना करो।

[illegible] एक किसान और किसानिन थे। किसान तो [illegible] और किसानिन भी [illegible]। १०-१५ वर्ष दोनोंको घरमें रहते हुए हो गए थे, पर किसान [illegible] न [illegible]। उसके मनमें यह बात बनी रहती थी कि कभी तो इसके दो चार घूँसे लगायें। पर उसे कभी मौका नहीं मिल सका। एक बार आषाढ़के दिनोंमें दोपहर के समय किसान खेत जोत रहा था, और वह उसी खेतमें रोटी लेने उसी समय आती थी। किसान ने जोतना बंद कर दिया और एक बैलको पूरबकी तरफ मुँह करके जोत दिया और एक बैल को पश्चिमकी तरफ मुख करके जोत दिया और हलको [illegible] दिया। सोचा यह अनहोनी घटनाको देखकर स्त्री कुछ न कुछ तो कहेगी ही। ऐसे हो [illegible] हो जायगा, ऐसे ही काम बन जायगा, कुछ न कुछ तो बोलेगी ही, बस हमें पीटनेका मौका लग जायगा।

वह स्त्री रोटी लेकर आयी और दूरसे ही देखकर समझ गई कि आज हमें पीटेंगे ऐसा है। वह आयी और बोली चाहे सीधा जोतो चाहे टेढ़ा, हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं है। हमारा काम तो केवल रोटी देनेका था सो लो। यह कहकर रोटी देकर वापिस चली गई। फिर भी किसान पीट न सका, टापता ही रह गया। भैया! हमें भी ऐसा सोचना चाहिए कि कोई भी पदार्थ चाहे उसके अनुकूल परिणमे चाहे प्रतिकूल, हम उसमें क्या कर सकते हैं और मेरा उससे सुधार बिगाड़ ही क्या? वह तो अत्यन्ताभाव वाला पदार्थ है। इस प्रकारकी श्रद्धा रखने वाले ज्ञानी जीव कठिनसे कठिन उपसर्ग आनेपर भी अपने ज्ञानस्वभावमें सन्मुख रहता है, मैं भी तो ज्ञानस्वभावी ही हूं। अतः कोई कितना भी उपसर्ग करे, मैं निज ज्ञानस्वभावसे क्यों चिगूं तथा हमारी ओरसे यदि शान्त प्रवृत्ति रहेगी तो उसका भी क्रोध हमपर रह नहीं सकता। तत्त्वज्ञानपूर्वक शांति होना उत्तम क्षमा है। ज्ञानी जन अपनी उत्तम क्षमाको नहीं खोते। जहाँ क्षमाभाव आ गया, वहाँ उसे चिन्तामणि मिल गया। जिसके होते जो विचारो सो मिल जाये वह चिन्तामणि कहलाता है। जिसके होते जो सोचे वही मिल जाये ऐसा चिन्तामणि कोई पत्थर है क्या? नहीं। चैतन्यभावकी दृष्टिका नाम ही चिन्तामणि है। ज्ञान-स्वभावदृष्टि होनेपर जगतमें कोई इच्छा नहीं होती, तव सभी मिल गया, सो यह उत्तम क्षमा चिन्तामणि है।

उत्तमक्षमासे मनकी स्थिरता व सम्मान्यता—उत्तम क्षमासे ही स्थिर मन होता है। क्रोध होनेपर मनमें स्थिरता नहीं रहती है। तभी तो कहते हैं—कहींका कोई ऐसा पत्र आवे कि जिसको पढ़नेसे क्रोध पैदा हो जावे तो उसका उत्तर कल लिखो। इसका कारण यह है कि क्रोधभावमें योग्य क्रिया नहीं हो सकती। क्रोधभाव मनको स्थिर नहीं होने देता। क्रोधी का कोई सत्कार नहीं करता। उसको सव लोग टालते हैं, उपेक्षा करते हैं और सम्मान नहीं करते। इष्ट अनिष्ट वुद्धि ही क्रोध लाती हैं अतः किसीको इष्ट मत समझो, क्योंकि कुछ इष्ट समझनेपर उसके वाधकपर क्रोध आया करता है। जव किसी भी पदार्थमें इष्टवुद्धि ही न करोगे फिर क्रोध आयेगा कैसे? अर्थात् इष्टवुद्धि न रखनेपर क्रोध आयेगा ही नहीं। क्रोधसे इहलोक परलोक दोनोंमें ही हानि होती है, किन्तु क्षमासे दोनों लोकोंमें शांति रहती है और लोकभ्रमणसे जल्दी ही छूट जाता है। उत्तम क्षमाशील लोगोंकी तीनों लोकोंमें पूजा होती है। यह उत्तम क्षमा मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए सर्व ज्ञानधारी मुनिकी तरह है। जिसके उत्तम क्षमा है उसमें मिथ्यात्वका अन्धकार नहीं रहता।

विवेकसे निर्मलताका लाभ—अपनी आत्माको जगतमें एकाकी समझो, मित्रता-शत्रुता की कल्पना मत करो, किसीको दुःख आपके निमित्तसे हुआ हो तो चाहे वह छोटा ही हो, उसके पास जाकर उसका दिल साफ कर दो। कहो कि मेरेसे वड़ी गलती हुई है मुझे क्षमा

कर दो और अपने विषयमें ऐसा सोचो कि यदि कोई मेरा दोष बखानकर सुखी होना चाहता है तो सुखी रहे। कोई गालीगलौज देकर सुखी होना चाहता है या धन लेकर सुखी होना चाहता है, होवे। किसी भी प्रकार वह जीव सुखी हो, परन्तु मेरे निमित्त वह दुःखी नहीं होना चाहिये। यदि किसी अधीरसे ज्ञात हो—कोई पीठ पीछे हमारी बुराई भी कर रहा था तो करे, परोक्षमें ही तो कर रहा था, सामने तो नहीं कर रहा था। जिस परिवारमें सब ही लोगोंकी ऐसी प्रवृत्ति हो वह परिवार सुखी ही रहता है। क्षमाशील व्यक्तिका हर एक कोई सम्मान करता है। आगरेके भगवतीदास जी थे। उन्हें एक आदमीने आकर कहा कि आपके लिए अमुक आदमी ऐसे कह रहा था। उन्होंने उत्तर दिया कि वह कह रहा था या नहीं, कह रहा था मुझे पता नहीं, परन्तु तुम तो मेरे सामने ही कह रहे हो। अतः सोचना चाहिये कि कोई कुछ भी करे, परोक्षमें ही तो करता है, सामने तो नहीं करता। सामने भी कहे तो अपनी जीभ ही तो चला रहा है, पीटता तो नहीं, यदि पीटे भी तो उससे शरीरका ही तो आघात है प्राण तो नहीं लेता, प्राण भी ले तो सोचते हैं मेरे रत्नत्रय रूप अंतरंगका तो आघात नहीं करता अर्थात् भावप्राण तो नहीं ले रहा है, द्रव्यप्राण ही तो ले रहा है; जो त्रिकाल रहते नहीं हैं। इस तरह ज्ञानी शुद्ध अन्तर्ज्ञेयमें ही परिणमते रहते हैं। वह मेरे अन्तर्ज्ञेयको तो कुछ क्षति नहीं पहुंचाता। यह बात सुनकर कोई भाई मनमें हंस भी सकते हैं, परन्तु भैया भी जब ज्ञानदृष्टि हो जाती है तो ज्ञानस्वभावकी निर्मलता ही प्रिय होती है।

कष्टे प्राणानुपेक्षन्ते ज्ञानं रक्षन्ति योगिनः।
ज्ञानं स्ववृत्तिता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

असमर्थके अपराधोंकी क्षमासे अपना विकास—उत्तम क्षमा वहाँ प्रगट होती है जहाँ असमर्थोंके दोषोंको भी क्षमा कर दिया जाय। असमर्थने यदि दोष किया है तो उसको भी क्षमा कर देवे। यहाँ भी बड़े-बड़े लोगोंकी ऐसी ही प्रकृति होती है कि छोटे-छोटे लोगोंसे, सेवकोंसे अपराध बन जाय तो उसे क्षमा कर देते हैं। आज वैसे ही आजादी है। नौकरपर गुस्सा करोगे तो वह कहेगा बाबू जी लो यह रखो आपकी नौकरी, और यदि आप उसे क्षमा कर दो तो वही तुम्हारा सेवक हो जायगा। असमर्थ तो वह है ही, अब उसके दोषोंको क्या अपनेमें लगाए रखना ? उसको क्षमा कर देना। बनारसीदास जी राजदरबारमें जा रहे थे। वह रास्तेमें पेशाब करने बैठ गये। वहाँपर पहरा देने वाले सिपाहीने उनके एक थप्पड़ लगा दिया। बनारसीदासने उसे कुछ नहीं कहा और उन्होंने उसका नम्बर नोट कर लिया। फिर दरबारमें जाकर राजासे कहा कि अमुक नम्बरके सिपाहीको बुलाओ। सिपाही आया तो उसने बनारसीदास जी को दरबारमें देख लिया और थर-थर कांपने लगा। सोचा अरे ये तो वे ही हैं जिनको मैंने थप्पड़ लगाया था; पता नहीं आज मेरा क्या होने वाला है ? बेचारा कांपने

[illegible] उससे पूछा, "तुम्हें कितना वेतन दिया जाता है ?" उसने
गया । बनारसीदास जी ने उससे पूछा, "तुम्हें कितना वेतन दिया जाता है ?" तब उन्होंने
मझा, अवश्य मेरा वेतन कम किया जायगा । उसने डरकर कहा, "१० रुपए ।" तब उन्होंने
जा जी से कहा कि राजन् ! इसके दो रुपये बढ़ा दीजिये । सिपाहीने सोचा कि कहीं ये
जाक तो नहीं कर रहे हैं । बनारसीदास जी ने फिर कहा कि यह सिपाही बड़ा ईमानदार
। मैं रास्तेमें लघुशंका करने बैठा तो अपनी ड्यूटीका पक्का निकला और मुझे रोक दिया।
क्षमाशील पुरुषोंकी ऐसी बातें होती हैं । एक जयपुरका किस्सा लीजिये । अमरचन्द जी दीवान
थे । ऐसा ऐलान राजदरबारसे हुआ कि शेरको वे खाना खिलायेंगे । शेर मांस खाता था और
अमरचन्द जी जैन थे, इसलिये मांस खिला नहीं सकते थे । उन्होंने जलेबीसे भरा थाल मंगाया
और थाल लेकर पिंजड़ेमें खुद ही घुस गये और शेरसे बोले—हे वनराज ! यदि आपको मांस
ही खाना हो तो मैं आपके सामने खड़ा हूँ, खा लो और पेट ही भरना है तो जलेबीको खा
लो । यह कहनेपर शेरने वे जलेबी ही खा लीं । दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा ।

आत्मदर्शी तत्त्वज्ञ पुरुषके क्षमाकी सुरम्यता—जिन्होंने आत्मस्वरूप जाना और उसी
को सबमें निरखा, उनसे सबकी मित्रता ही रहती है । इसलिये ही कहा है कि क्षमाशील पुरुष
हमेशा सुखी रहते हैं और जिनके क्षमा नहीं है वे सदा दुःखी रहते हैं । ऐसे क्रोधसे कोई लाभ
नहीं जो स्वयंको दुःखी करे । क्षमा वह कहलाती है जहाँ असमर्थोंपर भी क्रोध नहीं किया
जाता । उपद्रुत होनेपर भी ज्ञानस्वभावसे चिगना नहीं हुआ वह कहलाती है उत्तम क्षमा ।
अन्यके दोषको क्या देखते हो, जो क्रोध हो रहा है इस अपने महान् दोषको क्यों नहीं देखते ?
स्वयंमें जो औपाधिक दोष है, उसे दोषरूप समझ लेना क्षमाकी अनुग्रहपूर्वक दृष्टि पानेका मंग-
लाचरण है । क्षमा वहाँ मिलती है जहाँ चैतन्य गुणमें चित्त बसा रहता है । अतः उत्तम क्षमा
भगवान्‌का बाना है । उसकी आराधना करो और मोक्षमार्गमें लगो । अपने आपमें चैतन्यस्व-
भावकी दृष्टि करते रहो । उत्तम क्षमा धारण करने वालेके आत्मस्वभावमें स्थिरता होनेसे स्व-
भावका निरुपाधिक स्वच्छ विकास होता है और पूर्ण विकास होनेपर स्वयं शांत बुद्ध शिव-
[illegible] भगवान् हो जाता है । यह उत्तम क्षमा आत्माका रूप है । इस स्वरूपमें यह आत्मा
है । इसी आत्माकी यह क्षमा पर्याय है । उत्तम क्षमा कहीं बाहरसे लानेकी चीज नहीं, अपने
स्वभावमें रुचि व लक्ष्य करो, विभावसे मुख मोड़ो, क्षमा सुतरां आवेगी । ऐसी उत्तम क्षमाको
धारण करो । जिसके उत्तम क्षमा होती है उसे मनुष्य भी, देव भी सभी नमस्कार करते हैं ।
[illegible] लौकिक चमत्कार है, तात्त्विक फल शाश्वत सत्य शान्ति है । ऐसी क्षमा सम्य-
ग्ज्ञानके बिना नहीं होती । अतः तत्त्वज्ञानपूर्वक सम्यक् उत्तम क्षमावान् रहना चाहिये ।

[illegible]का महत्त्व—भैया ! परवस्तुओंके परिणमनको निरखकर उनके ज्ञाता दृष्टा
[illegible], यह बड़े ऊँचे महंत पुरुषोंका काम है । पर ये महंत पुरुष कहींसे

टपककर नहीं आते। एक अपने स्वरूपका पता होनेसे ही महंत पुरुप बनते हैं। हम अपने सब गुणोंका आदर करें तो महान् बन सकते हैं और ऐसे महान् बननेके लिये अपने जीवनमें एक साधन करना होगा भैया, कि हम प्रत्येक मनुष्योंके गुणोंको तो निहारें और उनके गुणों को देखकर अपनेमें अमोघ भावना बनायें कि हे भाई ! आप अपने गुणोंको देखकर महान् बन गये हों, हमें भी अपने गुणोंको पहिचानकर महान् बनना है जिसकी जैसी रुचि होती है उसकी उसपर ही दृष्टि पहुंचती है। जिस मनुष्यके दोपोंका परिणाम है वह सर्वत्र ही दूसरोंके दोपों को तकेगा और जिसके गुणोंका परिणाम है वह सर्वत्र दूसरोंके गुणोंको ही तकेगा। यह अपने उद्धारका एक मूलमंत्र है। लोटा किसका किसका छानोगे ? एक अपने ही परिणामको उत्तम दृष्टिमें बना लो तो अपना उद्धार हो जायगा।

चित्तमें आत्मगुणोंका वास होनेपर उत्तम क्षमाका अभ्युदय—जहँ चेयणगुण चित्त धरिज्जहँ—उत्तम क्षमा वहां होती है जहां चेतन गुण अपनी चेतनामें धारण किया जाता है। नई ही तो कथा थी भैया—भगवतीदास जी आगराके ही रहने वाले थे। उनसे यदि कोई कहे कि आपको देखो अमुक आदमी इस इस तरहसे गाली दे रहा था। तो वे उत्तर देते थे कि वह गाली देता हो या न देता हो, पर तुम तो हमारे सामने ही गाली दे रहे हो। उत्तम क्षमा वहाँ होती है जहाँ चित्तमें आत्मगुण बसता है।

इह उत्तमखमजुय णरसुरखगणुय केवलणाणु लहेवि थिरु।
हुय सिद्ध णिरंजण भवदुहभंजणु अगणिय रिसिपुंगव जि थिरु ॥

इस प्रकार उत्तम क्षमासे युक्त मनुष्य, देव और विद्याधरोंसे वंदित होता हुआ, भव को नाश करने वाले केवल गुणोंको प्राप्त करता है और सदाके लिए संसारसे मुक्त हो जाता है।

आत्माके नाते धर्म, चर्चा आदिके निर्णयके यत्नमें सत्य निर्णयकी संभवता—संसार का प्रत्येक प्राणी सुख शान्ति चाहता है और जितने भी प्रयत्न करता है वह सुख शान्तिके लिए ही करता है, किन्तु सुख शान्ति अब तक मिली नहीं उसका कारण क्या है ? सुख शांति कैसे प्राप्त हो यह विपय सबको भली-भांति समझ लेना चाहिए। जो कुछ बात हो, चर्चा हो, अध्ययन हो सबको आत्माके ही नातेसे सुनो तो आत्मामें बात बनेगी और यदि ऐसे नाते लगाकर सुनें कि मैं अमुक हूं, मुझे सुनना चाहिए, मैं अमुक जातिका हूं, अमुक कुलका हूं, ऐसी पोजीशनका हूँ आदि, तो उससे कुछ लाभ न मिलेगा। भीतरमें एक ऐसी बुद्धि रखकर सुनें कि मैं जीव हूँ, सुख दुःख पाता रहता हूँ, मुझे तो ऐसा उपाय जानना है कि मेरे दुःख दूर हों, मैं सुखी होऊँ और मुझे वास्तविक शरणकी प्राप्ति हो। यह उद्देश्य यदि बन गया तो सब बातें बड़ी सुगमतासे समझमें आ जायेंगी। आज अनेक प्रयत्न करनेपर भी सुख शांति

नहीं प्राप्त कर पा रहे तो उसका कारण क्या है ? उसका कारण है ५ प्रकारके परिणाम— भ्रम, क्रोध, मान, माया, लोभ। भ्रमके मायने यह हैं कि जो बात जैसी नहीं है उसे वैसी मानें। ये सारे दुःख इस भ्रमके ऊपर डटे हुए हैं। भ्रम दूर हुआ कि दुःख भी दूर होने लगता। यह अपनी बात है, अपने आपके अन्दर समझमें आने वाली बात है। खुदके भीतर खुदको निरखना है इस ढंगकी तैयारी करके अपनी बात समझिये। दुःखका कारण है भ्रम। भ्रम क्या ? जैसे कि यह देह तो मैं नहीं हूं, मैं तो हूं एक चैतन्यस्वरूपमात्र आत्मा, पर मानें कि यह मैं हूं, बस यही भ्रम सारे दुःखोंका कारण बन जाता है। ऐसे ही और-और भी बातें मानें कि मैं ऐसी पोजीशनका हूं, ऐसा ठाठ-बाट वाला हूं आदिक, ये सब भ्रमकी बातें हैं। मैं एक ज्ञानमय पदार्थ हूं। सुख शान्ति प्राप्त करनेके लिए एक बड़ा ही साहस बनाना होगा कि मेरा इस संसारमें कहीं कुछ नहीं है। ये दिखने वाले बाह्य पदार्थ सब मायारूप हैं, इनसे मेरा कोई सम्बंध नहीं, इनसे मेरा कुछ भी सुधार बिगाड़ नहीं। मुझे ये कोई भी बाह्य पदार्थ न चाहिएँ। मुझे तो बस एक अपने आत्माकी शान्ति चाहिए। ऐसा जिसने महान संकल्प किया हो वही शान्ति पा सकेगा। तो समस्त दुःखोंका सर्वप्रथम कारण है भ्रम। इस भ्रमके कारण यह जीव अपने आपका कुछ भी सही निर्णय न कर पायगा, और जब तक अपने आपका सही निर्णय नहीं होता तब तक ये क्षमा, मार्दव, आर्जव आदिक धर्म टिक नहीं सकते। तो अपने आपमें इन धर्मभावोंको विराजमान करनेके लिए सर्वप्रथम अपने आत्माके अस्तित्वका निर्णय करें।

हैं, ये तो ऐसा नहीं सोच पाते कि मैं दुःखी हूं। तो पहिले यह सोच लो कि मैं हूं या नहीं। मैं जीव हूं या नहीं? जीव भी कोई चीज है क्या? अरे इस प्रकारका कुछ भी जो सोच रहा हो वही जीव है। जीवको समझनेमें कोई अधिक कठिनाई नहीं है, किन्तु समझना न चाहे तो उसके लिए कठिन है और असंभव है। हम जब देखते हैं दुनियामें पशु पक्षी आदिक अनेक शरीर तो हम अंदाज लगा लेते कि यह जीव है। कौन नहीं समझता कि यह जीव है? देखो जब किसी कुत्तेको या गाय, भैंस आदिकको कोई मारता है तो लोग कहने लगते कि अरे क्यों मारते हो इस बेचारेको? और कोई भींतको मार रहा हो उससे कोई नहीं कहता तो क्या उसकी समझमें यह बात नहीं है कि यह जीव है? जीवकी बात समझना कोई कठिन बात नहीं है। अच्छा चलो—जो यह कहते कि मैं जीव नहीं हूं तो कहने वाला कौन? जो मना कर रहा वही जीव। जीवको सिद्ध करना भी क्या कठिन है? कठिन तो थोड़ा यह है कि भली-भाँति जान लें कि यह मैं जीव अपने आप सहज कैसा हूं? वह समझमें आ गया तो समझ लीजिए कि परमात्मा समझमें आ गया, ईश्वर समझमें आ गया, सारी समस्यायें हल करनेकी विधि आ गई। वह बात कही जायगी अवसर पाकर, पर यह ध्यान दीजिए कि जीव जरूर है और यह मैं जीव हूं। इस मुझको अपने दुःख दूर करना है, इसमें ही हमारा हित है। यदि इन मोह ममताकी ही बातोंमें पड़े रहे तो यह ही जन्म मरण उसका फल है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपनी मानी हुई इज्जतकी कुर्बानी करनी होगी। कोई अपने चित्तमें ऐसा समझे कि मैं अमुक हूं, ऐसी पोजीशनका हूं, लोकमें मेरा ऐसा स्थान है, ऐसी बातपर जो ध्यान देता हो उसे भीतरका परमात्मा दिख नहीं सकता। बड़ी कुर्बानीके साथ अपने आपके मोक्षके मार्गमें आयेंगे तो ऐसा रास्ता मिलेगा कि सदाके लिए हमारा दुःख दूर हो जायगा। जीवकी बात कह रहे। जीवको कौन नहीं जानता? भला जो बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग हैं वे इस जीवके द्वारा जो अश्रु बहाने आदिके कार्य दिखते हैं उन्हें बनाकर दिखा तो दें। यद्यपि मूर्तियाँ तो ऐसी ऐसी बना देते हैं कि वे सचमुचके मनुष्य (स्त्री, पुत्र, बालक आदिक) लगते हैं, पर उनके निकट जाकर देखो तो वे पत्थरकी जैसी अचेतन, जड़, नजर आती हैं। तो इस जीवको कौन नहीं पहिचानता? अब अपने आपके जीवको पहिचानना है और यह समझना है कि मैं वास्तवमें जीव कैसा हूं? यदि यह बात भली-भाँति समझमें आ गई तो समझ लो कि हमें दुःखोंसे दूर होनेकी एक दिशा मिल गई।

जीवके अस्तित्वके निर्णयके आधारभूत अन्य तीन साधनोंका प्रकाशन—भैया! अपना ऐसा ही उद्यम करना है कि कोई ऐसा काम बना लें कि फिर भविष्यमें बड़े आरामसे रहें, कोई तकलीफ न उठानी पड़े, इसके लिए क्या आप तैयार बैठे हैं? अपनी यात्रा तो देखो—कोई मनुष्य-जिन्दगी ही पूरी यात्रा नहीं है। एक यह मनुष्यभव मिट गया तो क्या आप मिट

नहीं प्राप्त कर पा रहे तो उसका कारण क्या है ? उसका कारण है ५ प्रकारके परिणाम— भ्रम, क्रोध, मान, माया, लोभ। भ्रमके मायने यह हैं कि जो बात जैसी नहीं है उसे वैसी मानें। ये सारे दुःख इस भ्रमके ऊपर डटे हुए हैं। भ्रम दूर हुआ कि दुःख भी दूर होने लगता। यह अपनी बात है, अपने आपके अन्दर समझमें आने वाली बात है। खुदके भीतर खुदको निरखना है इस ढंगकी तैयारी करके अपनी बात समझिये। दुःखका कारण है भ्रम। भ्रम क्या ? जैसे कि यह देह तो मैं नहीं हूं, मैं तो हूं एक चैतन्यस्वरूपमात्र आत्मा, पर मानें कि यह मैं हूं, बस यही भ्रम सारे दुःखोंका कारण बन जाता है। ऐसे ही और-और भी बातें मानें कि मैं ऐसी पोजीशनका हूं, ऐसा ठाठ-बाट वाला हूं आदिक, ये सब भ्रमकी बातें हैं। मैं एक ज्ञानमय पदार्थ हूं। सुख शान्ति प्राप्त करनेके लिए एक बड़ा ही साहस बनाना होगा कि मेरा इस संसारमें कहीं कुछ नहीं है। ये दिखने वाले बाह्य पदार्थ सब मायारूप हैं, इनसे मेरा कोई सम्बंध नहीं, इनसे मेरा कुछ भी सुधार बिगाड़ नहीं। मुझे ये कोई भी बाह्य पदार्थ न चाहिएँ। मुझे तो बस एक अपने आत्माकी शान्ति चाहिए। ऐसा जिसने महान संकल्प किया हो वही शान्ति पा सकेगा। तो समस्त दुःखोंका सर्वप्रथम कारण है भ्रम। इस भ्रमके कारण यह जीव अपने आपका कुछ भी सही निर्णय न कर पायगा, और जब तक अपने आपका सही निर्णय नहीं होता तब तक ये क्षमा, मार्दव, आर्जव आदिक धर्म टिक नहीं सकते। तो अपने आपमें इस क्षमाभावको विराजमान करनेके लिए सर्वप्रथम अपने आत्माके अस्तित्वका निर्णय करें।

जीवके अस्तित्वके निर्णयके आधारभूत छह साधनोंका निर्देशन—मैं एक जीव हूं, इसका पहिला एक यही निर्णय है कि जितने शब्द हैं, जितने पद हैं उनका वाच्य अवश्य है। चाहे वह बाहर हो, कहीं हो, कोई कहे कि आकाशका फूल कहाँ है ? अरे आकाश तो है, फूल तो है। अरे आकाश न होता, फूल न होता तो ये शब्द कहाँसे आ जाते ? जितने शब्द ये कहे जाते हैं वे यह साबित करते हैं कि हाँ है कुछ। जीवको समझनेके लिए अधिक क्या कोशिश करना ? बड़ी आसानीसे समझमें आ जाता है। समन्तभद्राचार्य स्वामीने आप्तमीमांसामें कहा है कि जीवशब्दः स बाह्यार्थः संज्ञत्वाद्धेतु शब्दवत्। जीवशब्द बाह्य अर्थसहित है याने जीव शब्द जीव अर्थका वाचक है, क्योंकि यह संज्ञा है, हेतु शब्दकी तरह। तो पहिले शब्द ही बताते हैं कि हां है जीव। यह बात इसलिए कही जा रही है कि हम आप लोग दुःखी तो होते जाते, पर यह नहीं जान पा रहे कि वास्तवमें दुःखी कौन हो रहा और क्यों हो रहा ? एक बाहर-बाहर ही अपना उपयोग करके दुःख मेटनेका प्रयत्न कर रहे हैं। सबसे पहिले तो आप इस बातका निर्णय कर लीजिए कि मैं एक जीव हूं या नहीं ? जीव भी कोई चीज है या नहीं ? ....अरे जिसे यह समझ बन रही, बस वही तो जीव है। ये पत्थर खम्भा आदिक चीजें पड़ी

है, वे भी ऐसा नहीं सोच पाते कि मैं दुःखी हूं। तो पहिले यह सोच लो कि मैं हूं या नहीं। मैं जीव हूं या नहीं ? जीव भी कोई चीज है क्या ? अरे इस प्रश्नका उत्तर भी जो सोच रहा हो वही जीव है। जीवको समझनेमें कोई अधिक कठिनाई नहीं है, किन्तु समझना न चाहे तो उसके लिए कठिन है और असंभव है। हम जब देखते हैं दुनियामें पशु पक्षी आदिक अनेक शरीर तो हम अंदाज लगा लेते कि यह जीव है। कौन नहीं समझता कि यह जीव है ? देखो जब किसी कुत्तेको या गाय, बैल आदिकको कोई मारता है तो लोग कहने लगते कि अरे क्यों मारते हो इस बेचारेको ? और कोई चींटीको मार रहा हो उनसे कोई नहीं कहता तो क्या उनकी समझमें यह बात नहीं है कि यह जीव है ? जीवकी बात समझना कोई कठिन बात नहीं है। अच्छा बताओ—जो यह कहते कि मैं जीव नहीं हूं तो कहने वाला कौन ? जो मना कर रहा वही जीव। जीवको सिद्ध करना भी क्या कठिन है ? कठिन तो थोड़ा यह है कि भली-भांति जान लें कि यह मैं जीव अपने आप सहज कैसा हूं ? यह समझमें आ गया तो समझ लीजिए कि परमात्मा समझमें आ गया, ईश्वर समझमें आ गया, सारी समस्यायें हल करनेकी विधि आ गई। यह बात यहीं आयगी अवसर पाकर, पर यह ध्यान दीजिए कि जीव जरूर है और यह मैं जीव हूं। इस मुझको अपने दुःख दूर करना है, इसमें ही हमारा हित है। यदि इन मोह ममताकी ही बातोंमें पड़े रहे तो यह ही जन्म मरण उसका फल है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपनी मानी हुई इज्जतकी कुर्बानी करनी होगी। कोई अपने चित्तमें ऐसा समझे कि मैं अमुक हूं, ऐसी पोजीशनवाला हूं, लोकमें मेरा ऐसा स्थान है, ऐसी बातपर जो ध्यान देता हो उसे भीतरका परमात्मा दिख नहीं सकता। बड़ी कुर्बानीके साथ अपने आपके मोक्षके मार्गमें आयेंगे तो ऐसा रास्ता मिलेगा कि सदाके लिए हमारा दुःख दूर हो जायगा। जीवकी बात कह रहे। जीवको कौन नहीं जानता ? भला जो बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग हैं वे इस जीवके द्वारा जो अश्रु बहाने आदिके कार्य दिखते हैं उन्हें बनाकर दिखा तो दें। यद्यपि मूर्तियां तो ऐसी ऐसी बना देते हैं कि वे सचमुचके मनुष्य (स्त्री, पुत्र, बालक आदिक) लगते हैं, पर उनके निकट जाकर देखो तो वे पत्थरकी जैसी अचेतन, जड़, नजर आती हैं। तो इस जीवको कौन नहीं पहिचानता ? अब अपने आपके जीवको पहिचानना है और यह समझना है कि मैं वास्तवमें जीव कैसा हूं ? यदि यह बात भली-भांति समझमें आ गई तो समझ लो कि हमें दुःखोंसे दूर होनेकी एक दिशा मिल गई।

जीवके अस्तित्वके निर्णयके आधारभूत अन्य तीन साधनोंका प्रकाशन—भैया ! अपना ऐसा ही उद्यम करना है कि कोई ऐसा काम बना लें कि फिर भविष्यमें बड़े आरामसे रहें, कोई तकलीफ न उठानी पड़े, इसके लिए क्या आप तैयार बैठे हैं ? अपनी यात्रा तो देखो—कोई मनुष्य-जिन्दगी ही पूरी यात्रा नहीं है। एक यह मनुष्यभव मिट गया तो न। आप मिट

[illegible]ए ? अरे अभी तो अनन्त कालकी यात्रा सामने लगी है। जो है उसका अभाव नहीं है ऐसा तो सभी लोग कहते हैं। असत्का कभी सद्भाव नहीं होता और सत्का अभाव नहीं होता। तो यह मैं आप जीव कभी मिटेगा नहीं। तो मेरेको भविष्यमें किस तरह रहना चाहिए ? यहाँ तो लोग इस १०–२०–५० वर्षके जीवनके लिए सब प्रकारकी सुविधायें बनानेकी चिन्ता करते, उतने ही जीवनको अपना जीवन समझते, उसके आगेके अनन्तकालके लिए जो समय पड़ा हुआ है उसका कुछ भी नहीं सोचते। देखिये अब दशलक्षण धर्मके दिन हैं, इन दिनों और सब बातोंकी तो उपेक्षा कर दीजिए, एक धर्मपालनकी ओर मुख्यतासे ध्यान दीजिए। धर्मपालनकी विधि ही ऐसी है कि उसकी धुन अच्छी बने, सत्संगमें रहें, स्वाध्याय करें, मनको संयत बनावें तब यह बात मिल पायगी कि ये दुःख न रहेंगे। हाँ तो पहिले जीव की बात देखो, जीवका अस्तित्व ऐसे भी लोग समझ सकते जो जाति स्मरणकी बातें अनेक जगह सुनते हैं, देखते हैं। अखबारोंमें तो ऐसी बहुतसी घटनायें निकला करती हैं कि अमुकने अपने पूर्व भवकी बातें बतायीं। आप लोगोंने भी ऐसी अनेक घटनायें देखी भी होंगी। तो वह बात क्या हो नहीं सकती ? अरे हो सकती है। यह जातिस्मरणकी बात भी यह सिद्ध करती है कि जीव है। अच्छा आप यह बतलावो—अगर पूर्वभवमें जीव न होता तो ये जो बच्चे उत्पन्न होते हैं वे उत्पन्न होनेके साथ ही अपनी माँ का स्तन चूसने लगते हैं। उन्हें यह बात [illegible] सिखा थी ? अरे उनके पूर्वभवमें भी ऐसी आहार करनेकी संज्ञा थी इसलिए वह तुरन्त [illegible] ही वे सारी क्रियायें करने लगता। यहाँ तो किसीको कोई काम सीखना [illegible] सीखनेमें कितना समय लगता है। बड़े काम सीखनेकी तो बात छोड़ो, छोटे- [illegible] भी काफी समय लगता है। जैसे गुरु जी (क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी जी) [illegible] लोटेमें पानी भरकर लोटेको बिना मुखमें लगाये, यों ही ऊपरसे [illegible] रहते हैं और पीते रहते हैं, उससे लोटा झूठा नहीं होता। तो [illegible]) सोचा कि हम भी इस तरहसे पानी पीना सीखें, तो [illegible] लगा था। बताओ इतने बड़े पुरुषको और इस छोटीसी बात [illegible] कि जब पैदा हुए बच्चेको दूध मुखसे पीने, उसे घूंटकर [illegible] लगना चाहिए था ? पर वहाँ अधिक समय [illegible] है। तो इससे यह निर्णय कर [illegible] इस जीवका (आत्माका) [illegible]। कोई ही कोई श्रम करता अधिक [illegible] धर्मपालन करता पर उससे कुछ वास्त- [illegible] दुःखोंसे छुटकारा। उपाय न

मिलेगा जब तक मैं अपने आत्माके सत्यस्वरूपको न समझूँ। वैसे तो यदि कठिन विपत्तिकी स्थिति आ जाय तो झट समझमें आयेगा कि हाँ है भगवान और भगवानको पुकारने लगेगा, अपनेमें क्लेश अनुभव करने लगेगा। पर जरा आराममें, शान्तिसे ही आत्माको जान लो। आत्माका निर्णय कर लेना एक वड़े महत्त्वकी चीज है। जो वड़े-वड़े दार्शनिक ग्रन्थ हैं उनका भी माध्यम यही है। आत्मनिर्णय करनेके वाद आत्महितकी वात अधिक सोची जा सकती है।

क्षमासे आत्मगुणोंका विकास—आज उत्तम क्षमाका दिन है। क्षमा क्या चीज कहलाती है और उस क्षमाका इस आत्माके कल्याणके लिए कितना सहयोग है? जिसने आत्मतत्त्वका निर्णय किया, वास्तवमें क्षमा वही कर सकता है और जिसने नहीं जाना आत्माको फिर भी अपनी शक्तियोंके अनुसार क्षमाका अगर वातावरण उसके रहता है तो उसका जीवन शान्त और सुखी रहता है। क्षमा कहते हैं क्रोध न होनेको। किसी जीवने अपराध किया, तुरन्त किया हो या पहिले किया हो, विकार न आ सके चित्तमें, उसके विनाशकी भावना न आ सके चित्तमें, ऐसे परिणामको क्षमा कहते हैं। देखो क्षमा करनेमें तत्काल भी आत्मामें आनन्द आ जाता है। जो कोई जो कुछ करता है वह अपने लिए करता है। यदि आप क्षमा की आदत वना लेंगे तो उससे आपको भी सुख मिलेगा और दूसरा भी सुखी हो जायगा। क्षमा वीरोंका आभूषण है, कायरोंका नहीं। क्षमा करनेसे फायदा मिलेगा खुदको। आत्मनिर्णय करनेके वाद यह सोचें कि मेरे आत्माकी भलाई किस वातमें है? क्रोध, मान, माया, लोभ—इन चारों कषायोंके दूर करनेमें अपनी भलाई है। यह वात कोई अधिक समझानेके लिए नहीं है, क्योंकि सव समझते हैं कि क्रोधमें कितना अनर्थ हो जाता है। जो क्रोध करता है उसके क्रोधमें पसीना तक आ जाता है, स्वयं आकुलित हो जाता है, दुःखी हो जाता है। तो अपना दुःख दूर करनेके लिए, अपनेपर दया करके इस क्षमाभावको अपनाना चाहिए, अपनी ऐसी प्रकृति वतावें। वस्तुतः देखो—मेरेको तो कोई जानता ही नहीं, मैं तो एक चैतन्यस्वरूप हूं, इस मुझको तो कोई जानता भी नहीं। कोई इस शरीरको देखकर अगर गाली देगा या प्रशंसा करेगा तो उससे मेरेमें विगाड़ क्या अथवा सुधार क्या? प्रशंसक अथवा निन्दक दोनों के प्रति समताकी दृष्टि रहे। वल्कि उस निन्दकको तो अपना परममित्र समझ लो, क्योंकि वह वेचारा तो अपना खुदका सारा विगाड़ करके, नुकसान करके मेरे दोषोंको निकाल रहा है। तो सव जगह यही भावना रहे कि मेरे लिए सव जीव एक समान हैं, न कोई मेरा शत्रु और न कोई मेरा मित्र। सव जीवोंके प्रति सुखी होनेकी भावना रहे। आप इस वातका अन्दाज कर लें कि यदि आप किसी जीवको दुःखी करनेका विचार करते हैं तो आप स्वयं ही पहिले दुःखी हो जाते हैं तव कहीं उस दूसरेको दुःखी कर पाते हैं। आपके दुःखी करनेसे दूसरा दुःखी हो अथवा न भी हो। तो सवके प्रति अपना यही भाव रहे कि जगतके सभी जीव सुखी हों।

यदि ऐसा भाव आने लगा [illegible]
दुःखी न रहो, [illegible]
भी कहे पर उन सब बातोंको भी [illegible]
ऐसी बात न बताये रहें कि इसने मुझे यों [illegible]
संसार दुःखमय है, अपनेको सावधान बना लो, यह संसारसागर [illegible]
सकता हूं, शान्त हो सकता हूं, इसका यत्न कर लो। [illegible]
जाय, दूसरोंको क्षमा करें, बड़प्पन इसीमें है।

क्षमामें वीरकी भूषणरूपता—क्षमाको वीरोंका भूषण कहा गया है। [illegible] ने मुझे सताया और मैं कुछ न कह सका, भीतर ही भीतर [illegible] तो वह हमारी क्षमा नहीं कहलायेगी। क्षमाका फल है शान्ति, आनन्द। क्षमा करना काय[र] काम नहीं। कायर वह कहलाता है जो विषयोंका लोभी हो, और उन विषयोंके छुड़ानेके पर उसे क्रोध उत्पन्न होता है। तो कायरोंसे क्षमा नहीं बन सकती। वह कायर तो [सोचता] है कि इसने मुझे गाली दी और ये इतने लोग मुझे क्या कहेंगे? अरे तुम्हें कोई कुछ क[हे] तो उसमें तुम्हारा बिगाड़ क्या हो गया? तुम तो अपने आपको सम्हालो। इन बाहर [के लोगों] की बातोंका ध्यान रखकर तो वह अपना ही पतन कर रहा है, उसे अपने आपके स्वरू[पका] कुछ पता नहीं। ज्ञानी पुरुष किस तरहका विचार करता है—इसका चिन्तन समाधितन्त्रके श्लोकमें देखिये—मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः। मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे [शत्रुर्न] च प्रियः॥ ये दिखने वाले लोग, मायामयी पदार्थ, ये कोई मेरे कुछ नहीं लगते, इनसे कुछ सम्बंध नहीं, कोई नाता नहीं, न कोई मेरा शत्रु, न मित्र। इनसे न मेरा कुछ सुधा[र] न बिगाड़ हो। यहाँ तो जितना जो व्यवहार है वह इस मूर्त शरीरको देखकर किया जा[ता] है। मायाकी मायासे पहिचान है। इस मुझ आत्मतत्त्वको तो ये कोई जानते ही नहीं हैं। [मैं] तो एक गुप्त तत्त्व हूं। गुप्तका अर्थ है सुरक्षित होना। यहाँ तो लोग गुप्तका अर्थ "छिपा हु[आ"] करते हैं, पर संस्कृत जानने वाले लोग जानते होंगे कि इस गुप्तका अर्थ है गुपू सुरक्षणे सुर[क्षित] होना। तो मेरा वह आत्मतत्त्व सुरक्षित है, उसको तो कोई जानता ही नहीं। हाँ वह आ[त्म]तत्त्व आज इस देहमें फंसा हुआ है, इसलिए खाने पीने आदिकी क्रियायें करनी पड़ रही[ं हैं,] सभीसे व्यवहार करना पड़ रहा है। ज्ञानी पुरुष व्यवहारकी समस्त क्रियावोंको करता हुआ भी श्रद्धा यही बनाये रहता है कि ये मेरे वास्तविक कर्तव्य नही, ये मेरे कोई कुछ नहीं।

क्रोधसे अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोनों सौन्दर्योंका विनाश—देखो—जब कभी किसीको क्रोध आता है तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, उसके सारे गुण समाप्त हो जाते हैं। जब कभी कोई क्रोध करता है तो उस समय उसके चेहरेकी शकल भी बिगड़ जाती है। जरा

आपके पास कैमरा हो और आप उस क्रोध करने वालेका फोटो ले लें तो देखिये कितना बुरा चेहरा बन जाता है उसका ? लोग कहा करते हैं कि देखो यह स्त्री अथवा यह पुरुष कितना सुन्दर है, तो उसकी सुन्दरता कब है जब कि वह शान्त है। यदि वह जरा-जरासी बातमें क्रोध करे तो देखिये उस क्रोध करते हुए समयमें उसकी सुन्दरता खतम हो जाती है। क्रोध करने वाला पुरुष अथवा स्त्री कोई हो, वह किसीको नहीं सुहाता। तो इस सुन्दरतामें सहयोग देते हैं समता, सद्विचार, और सद्विवेक। कोई मूर्ख भी हो और कहा जाय कि भाई तुम यहाँ विश्रामसे बैठ जावो तो विश्रामसे बैठे हुएमें उसमें सुन्दरता रहती है तो भाई यह क्रोध वैरी इस जीवका शत्रु है, इससे दूर रहनेमें ही आत्माका हित है। तो अपने अन्दर क्षमाभाव रहना चाहिए, क्षमा करें हृदयसे, अपने आपपर दया करके कि मुझे तो सुखी होना है इसलिए मुझे क्षमाभाव करना चाहिए। मानव मानवके प्रति, मानवसमाजके प्रति एक रस बन जाओ, जो मैं हूं सो ये हैं। जो मेरा स्वरूप है सो इनका है। किसीके प्रति रंच भी वैर विरोध न रखो, सबको अपने ही स्वरूपके समान समझकर सबके प्रति क्षमाभाव धारण करो। खुदके भी सुखी रहनेकी भावना रखो और दूसरोंके भी सुखी रहनेकी भावना रखो।

———o———

उत्तम मार्दव

दस लाक्षणी धर्मके भौगोलिक प्रसंगमें आज दूसरा दिन है, और दसलाक्षणीमें मार्दव धर्मका दिवस है। मार्दवका अर्थ है कोमल परिणाम रखना। कोमल परिणाम होते हैं जब मान कषाय नहीं रहता है। मान कषायकी तीव्रता और मंदताकी शास्त्रोंमें कठोरतासे व नम्रतासे उपमा दी है।

मार्दव स्वरूपका विवरण—"मृदोर्भावः मार्दवम्" कोमलताके परिणामको मार्दव धर्म कहते हैं। परिणामोंमें वास्तविक कोमलताका आविर्भाव सम्यग्दर्शनके विना नहीं होता। वस्तुस्वरूपके बोध विना परस्पर सम्बन्धबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि, पर्यायबुद्धि आदि अभिप्रायसे भाव कठोर ही कहलाते हैं, जिसमें शुद्ध चैतन्यानुभवामृतका प्रवेश नहीं होता। जिसने उत्तम मार्दव को भले प्रकार समझ लिया है, जिसकी दृष्टिमें "उत्तम मार्दव हमारा चैतन्यस्वभाव है" इस प्रकारका विचार व श्रद्धान आ गया है, उस महात्माके उत्तम मार्दवका चैतन्यस्वभावमें भान

मद्दवभवमद्दणु माणणिकंदणु दयधम्महु मूलजु विमलु।
सव्वहँ हिययारउ गुणगणसारउ तिसहु वउ संजम सहलु॥

मार्दवधर्मकी भव मर्दनता—यह मार्दव धर्म संसारका मर्दन करने वाला है। वि परिणामसे, कोमलतासे संसारके सब संकट दूर हो जाते हैं। यह मार्दव धर्म मानको दूर क वाला है। मान होता है कर्तृत्वबुद्धिके साथ—मैं यह काम करता हूँ, मैंने यह किया, मैं ऐ कर दूँगा, मुझमें ऐसी सामर्थ्य है। परवस्तुवोंके परिणमनके सम्बन्धमें कुछ कर्तृत्वकी व सोचना यही तो मानकी जड़ है। यह आत्मा जो अमूर्त है, ज्ञानानन्दभावमय है वह अ ज्ञान और आनन्दके परिणमनके सिवाय अन्य क्या कार्य कर सकता है? पर मोहमें ऐ सूझता है कि मैं ऐसा-ऐसा कर दूँ।

कर्तृत्वबुद्धि व अहंकारकी व्यर्थता—एक सेठके चार लड़के थे। बड़ा लड़का कमाऊ था, उससे छोटा जुवारी था, उससे छोटा अंधा था और सबसे छोटा पुजारी था। पूजा

क्तिमें उसका बड़ा मन रहता है। बड़े लड़केकी स्त्री रोज लड़े कि तुम्हीं तो सब कमाते हो और ये तीनों बैठकर खाते हैं, न्यारे हो जावो ना, तो सब तुम्हारा ही हो जाय। बहुत दिनों बाद पिताजीसे कह बैठा कि पिताजी अब स्त्री नहीं मानती है, न्यारा होनेका तकाजा करती । सेठजी बोले बेटा कुछ डर नहीं, हो जावो न्यारे, पर यात्रा सब लोग मिलकर कर लो, फिर न जाने किसका कैसा भाग्य होगा ? सो सब यात्रा करने चले। एक शहरके बाहर चार दिनके लिए डेरा डाल दिया। पहिले तो कमाऊ पूतको सेठने १० रु० दिये और कहा बेटा जाओ भोजनकी सामग्री ले आओ। वह सोचता है कि १० रु० का क्या लायें ? एक बाजार से कुछ खरीदकर दूसरे बाजारमें बेच दिया। एक रुपया मुनाफेका मिल गया। अब वह ११ रु० की भोजन-सामग्री लेकर आया। दूसरे दिन जुवारीको १० रु० देकर कहा जावो भोजन-सामग्री ले आवो। तो वह शहरमें गया, रास्तेमें कहीं जुआ हो रहा था। उसने १० रु० दांवमें लगा दिये, समयकी बात कि वह जीत गया। तो वह २० रु० की भोजन-सामग्री ले आया। तीसरे दिन अंधेको १० रु० देकर कहा जावो भोजन सामग्री ले आवो। अंधेके साथ उसकी स्त्री भी चली, अंधेको रास्तेमें एक पत्थरकी ठोकर लगी। सोचता है कि हम जैसे और अंधोंको भी ठोकर लगेगी तो दुःख होगा। इसलिए उस पत्थरको निकालकर बाहर कर दिया। तीन घंटेमें तो वह पत्थर निकला। निकलनेपर स्त्री देखती है कि ओह ! यहाँ तो अशर्फियोंका भरा हंडा निकला। खूब भोजन-सामग्री लाये और सैंकड़ों अशर्फियाँ उड़ेल दीं।

चौथे दिन पुजारीको १० रु० देकर कहा—जावो भोजन-सामग्री ले आवो, वह गया। उसे एक सर्राफकी दूकान मिली, सो वहाँसे एक चांदीका कटोरा लिया, घी वालेके यहाँसे घी लिया, माचिस लिया और देवालयमें जाकर आरती लेकर बैठ गया। शामके चार बज गये। वह भक्तिमें है। उस मन्दिरका अधिष्ठाता देव देखता है कि इसके घरके लोग भूखे हैं, इसमें तो धर्मकी अप्रभावना है, सो खुद ही बच्चेका रूप बनाकर गाड़ियोंपर गाड़ियां भोजन सामग्री ले जाकर वहां दे आया। सबने खूब खाया और गांवको खिला दिया। अब जब शाम के ७ बज गए, पुजारी रोनी सूरत लेकर अपने पिताके पास पहुंचा, कहा—पिताजी आप भी भूखे हैं सब लोग भूखे हैं, रोने भी लगा। पिताने कहा—क्या हुआ बेटा ! क्यों रोते हो ? तुमने तो खूब खिलाया और सबको बांट दिया। चार दिनके बाद कमाऊ पूतसे पूछा—बेटा बतलाओ तुम्हारी तकदीरसे कितनेकी भोजन-सामग्री आयी ? बोला ११ रु० की, और जुवारी तुमसे दूनेका लाया, अंधा तुमसे हजार गुनेका लाया और पुजारी-पुत्रके विषयमें कहता है कि यह तो तुमसे अनगिनते गुने लाया। इसके गुनेका कुछ हिसाब ही नहीं है। इसके तो देव भी दास बन गये। तो बेटा तुम्हें न्यारा होना है ? बोला नहीं पिताजी, मैंने सब बातें समझ ली

है। हम पद-[illegible] [illegible]
है कहां ?

कलहका मूल ममत्व [illegible]
कषायकी लड़ाइयां हैं। [illegible]
उद्धार करो (अन्यमें तो मानो चेतना भी न हो), [illegible]
हैं। कहीं तो सिरफुटौवल भी हो जाती है। [illegible]
जीवोंपर एक समान चित्त रखो, [illegible]
क्यों सीमित हुए जा रहे हो ? खेद है 'पाकिस्तानमें ऐसी बाढ़ आई [illegible]
यह खबर अखबारोंमें पढ़कर हिन्दुस्तानके कुछ लोगोंका दिल फूल गया और [illegible]
पाकिस्तानमें जाये कि बिहारमें बाढ़ आई तो पाकिस्तानी फूले नहीं समाते। यह मेरा है [illegible]
लिए अच्छा है और यह परका है इसलिए बुरा है ऐसी कुबुद्धि है। [illegible]
आदि अनिष्ट तन, मन, वचनकी प्रवृत्तियोंसे होता है। जिनके वस्तुत्वका श्रद्धान है और [illegible]
कारण ममत्व न होनेसे हृदय स्वच्छ हो गया है, उनकी प्रवृत्तियां स्वपरकी बाधक नहीं होतीं [illegible]
जिनके परद्रव्यमें आत्मीयताकी मान्यता नहीं, क्रोधादि विभावोंमें आत्मीयताकी श्रद्धा न[illegible]
मान नहीं, मानका भान नहीं, उस विवेकीके कर्तृत्वबुद्धि नहीं हो सकती और कर्तृत्व न [illegible]
से वह शान्त, योग्य प्रवर्तक तथा कल्याणार्थियोंके लिये आदर्श हो जाता है, किन्तु इसके वि[illegible]
रीत जिनके भाव मिथ्यात्व मानसे ग्रस्त हैं उनको कभी शांति प्राप्त नहीं हो सकती। उ[illegible]
सर्वदा विसंवाद ही बढ़ता है।

निर्भ्रान्त होकर आनन्दलाभ लेनेका अनुरोध—यह आत्मा चैतन्यस्वभावमात्र के[illegible]
अपने ज्ञातानन्दके विकार या विकासको ही करनेमें समर्थ है, परपदार्थोंका यह कुछ परिण[illegible]
नहीं करता है। उसका समस्त परसे अत्यन्ताभाव है। देखो भैया ! जो कुछ भी सम्प[illegible]
आया है वह रहता जाता जरा भी नहीं, परन्तु उन विषयक अनेक मान्यताओंके कारण, [illegible]
प्रकारकी पर्यायबुद्धिके कारण, ममत्वबुद्धिसे ही अनादिसे यह जीव संसारमें भटक रहा है [illegible]
महान् दुःखी हो रहा है। इसका इतना कडुवा फल चख रहा है फिर भी आंख नहीं खुलत[illegible]
अरे भाई ! निगोदसे निकलकर व अनेक दुर्गमनसे निकलकर यह नरजन्म पाया तो विवेक [illegible]
लो—मैं आत्मा सबसे न्यारा अपने ही परिणामोंमें परिणमने वाला हूं, देह, कर्म आदि[illegible]
क्रिया मेरी परिणतिके बाहर है, फिर मेरा जगतमें क्या है ? मानकषाय छोड़ो और आ[illegible]
का अनुभव करो।

मार्दव भावकी दयामूलता—यह मार्दव परिणाम दया धर्मका मूल है और नि[illegible]
है। जिसके अभिमान है उसके दया कहां ठहर सकती है ? वह तो अपने गर्वसे चकचूर [illegible]

जो विनयशील है, कोमल परिणामी है उसमें ही दया हो सकती है। कहते भी हैं लोग कि तुम बड़े कठोर हो गए। जो कठोर है उसके चित्तमें दयाका प्रवेश नहीं होता। तो जिसमें मान भरा है उसमें दया नहीं आती। यह मार्दव धर्म समस्त जीवोंका हित करने वाला है। और समस्त गुणोंमें सारभूत इस मार्दव धर्मसे ही व्रत और संयमकी सफलता है। यह मान कितना बेहूदा परिणाम है कि तनसे सेवा भी कर लो और धन भी खर्च कर लो और एक अभिमान भरा वचन बोल दो तो सारी शान धूलमें मिल जाती है, और चाहे कुछ भी दूसरों का उपकार न हो सके किन्तु विनयशील है तो सबसे बड़ा दान एक यही दान हो गया। यह मार्दव धर्म समस्त गुणोंमें सार है और इस मार्दव धर्मसे व्रत और संयम सब सफल हो जाते हैं। यह जीव मान किसलिए करता है? केवल इसलिए कि लोग मुझे कुछ अच्छा कह दें। किसीको सबने कभी अच्छा कहा है? गांधी जी के विषयमें कितने ही मनुष्य डटकर बात कहते हैं कि उन्होने देशका ऐसा हित किया। जिसने गांधी जी को गोलीसे मारा था उसके अदालतमें बयान हुए, कुछ संकेतमें आया तो उसने यों बताया कि इनसे देशका अहित हो रहा है। कुछ लोग ऐसे भी हैं। भगवानके कई लोग समर्थक हैं और कई लोग विरोधक हैं। कहते हैं कि जो व्यर्थमें भगवानकी रटन लगाते हैं इन्होंने देशको बरबाद कर दिया। कहते नहीं बनता, भगवान-भगवान चिल्लाते हैं ऐसा भी कहने वाले बहुतसे लोग हैं। किससे अपनेको अच्छा कहलानेकी मनमें रखते हो?

मानकषायसे अतुल आत्मनिधिका विनाश—मानकषायसे इस लोकमें भी सुख नहीं है और परलोकमें भी सुख नहीं है। यहाँ तो मानीको हर कोई नीचा दिखानेकी घातमें रहता ही है और परलोकमें भी मानकषायके द्वारा बंधे कर्मके उदयको निमित्त पाकर उसे कुगतिके अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। मानकषायको अपने हृदयसे निकाल दो और यह तभी निकाल सकते हो जब आत्माके स्वभावको पहचानो। अरे, किस चीजपर मान करते हो? धन, वैभव, सम्पदा, पुत्र, मित्रपर? अरे न मालूम कितनी बार तो सम्राट् हो लिये, कितनी बार महाराज हो लिये, कितनो बार देवोंमें जाकर पुण्यके ठाठ भोगे, यहाँ जरासी सम्पदापर जो कि पूर्व भोगी हुई सम्पदाके सामने न कुछ ही समझो—क्यों इतराते हो? काहे को मान करके दुखी हो रहे हो? और भैया! जरा सोचो तो तुम्हारी आत्मा तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य स्वभाव वाली है, फिर इन थोड़ेसे चाँदी सोनेके टुकड़ोंको पाकर, कुछ पुत्र पुत्रियोंको पाकर क्यों अपनेको कुछ समझ बैठे हो? अरे, अपने निज गुणोंका विकास करो, त्रिलोकके पदार्थ तुम्हारे चरणोंमें आ पड़ेंगे। इसके लिये अधिक मुसीबत सहनेकी आवश्यकता नहीं। मात्र हंसीसे खुशीसे उत्तम मार्दव धर्मका पालन हो सकता है।

हठसे अपनी बरबादी—एक घटना है टीकमगढ़ शहरकी। गुरुजी सुनाया करते थे।

वहाँ एक सुनार सुनारिन थे। सुनारिनके यह हठ हो गया कि मुझे तो भुजामें पहिननेको ४० तोला सोनेके बखौरे चाहिये, तब हमारी शोभा है, हठ कर लिया। किसी तरहसे कर्ज लेकर सुनारने बखौरे बनवा दिये। बखौरे ठोस सोनेके बनते हैं जिसे बेचा जाय तो उतनेमें ही बिक जायें। अब वहाँ मोटी धोती पहिननेका रिवाज और समस्त अङ्ग ढककर चलनेका रिवाज था। किसीने न देखा तो प्रशंसा ही कौन करदे? उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ, सोचा बड़ा हठ करके तो बखौरा बनवाया और कोई पूछता भी नहीं है। सो उसके गुस्सा इतनी बढ़ी कि उसने अपने घरमें आग लगादी। अब घर जलने लगा तो उसे चिन्ता हुई, लोगोंको बुलाने लगी हाथ फटकार-फटकार कर, अरे वह कुवां है, वह बाल्टी है, अब जब हाथ थोड़ा-सा निकल गये तो एक स्त्रीने बखौरा देख लिया। बोली, अरी जीजी ये बखौरे कब बनवाये, ये तो बड़े ही सोने हैं। तो वह सुनारिन कहती है कि अरी रांड इतनी बात तू पहिले ही कह देती तो हम घरमें आग ही क्यों लगाती? देखो उसने अपने को अच्छा कहलाने के लिए घरमें आग लगा दी। अरे किनमें अपनेको अच्छा कहलवाना चाहते हो? इन मोही जन्म-मरणके चक्रमें फंसे हुये जीवोंसे अपनेको अच्छा कहलवानेकी धुन इस अभिमानी पुरुषके लग गई। जिसके अभिमान है उसने व्रत किया, संयम किया, धर्म किया तो भी उससे फायदा कुछ भी नहीं है।

मानमर्दनसे प्रभुभक्ति व अनन्त आनन्दका लाभ—जब मार्दवधर्म होता है तभी अर्हंत भगवानमें भक्ति होती है और जिसके घमंड हो गया वह कैसे भक्ति कर सकेगा? [illegible] मर्दन हो तभी भगवानकी भक्ति हो सकती है। यदि भक्ति चाहते हो तो मानकषाय तो [illegible] बिल्कुल निकालो। चक्रवर्तियोंके भी इतनी बड़ी भारी विभूति थी, वह भी उनके [illegible] तो हम उनके आगे क्या हैं? हम यहाँ कितनी-सी सम्पत्ति पाकर मान करें? [illegible] पाकर मान किया जाये? भगवानको देखो, सब कुछ उन्हें वैभव प्राप्त है और वे हैं [illegible] भी [illegible] नहीं देखते, अपनाना तो बहुत दूरकी बात है। यहाँ भी देखो [illegible] मिलेंगे हमसे बढ़-बढ़कर, बड़े बड़े धनी मिलेंगे हमसे अधिक, बड़े बड़े [illegible] मिलेंगे हमसे कहीं अधिक, कुटुम्बमें भी ज्यादा हमसे बहुतसे मिलेंगे—तो फिर [illegible] किस बातका मान करें? यह मान तो हमें बहुत ही दुःखी करने वाला है। [illegible] ही होगा। इस मानके मर्दनसे ही हमें अनन्त सुख मिल सकेगा।

[illegible] विहंडणु मद्दउ पंचिंदियमणदंडणु।
[illegible] पसरइ चित्त महीहि णवल्ली॥

[illegible] प्रसङ्ग—यह मार्दव धर्म मान कषायका नाश करने वाला [illegible] मानकी बातें चलती हों। मानके कारण ऐसे

झगड़े खड़े हो जाते हैं कि उन झगड़ोंका मूल तो कुछ भी नहीं है और इतना बड़ा रूप हो जाता है कि फिर उन्हें सुलझाना कठिन हो जाता है । यह मार्दव धर्म उन समस्त विसम्वादों को मिटा देने वाला है । जैसे पहाड़की चोटीपर खड़ा हुआ पुरुष नीचे रहने वाले सब आदमियोंको छोटा देखता है, चींटीकी तरह ये चले जा रहे हैं और ये नीचे जाने वाले हजारों आदमी ऊपर वाले पुरुषको देख लेंगे कि यह भी चींटीकी बराबर दिखता है । यहाँ मन तो एक है । यह पुरुष अकेला ही सबको छोटा देखता है पर ये पुरुष उस एक मानीको छोटा देखते हैं । दुनियादारीका ज्ञान और यह सब इज्जतमान चीजें नष्ट हो जाने वाली हैं, इनसे बुद्धि हटाकर एक चैतन्यस्वभावको देखो, उसीको निरखो और उसीमें मग्न (स्थित) रहो । यह मार्दव चित्तमें कुबुद्धिको नहीं आने देता । बातचीतमें दूसरोंके प्रति अनिष्टकी बात निकल जाये, यह घमंड ही की तो बात है । यदि मान न हो तो सदैव हितके ही वचन मुंहसे निकलेंगे । मार्दव धर्म घमंडका नाश करता है । दर्शन, ज्ञान, चरित्र ये रत्नत्रय मार्दव धर्मसे ही बढ़ते हैं । जिसके मानकषाय नहीं होती, उसकी दुनियामें बुराई नहीं होती तथा मानीकी सदा निन्दा होती है और उसे अपमान सहना पड़ता है । कहा भी तो है "मानीका सिर नीचा" ये बड़े-बड़े नेता इसी मार्दवके कारण तो बड़े बन गए । मानसे तो कुछ भी नहीं मिलता । मार्दव धर्मसे तो अनेक लाभ हैं, परन्तु मानकषायसे तो कोई लाभ नहीं है । मानकषायसे तो जीव दूसरोंका अपमान करके मान चाहता है, परन्तु परका अपमान करके स्वयंका मान त्रिकालमें भी नहीं हो सकता ।

संसार संकटोंके लानेमें मानका मुख्य हाथ—अब तक जो संसारमें रुलते चले आये हैं । इसमें इस मानका बड़ा हाथ है । एक छोटे बच्चेको भी गोदसे नीचे उतार दो तो वह भी यह महसूस करता है कि हमें ऊपरसे नीचे पटक दिया । भिखारी लोग भी मान कषायमें आकर अपनी गोष्ठीमें बढ़-चढ़ बातें किया करते हैं । मान कषायको चूर करने वाला धर्म मार्दव है । यह मार्दव धर्म पंचेन्द्रिय और मानको नाश करने वाला है । यह मार्दव अर्थात् विनय परिणाम इन्द्रियोंके विषयको भी हटा देता है । यह मोटर रखना, आरम्भको बढ़ाना, दो-दो चार-चार मिल खोलना, बंगला बनवाना, सिपाही पहरेदार रखना, बाग बगीचे बनवाना, अपने महलोंको सुन्दर सजाना—ये सब बातें जो बढ़ती हैं वे एक दूसरेकी देखादेखी बढ़ती हैं, क्योंकि उनमें होड़ हो जाती है कि मैं अमुक पड़ौसीसे कम क्यों रहूं ? विषय बढ़ने लगते हैं तो इन्द्रिय विषयोंका दलन करने वाला एक मार्दव धर्म है । अभिमान तब होता है जब चित्त में यह बात रहती कि मैं सबसे महान् हूँ । ऐसा सोचना अमृत भी है और विष भी है । आत्मकल्याणकी दृष्टि, स्वभावमें निगाह करके अपने आपको जाने कि मेरे लिये तो यह मैं ही महान् हूं, तो वह अमृत है और पर्यायबुद्धि करके इन पर्यायबुद्धि जीवोंमें इन पर्यायोंका

बड़प्पन बनानेके लिए भाव होता है कि मैं महान् हूं तो वह भाव विष है । कहीं भी कुछ भी देखो अंतमें अपनेको यह निर्णय होगा कि मेरे लिए मैं ही महान् हूँ, मैं ही उत्तरदायी हूं, मैं ही अपने भविष्यका निर्मापक हूँ ।

खुदके लिये खुदका महत्त्व—सुना होगा एक पुरुष परस्त्रीगामी था । स्त्रीने बहुत समझाया, न माना तो कुछ विशेष सेवा करके एक बार कहा कि तुम और कुछ नहीं कर सकते तो लो, बटरिया देकर कहा कि लो रोज इनकी पूजा कर लिया करो और फिर २४ घंटेको यह पाप त्याग दिया करो । कहा अच्छा कर लेंगे । वह रोज उन बटरियोंको पूजकर २४ घंटेको उस पापको छोड़ दे । पाप तो छूट गया । अब वहाँ क्या हाल हुआ कि उस देवतापर चढ़े चावलोंको चूहा खा जाया करे । सोचा अरे इससे तो बढ़कर यह चूहा है । सो उस चूहेकी ही वह पूजा करने लगा । एक दिन एक बिल्ली चूहेपर झपटी तो सोचा—अरे इस चूहेसे तो बड़ी बिल्ली है । सो बिल्लीकी पूजा करने लगा । बिल्लीपर कुत्ता झपटा तो समझा कि बिल्लीसे तो कुत्ता बड़ा है । सो उस कुत्तेकी पूजा वह करने लगा । एक दिन कुत्ता रसोईमें [illegible] स्त्रीने बेलन फेंककर मारा । उसने सोचा अरे इस कुत्तेसे तो मेरी स्त्री बड़ी [illegible]

करते और मान करें भी तो किस चीजका, जब सभी चीजें नष्ट हो जाने वाली हैं। मैं बड़ा बलवान हूं, विवेकी हूं, चतुर हूं, मानकी यह श्रद्धा आत्माको नष्ट करने वाली है। यह पर्याय बुद्धि है। पर्याय सदैव नाशवान है, उनमें अपनत्व मानकर उनके नाश होनेपर दुःखी होता हैं। समझ रहा है कि मैं बलवान हूं, कलको शरीरमें कमजोरी आ जाती है, दुःखी हो जाता है। आज धनी है, धन नष्ट होनेपर या उसमें कमी आ जानेपर महान् परेशान होता है इत्यादि। इस प्रकार पर्यायबुद्धि सदैव दुःख देने वाली है और यह पर्यायबुद्धि मानके उदयमें होती ही है और ऐसी बुद्धिसे ज्ञानका मरण हो जाता है। मार्दवके बिना आत्माके परिणाम निर्मल नहीं होते। जब आत्मस्वभावकी पहिचान हुई, विषयोंसे मन हटा, परपदार्थोंसे अरुचि हुई कि मार्दव धर्म प्रकट हुआ।

मद्दउ जिणवर भत्तिपयासइ मद्दउ कुमईपसरु णिण्णासई।
मद्दवेण बहु विणय पवट्टइ मद्दवेण जणवइरु उहट्टइ॥

मार्दवधर्मसे प्रभुभक्तिप्रसार—मार्दव धर्म जिनेश्वर देवकी भक्तिको प्रसारित करता है। अभिमानी पुरुष तो भगवानको भी नहीं पूज सकते। औरोंसे नम्र बात कहनेकी बात दूर रही, प्रभुके आगे भी अपना सिर नहीं नवां सकते। यों ही खड़े-खड़े चूंकि सभी भगवानकी पूजामें रहते हैं तो हाथ जोड़ लिया, लज्जा आती है क्योंकि मान कषाय है ना कि मैं ऊँचा हूं, अफ़सर हूं, अमुक हूं। मार्दव हो, मानका अभाव हो तो उससे प्रभुकी भक्ति विस्तृत होती है। जब तक मानकषाय रहता है तब तक बुद्धि बिगड़ी रहती है, मान कषायसे कुबुद्धिका प्रसार होता है, पर मार्दव धर्मसे मानका अभाव होता है तो कुबुद्धिका प्रसार रुक जाता है। मान कषायमें ही तो हठ बढ़ा लेते हैं और हठका परिणाम यह निकलता है कि कोई उससे विशिष्ट बली और हठी हुआ तो उसकी बुद्धि ठिकाने आ जाती है।

मार्दवकी कुमतिप्रसारनिर्नाशकता—यह मार्दव धर्म सब मान कषायोंका नाश करने वाला है और पांच इन्द्रियों और मनका निग्रह करने वाला है। इन्द्रियविषयोंके सेवते हुए अज्ञान भावमें मान आया करते हैं। रस-गौरव तो बहुत संभावनीय है। किसी वस्तुके स्वाद की वजहसे भी मान नहीं करना चाहिये। परके लक्ष्य होनेपर कोई न कोई जातिकी मानवृत्ति हो जाती है। देखो भैया, और तो जाने दो कभी त्याग करके भी तो पदार्थोंको नहीं खा रहे हैं, ऐसा सोचनेमें मान आ जाता है। काजू और मूंगफली दोनोंके स्वादमें खास फर्क नहीं, किन्तु मूंगफलीके मुकाबिलेमें काजू बहुत महंगी है, इसलिए काजूका स्वाद अच्छा लगने लग गया, इस आसक्तिको मान कर रहा है। परकी रुचि अपने आपमें मान कषाय बनाये बिना कैसे होगी ? जिसने निर्मानस्वभावी निजको देखा उसे स्वादमें क्या आसक्ति होगी ? वैषयिक बात सोचना ही मानसे हो पाता। इसी तरहकी प्रक्रिया पांचों इन्द्रियोंमें आ जाती है। मान-

सिक विपन्नता मान को [illegible] हो जाता है। [illegible] मानसिक भाव [illegible]। मानसे दुनियामें सब लोगोंका विगाड़ भी होता और अपना भी विगाड़ होता है। कोई सोचता हो कि मैं चतुर हूं, मेरा हठ रहना ही चाहिए तो यह [illegible] है, क्योंकि [illegible] कोई मजा चखाने वाला मिल ही जाता है।

मानकी प्रतिक्रियामें विडम्बना— एक घरमें पति-पत्नी थे। पत्नी हठीली थी। स्त्रियों के एक तो स्वभावसे हठ होता है पर वह बहुत हठीली थी। उसके एक दिन ऐसा मनमें आया कि हमारी वात तव रहेगी जव मैं अपने पतिकी मूंछ मुंड़वाके रहूं। पहिले समाजमें मूंछ मुंड़वाना बुरा माना जाता था। उसने पेट दर्द व सिर दर्दका बहाना कर लिया, गिर गई। पतिदेवने डाक्टर वुलाया, वैद्य वुलाया। किसी तरहसे ठीक न हुआ। पति कहता है कि देवी जी! किसी तरहसे ठीक होगा? स्त्री आँखें मीचती हुई कहती है कि लो हमको देवता लोग वता रहे हैं कि तुम्हारी वीमारी तव ठीक होगी जव कि तुमसे जो प्यार करता हो वह मूंछ मुंड़ाकर सुबह होते ही दर्शन दे तो ठीक हो सकती हो, नहीं तो तुम्हारे प्राण चले जायेंगे। झट गया सैलूनकी दूकानमें, मूँछ सफाचट्ट करवाकर आ गया। लो देवी जी देख लो। इतनेमें तवियत ठीक हो गई। हो गई चंगी। सुवह चक्की पीसे तो गाना गाये। अपनी टेक चलाई, अरु पतिकी मूँछ मुंड़ाई। यह भजन वन गया। चार-छः दिन यही सुनकर हैरान हो गया। उसने सोचा कि इसे भी मजा चखाना चाहिये। ससुर जी को झट चिट्ठी लिखी कि तुम्हारी लड़की वहुत वीमार है। देवतावोंने वताया है कि सवेरा होते ही गुजर जायगी, और वच तव सकती है जव कि इसके माँ-वाप, भाई, वहिन, वुवा आदि जो इससे प्यार करते हों वे मूंछ मुंड़ाकर या जिसके जो वाल हों मुंड़ाकर सवेरा होते ही दर्शन दे जायें तो ठीक हो सकती है। ममता ठहरी। घर भरने सिर मूँछ मुंड़ाया और सवेरा होते ही विटियाके घर पहुंचे। उस समय वह स्त्री वही गाना गा रही थी। अपनी टेक चलाई अरु पतिकी मूँछ मुंड़ाई। पति कहता है कि पीछे देख लुगाई, मुंडनकी पल्टन आई। उसने देखा तो कहा वड़ा गजव हो गया। तो यह मान कषाय जव हदसे ज्यादा हो जाता है तो फिर स्नेह छूट जाता है। यह मार्दव धर्म कुवुद्धिके प्रसारको दूर करता है।

मार्दवसे विनय व विद्यालाभ—मार्दव धर्मसे वड़ी विनयहीन शिष्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। कितना ही धन खर्च करके अध्यापक रखते हो, अध्यापकोंकी ड्यूटी दिलाते हो, कितना भी व्यय करें, यदि हृदयमें विनय भाव नहीं है तो विद्या नहीं आ सकती। कदाचित् लौकिक विद्या आ भी जाय, मगर धार्मिक विद्या, आध्यात्मिक विद्या विना विनयके नहीं आ सकती। विना विनयके धार्मिक विद्याका ज्ञान कैसे आ सकता है? वनारसमें एक पंडित थे, उनके पास १०-१२ लड़के पढ़ते थे। उनमें से एक लड़केको वहुत अधिक पढ़ाते थे, अधिक

समझाते थे। गुरु जी से स्त्री बोली कि तुम इस एक लड़केको अधिक पढ़ाते हो और बाकी सब लड़कोंकी उपेक्षा कर देते हो। पंडित जी बोले कि हम तुम्हें सब समझा देंगे कि क्यों मैं अधिक समझाता हूं। हाँ बतलाओ पंडित जी! कहा अच्छा। पंडित जी ने एक छोटासा पका आम अपनी भुजामें बांध लिया और ऊपरसे कपड़ेसे लपेट दिया। सब लड़कोंको बुलाया। गुरु जी बड़ी तकलीफमें हैं, उनके फोड़ा हो गया है, वे बड़े बेचैन हैं। बच्चोंने पूछा, गुरु जी कैसे मिटेगा? डाक्टर बुला दें? वैद्य बुला दें? गुरुजी ने कहा—बेटा किसी दवासे न मिटेगा। इसकी सरल औषधि यह है कि कोई अपने मुखसे इसे चूस ले तो अभी ठीक हो जायगा। सब लड़के बगली झांकने लगे। फोड़ा, इसकी पीप, मुखसे कैसे चूसी जा सकती है? किन्तु उस एक बालकने चूस लिया। इस घटनाको देखकर स्त्री समझ गई, वाह, यह बालक तो अधिक विनयशील है और इसमें विद्या पानेकी योग्यता है। इस कारण इसको अधिक पढ़ाते हैं। विनयके बिना प्रगति नहीं हो सकती। इस मार्दव धर्मसे मनुष्योंका वैर भी समाप्त हो जाता है। विनयसे बोल दो तो सारा वैर भी खतम हो जाता है। इस छोटेसे जीवनमें किसीसे बैर रखनेसे क्या प्रयोजन है? न यह रहेगा और न ये रहेंगे, किन्तु जो कषाय भाव बना लेता है उसको फल जरूर भोगना होगा। इस मार्दव धर्मसे समस्त वैर समाप्त हो जाता है।

मद्दवेण परिणामविशुद्धी, मद्दवेण विहु लोयहँ सिद्धी।
मद्दवेण दोविहु तउ सोहइ, तिजगु विमोहइ मद्दवेण णरु॥

मार्दवसे परिणामविशुद्धि व मान्यता—मार्दव धर्मके कारण परिणामोंमें निर्मलता होती है, मानी घमंडी पुरुषके परिणाम कभी निर्मल हो सकते हैं क्या? नहीं नहीं। वह तो तनी हुई छातीसे सबको तुच्छ देखा करता है। कितना अंधेर है? यह पड़ा तो है महान् संकट में, कर्मोंका जाल है, शरीरका फंसाव है, विभावोंकी परेशानी है और भविष्यका कोई ठिकाना नहीं, कितने तो संकट इस जीवपर छाये हैं, पर भ्रमसे पर्यायोंमें अहंकार रखकर यह अपने ही पर्यायोंको श्रेष्ठ मानता है और दूसरोंको तुच्छ समझता है। चाहे कैसी ही चपटी नाक हो, घुसी हो, छोटी आंख हो, कैसी शकल-सूरत हो, पर जब दर्पण हाथमें लेता है, चेहरेको देखता है तो एक बार घमंड तो आ ही जाता है। इस पर्यायपर इतना अभिमान है, जिसमें कोई सार नहीं है, मिट जाने वाली चीजें हैं। जब तक मान रहता है तब तक परिणामोंमें निर्मलता नहीं रह सकती है। एक गुरु शिष्य थे। चलते-चलते शाम हो गई। तो पासमें राजाका बगीचा था वहाँ जाकर ठहर गये। दो कमरे थे। उनमें बढ़िया तख्त पड़े हुये थे। एक कमरे में गुरु जी बैठे और दूसरेमें शिष्य। गुरु जी ने कहा—बेटा! तुम कुछ नहीं बनना। हाँ गुरुजी हम कुछ नहीं बनेंगे। शामको राजाके सिपाहियोंने उन कमरोंमें देखा कि एक-एक आदमी बैठे हैं। राजासे कहा—महाराज दो आदमी बैठे हैं। अच्छा, जावो पूछ आवो कि कौन हैं?

सिपाही शिष्यके पास गया, पूछता है कि तुम कौन हो ? शिष्य बोला देखते नहीं मैं साधु हूं। कहा महाराज वह तो यों कहता है कि देखते नहीं मैं साधु हूं। कान पकड़कर निकाल दो। सिपाहीने ठोका पीटा और कान पकड़कर निकाल दिया। दूसरे कमरेमें गया। पूछा तुम कौन हो ? गुरु जी मौन थे। कहा—महाराज वह तो बोलते नहीं, आँख मीचे बैठे हुये हैं। राजा बोला, उनसे कुछ न कहो, वे कोई साधु महाराज होंगे। राजा तो घूमकर चला गया। अब शिष्य गुरुसे क्या कहता है कि महाराज तुमने ऐसा ठहराया कि मेरी तो मरम्मत हो गई और कान पकड़कर बाहर निकाल दिया गया। गुरुजी कहते हैं तुम कुछ बने तो न थे। अरे महाराज मैं कुछ नहीं बना था। सिपाहीने पूछा था कि तुम कौन हो ? तो मैंने कहा कि अरे देखते नहीं, मैं साधु हूं। गुरुने कहा, बनना यही तो हुआ।

मार्दवसे लोकद्वयसिद्धि—जब मान कषाय होता है तो परिणामोंमें निर्मलता कहांसे रहेगी ? इस प्रकारकी कल्पनायें मान कषायमें होती हैं। मार्दव धर्मके द्वारा तीनों लोकोंमें सिद्धि होती है। इस लोकमें भी साता रहती है और परलोकमें भी सुगति प्राप्त होती है। हस्तिनापुरके मन्दिरपर बनवाने वालोंका नाम तक भी नहीं है। कितने निर्मल परिणाम थे उनके ? भैया ! मानकषायका परिणाम अपने मनमें रहा तो कुछ आत्मलाभ नहीं हो सकता। परपदार्थ भी दिया तो वह तो अपना था ही नहीं, फिर किस बातका घमंड ? सम्पदाके रहते हुए, भोगते हुए, दान करते हुये किसी बातका घमंड नहीं होना चाहिये। मार्दव धर्मसे दोनों लोकोंका सुधार होता है। कौवे भी क्वार बदी १ से क्वार बदी १५ तक घमंड करते हैं परन्तु उसके बाद उनके घमंड कुछ नहीं रहता। इस प्रकार घमंडी चाहे कुछ दिन इतरा ले परन्तु [illegible] आना भी पड़ेगा। इसलिये हमें तो घमंड बिलकुल नहीं करना चाहिये। मार्दव [illegible] तीनों जगतको मोहित कर लेता है। मार्दव धर्मके द्वारा दोनों प्रकारके तप [illegible] हैं। आभ्यंतर तप और बहिरङ्ग तप। १२ प्रकारके तप भी तपें, बड़ी ऊँची [illegible] बतावें, ऐंठ जतावें कि मैं कितना तपस्वी हूं, ऐसा तप क्या [illegible] अच्छा है ? ऐसी मुद्रा दिखावे तो उसमें तपकी क्या शोभा रही ? ज्ञानकी [illegible] फल भी मिट गया। ज्ञान भी एक तप है। स्वाध्यायको तो तप [illegible] मार्दव धर्म हो तो उस ज्ञानकी भी शोभा बढ़ती है।

[illegible] पढ़ा-लिखा पुरुष बी. ए. पास होकर आया। रिजल्ट तुरंत [illegible] समुद्रके किनारे गया। नाविकसे बोला, मांझी तू मुझे समुद्रमें [illegible] अच्छा, चलो समुद्रकी सैर करावो। जो ठलुवा होते [illegible] तुम कुछ पढ़ा लिखा है ? नहीं मालिक। तू ए. बी.

ति. डी. भी नहीं जानता। नहीं बाबू जी। तेरे बाप भी नहीं पढ़े हैं? नहीं बाबू जी। बेव-कूफ, नालायक, ऐसे लोगोंने ही भारतको बरबाद कर दिया। जब तीन-चार फर्लाङ्ग दूर नाव पहुंची, समुद्रमें तूफान आया, नाव डगमगाने लगी। अब बाबू साहब हाथ जोड़कर नाविकसे बोले—भैया जल्दी नाव ले चलो। तो मांझी कहता है कि नाव तो डूब जायगी। हम तैरकर निकल जायेंगे। फिर हाथ जोड़ते हैं बाबू जी। मांझीने कहा, तुमने तैरना सीखा है? तैरना तो नहीं सीखा। उल्लू, नालायक, ऐसे ही लोगोंने तो भारतको बरबाद कर दिया। कल्पना करो कि अगर सब मैट्रिक पास हो जायें तो फिर गुजारा कैसे होगा? कलायें तो सभी तरह की होती हैं। कोई अपनी कलापर घमंड बगराये तो देखो भैया सब विद्याओंका निधान तो केवलज्ञान हुआ, इसके बाद सब विद्यायें छोटी होती हैं, उन विद्याओंमें क्या मान करें? भैया! ज्ञानकी, तपकी, उपकारकी, सबकी शोभा मार्दव धर्मसे होती है। यह धर्म सब अमृत है। अपने जीवनमें उतारो तो आनन्द भी पा लो। मार्दव धर्मके द्वारा यह तीनों लोकोंको मोहित कर सकता है। जो विनयशील होगा वह अपरिचित भी हो तो भी आप मोहित हो जायेंगे, उसकी सेवामें लग जायेंगे। यह घरमें जो बाप बेटोंमें लड़ाई होती है या सास बहूकी लड़ाई होती है उसमें बाप सोचता है कि यह मेरा वही बेटा है जिसको डाटते थे, सो वह हुकूमत चलाता है, पर वह नहीं जानता कि बेटा ओवरसियर हो गया। अब इसकी बात कौन सहेगा? तो यह मार्दव धर्म तीनों लोकोंको मोहित कर देता है और फिर यहां घमंड करें किस बात पर? सभी चीजें विनाशीक हैं।

अकिञ्चनताका एक कथाचित्रण—एक घटना है इसी भारतकी, घटना पुरानी है। जब राजा भोज थे, बड़ा विद्वानोंका आदर करने वाला यह राजा हुआ है। एक दिन रात्रिको पलंगपर लेटे वह कविता बना रहे थे और उसी दिन एक कविके मनमें आया कि कुछ चोरी कर लायें तो गुजारा चलेगा। तो चोरी और किसके यहां करूँ, राजाके ही यहां करूँ। राजा के ही यहां चोरी करूँ तो कुछ कष्ट भी उन्हें नहीं होगा अगर दो चार हजार ले आवेंगे तो। तो वह वहां गया और डरके मारे पलंगके नीचे पड़ गया। राजा कविता बनाता है। "चेतो-हरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः, सद्बान्धवाः प्रणतिगर्भगिरश्च भृत्याः। गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरला-स्तुरङ्गाः" क्या कह रहा कि मेरी स्त्री एकसे एक मनोरम हैं, चित्तको हरने वाली हैं, मेरे मित्र मेरे अनुकूल हैं। मेरे भाई नम्रतासे भरे हुये हैं। मेरे नौकर मेरी आज्ञा मानने वाले हैं। अश्वशालामें घोड़े हींसते हैं, हाथियोंकी शालामें हाथी गरज रहे हैं। राजा अपने वैभवका वर्णन कर रहा है। तीन चरण बन गए हैं, चौथा नहीं बन पाया। अब नीचे वालेसे न रहा गया। जिसमें जो कला होती है उससे रहा नहीं जाता है। सो वह बोला "संमीलने नयनयो-र्नहि किंचिदस्ति"। इसका अर्थ है कि सब कुछ है पर नेत्रोंके मिच जानेपर यह कुछ भी नहीं

रहता है । चौथा चरण भी बन गया । एक तो यह उस राजाको खुशी हुई और दूसरे सम्य[illegible] ज्ञान प्राप्त हुआ यह खुशी । सो उस कविको गलेसे लगा लिया, कवि बोला मैं तो चोर हूं। राजाने कहा तुम चोर नहीं, तुम मित्र हो । तो किस बातपर अभिमान हो, ये सब ठाठ विना[illegible] शीक हैं ।

मद्दउ जिणसासण जाणिज्जई, अप्पापरसरूवभासिज्जइ ।
मद्दउ दोस असेम णिवारउ मद्दउ जणणसमुद्दह तारउ ।।

मार्दवसे सम्यग्ज्ञानका लाभ—इस मार्दवधर्मके होनेसे समस्त जिन-शासन जान लि[illegible] जाता है । शासनका मर्म क्या है ? यह विशद समझमें आ जाता है । मानी पुरुष तो अप[illegible] घमंडमें ही रहता है । ज्ञान, विना विनयके नहीं आ सकता और विनय मार्दवधर्मका प्रधा[illegible] अंग है । पहलवानी करके किसी शक्तिसे कोई ज्ञान थोड़े ही बढ़ता है, वह तो विनयसे [illegible] बढ़ता है । यह आत्मा तो मार्दवधर्मसे ही ज्ञानको जानता है । जैसे कहावत है बन्दर समुद्र लांघकर लंका चले गये, परन्तु समुद्रमें जो रत्न थे उनका उनको ज्ञान कहां था ? इसी त[illegible] मार्दवधर्मके विना कुछ नहीं जान सकते कि इस जैन शासनमें क्या क्या रत्न भरे पड़े हैं [illegible], मार्दवधर्मके द्वारा ही आत्मा व परका सच्चा स्वरूप जाना जा सकता है । मार्दव[illegible] समस्त दोषोंका निवारण कर देता है । इस मार्दवधर्म द्वारा संसार-समुद्रसे सुगमतया प[illegible] [illegible] निर्दोष आनन्दके भोक्ता हो सकते हैं । मार्दवधर्ममें आत्मा और परका स्वरूप जान[illegible] [illegible] । और न मार्दवधर्म हो, घमंड हो तो स्वरूपकी स्मृतिकी बात तो दूर जाने [illegible] [illegible] किसी प्रकारसे मान रखनेमें ही लगता है ।

[illegible] मानका नाटक—एक बार ऐसी ही बड़ी सभा बैठी हुई थी, राजा [illegible] । [illegible] कि कोई मनुष्य ऐसी कविता बनावे जो आज तक किसीने न बना[illegible] [illegible] अपनी जेबसे एक कोरा कागज निकाला, जिसमें कुछ न लिखा [illegible] मान तो बांच रहे हैं । कहा महाराज यह कविता है इससे बढ़[illegible] [illegible] न देखी । मगर इस कवितामें यह गुण है कि जो एक बाप[illegible] [illegible] आंखोंसे न दिखेगी । कहते हैं ना, कि जो असलका हो[illegible] [illegible] दिखेगा । राजाने देखा तो उसमें कुछ न लिखा था, मग[illegible] [illegible] नहीं दिखा तो नकली हुए जाते । इसलिए कहते हैं वाह कित[illegible] [illegible] तो आज तक दिखनेमें नहीं आयी । पासमें और भी पंडित बै[illegible] [illegible] न लिखा था, पर मान तो रखनी थी ना । नकली न कहला[illegible] [illegible] कहा कि वाह कितनी सुन्दर कविता है ? ऐसी कविता [illegible] [illegible] १०-५ लोग और बैठे थे, उन्होंने भी यही कहा । सो भ[illegible]

को धनमदमें चकचूर है [illegible] मद होता है ? [illegible] नाम दिखाने की रुची है ?

[illegible] —[illegible] मरते समय [illegible] कुछ [illegible] ।

[illegible] —[illegible] धन अपने पुत्रोंमें बांट दिया । [illegible] । [illegible] । इसलिए [illegible] कि [illegible] है, [illegible] हूं । [illegible] कि [illegible] है ? [illegible] कि [illegible] है कि मेरे पास [illegible] है, [illegible] अर्थात् [illegible] । [illegible] है ? [illegible] परन्तु [illegible] भी भाव बदल गये । उन्होंने सोचा कि यदि यह धन [illegible] न दिया गया तो हमारे ही हिस्से में आ जायेगा । इस तरह मरते समय पुत्र हो चाहे कोई हो, सब एकके भाव बदल जाते हैं । [illegible] रहने वाला है, मरता तो है ही, जैसे चाहो मरो । मरते समय प्रियसे प्रिय आत्मीयके भाव भी बदल जाते हैं । वे सोचने लगते हैं कि मरने वाला तो मर ही जायेगा, फिर क्यों धन बरबाद किया जाये ?

मार्दव धर्मके बिना अनेक आपदाओंका संपात—मार्दव धर्मके बिना संसारके सारे जीव दुःखी होते हैं और मान कषायमें लगे रहते हैं तथा परिणामोंमें निर्मलता नहीं आती । मानकषाय अज्ञानियोंमें ही सबसे ज्यादा रहता है, ज्ञानियोंमें नहीं रहता । उनके ही मार्दवधर्म प्रकट हो सकता है जिनके मोह नहीं है । मार्दवधर्मसे यह लोक और परलोक दोनों लोक

सिद्ध होते हैं। रावणका यह लोक और परलोक भी मानकषायसे ही बिगड़ा। रावणको हुए १० लाख वर्षके करीब हो गए और आज तक भी सबको रावणका नाम सुनते ही घृणा सी होती है तो यह मानकषायका ही तो प्रभाव है। वह स्त्रीके लोभसे नहीं मरा, वह तो मरा मानसे। पहले तो रावणके परिणाम यही थे कि मैं सीताको अपने यहां रखूं, लेकिन जब वहुत कुछ समझाने बुझानेपर भी सीता उससे सहमत न हुई तो रावणने विचार किया कि सीता तो वापिस करनी ही है। रामने भी कहा कि भाई तुम सीता दे दो, चाहे तुम मुझसे कुछ भी संपदा ले लो। सीताके लौटानेके परिणाम होते हुए भी रावणको उस समय मानका उदय आ गया। उसने मानमें कहा—सीताको दूंगा तो जरूर, परन्तु सीताको ऐसे नहीं दूंगा, रामको जीत करके ही दूंगा। उसमें सीताके लौटानेकी उदारता तो आई, परन्तु ताकतसे देनेका मान भी रहा। इस मानकषायके कारण ही वह मरा। इसके कारण वह नरक भी गया और उसने अपना यह लोक भी विगाड़ा।

मार्दव व मानमें प्रवृत्तियोंका एक चित्रण—आजकल कई लोग मन्दिर वनवाते हैं परन्तु इसलिये कि उनका नाम हो जाए। वह मन्दिर उनका कहलाए। इसके लिए किसी भी पंचका एक भी रुपया नहीं लेते तो जो कुछ भी लगे उसमें मेरा ही लगे, नहीं तो यह पंचायती कहलायेगा और मेरा नाम नहीं रहेगा। ये सव मानकी वातें हैं। भाई इन वातोंमें क्या रखा है? मिल करके काम करो। अव भी कई लोग ऐसे हैं जो वड़ा मन्दिर वनाकर कह देते हैं कि यह तो पंचायती मन्दिर है। देखो—हस्तिनागपुर क्षेत्रका मन्दिर है। जव यह पूरा वन चुका, कलश चढ़ना वाकी रहा तो उसके वनाने वालोंने पंचायतसे कहा कि भाई मेरे पास धन समाप्त हो गया है, चन्दा करना है। सव भाइयोंने चन्दा दिया और कलश चढ़ाया गया। कितनी निर्मलताकी वात है? कहाँ तो ये परिणाम कि सव कुछ वनवाकर भी उसमें अपनापन नहीं रखते थे और कहाँ यह परिणाम कि जरा कुछ वनवाते हैं और उससे वड़ा उसपर नामका पत्थर लगवा देते हैं। मानसे अनेक दोष अंकुरित होते हैं। यह मार्दव धर्म समस्त दोषोंको दूर करता है। यह मार्दव धर्म जन्ममरण रूप संसारसे उतार देता है, किन्तु मान संसारमें परिभ्रमण कराता है।

सम्मद्दंसणअंगु मद्दउ परिणाम जु मुणहु।
इमि परियाण विचित्त मद्दउ धम्म अमल थुणहु।

सम्यग्दर्शनके अङ्गभूत मानवधर्मके अनुसरणका अनुरोध—यह मार्दव परिणाम सम्यग्दर्शनका अंग है। मान न करो, एक सम्यक्दर्शनको पहिचानो, जगतके पदार्थोंका जो सत्य स्वरूप है उसकी श्रद्धा करो तो जगतमें कुछ विगाड़ नहीं हो सकता। मार्दवधर्म और विनयभावके द्वारा मनके सारे दोष दूर हो जाते हैं ऐसा जानकर हे भव्य जीवों! इस अद्भुत

और निराले मार्दवधर्मकी स्तुति करो। मार्दवधर्म जन्म-मरणसे इस जीवको पार कर देता है। एक इस निर्मल मार्दवधर्मको धारण करो, अपनी आत्माके शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें स्थिर रहो, इसको उत्तम मार्दव धर्म कहते हैं।

परमार्थविनयमें परमार्थ आराम—आज मनुष्यको विलक्षण आराममें रखने वाले मार्दव धर्मका वर्णन है। जो मनुष्य अभिमान करता है वह निरन्तर दुःखी रहता है। जिसके अभिमान नहीं, जिसकी अभिमान रहित परमब्रह्म स्वरूपपर निगाह है वह अतुल आनन्दामृत का पान करता है। मानी पुरुष अपने आपको भले ही समझता है कि मैं बहुत ऊँचा हूं। परन्तु और दुनियाकी निगाहमें तो देखो वे क्या सोचते हैं? वे मानी पुरुषको नीचा निरखते हैं। भले ही कोई पर्वतकी चोटी पर चढ़ा हुआ पुरुष नीचे चलने वाले लोगोंको छोटा समझता है परन्तु नीचे चलने वाले उन लाखों लोगोंसे तो पूछो उनकी निगाहमें वह पर्वतके ऊपर चढ़ा हुआ व्यक्ति छोटा दिखाई देता है। मानी पुरुषकी ऐसी कल्पना है कि मैं बड़ा, हूं, जो अपनेको बड़ा मानकर चलता है वह तो खुद विपदामें है और घटनायें भी ऐसी बन जाती हैं कि जिससे उसे बुरी तरहसे दुःखी होना पड़ता है। अभिमान करनेसे आज तक किसीने कोई लाभ नहीं पाया। सच पूछो तो यह अहंकार इस आत्माके पतनका कारण है। ये जो उपनिषद, अध्यात्मिक ग्रन्थ बने हैं उनकी भूमिका ही यह है कि अहंकार न रहना चाहिए। अहंकार इस जीवको कब होता है जब कि अध्रुव पदार्थ, विनाशीक पदार्थ इसको प्राप्त होते हैं। असली चीजपर अभिमान (स्वाभिमान) करना तो अच्छा है, पर जो गंदी बातें हैं, दूसरोंपर कन्ट्रोल करनेकी मनमें बसी हुई बातें हैं, खोटी बातें सोचकर मान करे कोई तो यह गंदा भाव है। जब तक ये अहंकारके भाव, प्रलोभनके भाव दूर नहीं हो जाते हैं तब तक अपने आपमें बसे हुए परमातम प्रभुका दर्शन न मिलेगा।

प्रलोभन समाप्त होनेपर ही अध्यात्मरस लाभकी पात्रता—कठोपनिषद ग्रन्थकी भूमिका में बताया है कि नचिकेताका पिता वाजश्रवस सभीको सब कुछ खूब धन सम्पदा आदिक बाँट रहा था, तो उसके बेटेने पूछा—पिताजी आप सबको सब कुछ दे रहे, मुझे किसको दोगे? तो पिता झुंझलाकर बोला—तुझे मृत्युको (यमको) देंगे। अब क्या था, वह बालक यमके पास गया। उस समय यम बाहर गये थे, तीन दिन बाद आये तो यम उस बालकपर यह जानकर कि तीन दिनसे मेरी प्रतीक्षामें भूखा बैठा है, सो बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—बेटे तुमपर हम बहुत प्रसन्न हैं, तुम्हें जो मांगना हो माँग लो—३ वर माँग लो। दो तो उसने मांग लिये। जब तीसरे वरदानको कहा तो उस बेटेने क्या वरदान माँगा कि आप मुझे यह दिखा दें कि मृत्युके बाद मेरे आत्माका कुछ अस्तित्व रहता है या नहीं?····अच्छा तो लो समझ लो यमने तब ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, सब रचना उसे समझा दिया। तो वह बालक फिर बोला

कि यह तो मैंने सब कुछ समझ लिया, पर अब यह तो बतलाओ कि इस सारी दुनियामें कोई मृत्युसे बचा भी है क्या ? जिसकी कभी मृत्यु ही न हो ऐसा भी कोई स्थान है क्या ? यमने बताया कि हाँ ऐसा भी कोई स्थान है। देखिये यह आत्मा मुक्त हो जानेपर फिर कभी मरण को प्राप्त नहीं होता, बाकी तो दुनियामें मृत्यु सब जगह चल रही है। वह मोक्ष ही अमृत है। ....तो बस महाराज, मुझे तो उस अमरत्वकी विधि बताओ। यमने कहा—देखो राज्य लो, साम्राज्य लो, और बड़े-बड़े आरामके साधन लो, अनेक स्त्री लो—बहुत प्रलोभन देनेपर भी वह बालक उस यमके कहनेमें न आया, आखिर यम द्वारा उसे आत्माका स्वरूप समझाया गया। अब आप समझ लीजिए कि आत्माका स्वरूप समझनेका वही पात्र होता है जिसको कि दुनिया में कोई प्रलोभन नहीं।

ज्ञानज्योतिका प्रलोभनादि प्रलोपनकी सामर्थ्य—प्रलोभन न सतायें इसका उपाय पहिला यह है कि अपने इस देहमें, इस पर्यायमें इस क्षणभंगुर कायामें मोहको त्यागें। त्यागने वाले त्यागते हैं। जिनको आत्मासे अनुराग है, आत्माका आनन्द ही जिनके लिए सब कुछ है उनको त्यागनेमें विलम्ब नहीं लगता। जैसे खूब अच्छा ताजा भोजन मिल रहा हो तो बासे भोजन त्यागनेमें किसीको विलम्ब तो नहीं लगता। यों ही समझिये कि जिसे स्वाधीन अनुपम आत्मीय आनन्द मिला हो उसको इन बाहरी विषयोंके त्यागनेमें कौनसी अड़चन है ? तो थोड़ी देरको अपना कुछ ऐसा उपयोग बनायें कि इन किन्हीं भी बाहरी चीजोंमें प्रीति न रखें अपने मनको निष्पाप बना लें। तो आपमें यह बात बहुत जल्दी बन जायगी। लोग कहा करते हैं कि यह तो बहुत अच्छा समझाते हैं, पर भाई समझाने वालेकी क्या तारीफ ? समझने वालेकी अधिक तारीफ है। जो हित चाहने वाला है वह अपने हितकी बातको सुनकर भी समझ जाता है। तो किसी बातके समझनेमें समझाने वालेकी तारीफ खास मत समझिये- किन्तु समझने वालेकी तारीफ समझिये—यदि वह समझने वाला समझने लायक अपना हृदय बनायगा तो उसकी समझमें आयगा, न बनायगा तो न आयगा। वही बात एक बच्चा बोले तो वह भट समझ जायगा और जिसका हृदय शुद्ध नहीं है उसे चाहे ऋषिराज भी कितना ही समझावें, पर उसकी समझमें नहीं आता। तो समझने वालेकी तारीफ है। अपनेको इतना नम्र बनायें कि आत्माकी सारी बातें समझनेमें आयें। यह आत्मा स्वभावसे नम्र है, अपनी ओर झुके स्वभाव वाला है, अपनी ओर ढल रहा है। जैसे नदीमें निम्नगा होनेकी प्रकृति है, वह नीचे की ओर ही बहनेकी प्रकृति रखती है। ऐसे ही अपना यह उपयोग भी अपनी ओर ही झुकने [illegible] रखता है। हाँ जैसे कोई यंत्र नदीके जलमें डाल दिया जाय तो नदीके जलका [illegible] है उससे यत्र तत्र जल बहने लगता है, ठीक ऐसे ही हम आपमें ज्ञान और

राग्यकी प्रकृति तो आत्मामें रहनेकी ही है, पर रागद्वेष, क्रोध, मान, माया लोभादिक यंत्र समें लगा दिए जायें तो उसका उपयोग इधर उधर चलने लगता है। यह बहुत सुगम वात ; कि अपने आपमें विनय आ जाय और अपने आपमें अपनेको विलीन कर दे, यह सुगम वात , लेकिन जब तक मिथ्यात्व न टले, मोह न टले, इस देहमें 'यह ही मैं हूं' इस प्रकारकी वपरीत बुद्धि न मिटे तब तक यह वात कठिन है। तो सबसे अधिक वाधक क्या रहा इस कल्याणमार्गके लिए ? यही अभिमान।

पर व परभावकी बुद्धिमें गर्व करनेकी व्यर्थता—देखो जो कुछ यहाँ कर्म व कर्मफल ो रहा है यह प्रकृतिके गुणोंके द्वारा किया जा रहा है। आप लोग जानते हैं कि जब कर्म कृतिका अनुभाग बनता है तो उसके विपाकमें ये सब ठाठ बनते हैं। तो हैं ये प्रकृतिके धर्म, रकृत परिणाम, लेकिन इसमें जीव मानता है कि मैं करने वाला हूं। तो देखो जो अपनेको कर्ता मानता है वह कितना अपनेको हैरान किए डाल रहा है ? जैसे कोई बैलगाड़ी जा रही हो, जिसमें ५०-६० मन वोझ लदा हुआ है तो उसके पीछे कुछ वच्चे लग जाते हैं, उस गाड़ी को ढकेलते हैं और अहंकार करते हैं कि मैं इसे चला रहा हूं। पर जव कभी वह गाड़ी खड़ी हो जाती तब फिर वे वच्चे यों ही खड़े रह जाते हैं, उस गाड़ीको ढकेल नहीं पाते। खड़े-खड़े दुःखी होते रहते हैं। यों ही ये संसारी प्राणी कुछ पुण्यका उदय पानेपर मानते यह हैं कि मैं ही तो परिवारका पालन-पोषण करता हूं। मैं ही कमाता हूं···पर जब कभी पापोदय आता तो फिर कुछ भी कर्तव्य नहीं चलता, यों ही दुःखी रहा करते हैं। तो ऐसा अभिमान करना ठीक नहीं कि मैं परिवारका पालन-पोषण करता हूं, मैं ही धन कमाता हूं····अरे जो कर्तापन के अहंकारमें है उसे मृदु स्वभाव वाले इस परमब्रह्म स्वरूपका परिचय नहीं मिलता। नम्रता एक ऐसा गुण है कि जिसके प्रतापसे इस लोकमें भी सुख मिलेगा और परलोकमें भी सुख मिलेगा। ज्ञानार्णव ग्रन्थमें लिखा है—"क्व मानो नाम संसारे जन्तुव्रजविडम्बके। यत्र प्राणी नृपो भूत्वा विष्टामध्ये कृमिर्भवेत्। अरे इस संसारमें मान करनेकी क्या गुंजाइश ? जहाँ राजा होकर भी कीड़ा वन जाय। अरे और भवकी तो वात जाने दो—एक इसी भवमें ऊँचे पदसे गिरकर यदि नीचा हो जाय तो दुनियाकी निगाहमें वह तुच्छ कहलाता है। जिस समय कोई मान कर रहा है उस समय सारी दुनिया उसे तुच्छताकी निगाहसे देखती है। इस मानसे इस जीवनमें भी नुक्सान है और परभवमें भी नुक्सान है। इस जीवके लिए यहाँका कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो कि हितरूप हो, सब अँधेरा है, माया जाल है, धोखा है, क्यों पदार्थोंके पीछे अपने आपको वरवाद किया जा रहा है ?

खुदमें खुदकी महत्ता प्राप्त करनेका संदेश—भैया ! इन समस्त परपदार्थोंसे अपनी कुछ महत्ता न समझो। ज्ञानी पुरुष तो किसी दूसरेमें अपनेको महान नहीं वनाना चाहते, वे

ो खुदमें खुदको महान बनाना चाहते हैं। परपदार्थोंमें अपनी महत्ता बनाना यह तो अभि-
मान है और अपने आपमें अपनी महत्ता बनाना यह वास्तविक महानता है। दुनियामें सब
जगह ढूंढ़ते जाइये—आपको कौन बड़ा मिलेगा ? बस खुद ही खुदमें महान मिलेगा। अरे
भाई आपको जैसा करना हो कर लो, मगर तात्त्विक बात समझ लीजिए। खुद खुदका महान
है। खुद खुदका शरण है, दूसरा कोई शरण नहीं। अपने आपको देखो—अपने आपमें गुण-
कारी बनो। और यह बात तब बन सकती है जब हम खुद नम्र बन जायें। अपने लिए नम्र
बन जायें। नमनेके मायने झुकना, नम गए मायने झुक गए। यदि यह जीव अपने आपके
लिए नम्र हो जावे और दूसरोंके लिए भी नम्र हो जावे तो यह अवश्य ही अपना अनुपम
आनन्द प्राप्त करेगा। देखो—पुराणोंमें भी बताया है कि भाई किसीके सामने तुम अभिमान
भरी बात मत करो। नम्रताका व्यवहार करो, अपने आपके प्रभुको प्रसन्न करो। इस मान
कषायको रखते हुए अपने आपमें बसा हुआ परमात्मतत्त्व निर्मल नहीं हो सकता। एक कविकी
कल्पनामें एक बात बताई गई है कि जब मनुष्य अहंकारमें चलता है तो उसके चलनेसे जमीन
[illegible] हो जाता है, तो कविकी कल्पनामें मानो वह पृथ्वी उस अहंकारी पुरुषसे
[illegible] अभिमानी [illegible], तू मेरे [illegible] होगा, तू मेरे इस गड्ढेको भरने वाला
[illegible] मिल जायगा, तू अहंकार क्यों चल रहा है ?

[illegible] होनेका संदेश—एक मूल [illegible]
[illegible] गुण अपने गरल हैं, और सारे [illegible]
[illegible] आत्मा अपनी [illegible]
[illegible]

करना है। सत्संगसे प्रकाशित हृदयमें मोहान्धकार नहीं रह पाता। जो जो पुरुष ज्ञानी जनोंका अभिवादन करते हैं, ज्ञानियोंका संग चाहते हैं, ज्ञानियोंकी प्रशंसा करते हैं उनका कभी पतन नहीं होता।

मार्दवधर्मकी उपासनासे अपनेको निराकुल रखनेका संदेश—देखो इस मनुष्यमें कितना बल है, कितनी बुद्धि है? एक बड़े हृष्टपुष्ट भैंसेको मनुष्यका एक छोटासा ८ वर्षका बच्चा गाड़ीमें ६०–७० मन बोझ लादकर जहाँ चाहे ले जाता है, मनचाहा पीटता है, मन चाहा नचाये-नचाये फिरता है, उतनी बड़ी ताकत वाला भैंसा भी मनुष्यके एक छोटेसे बालक के भी वशमें हो जाता है। तो ऐसे ही जो अहंकारी पुरुष होता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, उसका मनोबल घट जाता है। एक बात यह भी है कि आप दूसरेके प्रति नम्रताका व्यवहार करेंगे तो दूसरे लोग भी आपके आज्ञाकारी बन सकेंगे, और यदि आप ऐसा करेंगे कि मान न मान, मैं तेरा महिमान, तो भला बताओ आपसे इस परिणाममें आपको निरन्तर कितनी शल्य बनी रहेगी। तो ऐसा अहंकारी पुरुष दुनियाकी निगाहमें भी तुच्छ है। यदि विनयसे आप किसी दूसरेकी प्रशंसा करने चलें तो आपके चित्तमें कोई कष्ट न होगा, आप खुश होकर प्रशंसा करते जायेंगे और यदि आप किसीकी निंदा करने बैठे तो पहिले भीतरमें आपको अनेक प्रकारके विकल्प करने होंगे, अपने आपको दुःखी बना लेना होगा तब कहीं आप किसी दूसरेकी निन्दाकी बात बोल सकेंगे। यही तो अभिमान और विनयमें अन्तर है। विनयमें तो आनन्द ही आनन्द है। आजकी विशिष्ट उपासनाका विषय है मान न करना, हठ न करना, हठ न करना। हठ भी मानमें ही शामिल है और हठ करने वाला जब कुछ समर्थ होता है तब तो उसकी हठ चल जाती है, मगर जब सेरको सवा सेर मिल जाता है तब उसे पता पड़ता है कि मैंने व्यर्थ ही हठ किया था। अब मान हठ छोड़कर वस्तुस्वरूपको जानकर अपने आपमें विरक्ति उत्पन्न करें, खुदमें खुदकी महत्ता प्रकट करें, यही अपना वास्तविक बड़प्पन है। बाह्य में अपनी महत्ता दिखा देना कोई बड़प्पनकी बात नहीं है।

———o———

रखो तो अपने आपको शान्ति मिलेगी और बनना होगा तो उन मार्गोंसे अपने आप ज्ञानी बन जायेगा, परन्तु कपटी मनुष्यका चित्त तो हमेशा व्याकुल रहता है। उसके चित्तमें तो धर्मकी गंध भी नहीं आ सकती। सरल पुरुषोंमें आज्ञाकारिता, बड़ोंका सत्कार आदि गुण सहज ही हो जाते हैं। बड़े शास्त्रज्ञ धर्मका हृदय नहीं पा सकते और सरल मनुष्य कुछ भी करते हुए सरलताके प्रभावसे शांति पाते रहते हैं। कपटी पुरुष शास्त्रका विशेष जानकार भले ही हो जावे, परन्तु जो शास्त्र स्वाध्यायका फल गुण-शांति होना चाहिये वह उसको छू तक भी नहीं जाता और मायाचारसे रहित पुरुषको चाहे शास्त्रज्ञान थोड़ा हो, परन्तु सरल चित्त होनेसे उसमें शांति बनी रहती है और भैया, धर्म भी तो इसीको बताया है।

कपटके कारण निरंतर संक्लेशरूपता—कुटिल आदमियोंके हृदयमें तो कोई चीज प्रवेश कर ही नहीं सकती, धर्म तो दूसरी चीज है, उनके पास कोई गौरव नहीं और वह निरंतर दुःखी रहता है। इसलिए कहा जाता है कि हे भव्य जीवो! मायाको हृदयसे निकाल दो। मायाचारी प्राणी करता तो प्रयत्न दूसरोंके बिगाड़का है, हो जाता है स्वयंका बिगाड़। एक कथा है:—एक शेर कीचड़में जा फंसा। एक गीदड़ किनारेपर खड़ा था। उसने गीदड़से कहा कि तुम मेरे पास आ जाओ। तब गीदड़ने कहा—मामा, तुम खा जाओगे, इसलिये मैं तो नहीं आता। तब शेर बोला कि जो खावे उसकी सन्तान मर जावे, इसलिए मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा, तुम आओ तो सही। अगर मैं तुम्हें दगा दूं तो मेरी संतान मर जायेगी। गीदड़ फिर भी नहीं आया। तब शेर उसके ऊपर झपटनेके लिए उछला। उसका पेट पास खड़े हुये ठूंठमें धंस गया। तब गीदड़ हंसने लग गया। शेरने पूछा कि तुम हंसते क्यों हो? गीदड़ बोला—मामा, तेरे बापने किसीको दगा दी होगी, इसीलिए तू मर रहा है। गीदड़ उसके छलको जानता था, इसलिये उसकी तो जान बच गई और वह शेर खुद ही मरने लगा। सो भैया! छल कपटका तो भयानक परिणाम होता ही है। छलसे कोई काम नहीं चल सकता। इसके फलसे दुःख पैदा होगा। माया और छलको हृदयसे निकालो, कपटको हृदयसे निकालो। थोड़ीसी मायाचारी भी बहुत अनर्थ करने वाली है। चाहे जितनी कठिनाइयां हों, परन्तु छल कपटको मनसे निकाल दो। जिसके प्रति कभी कपट किया है उसके पास जाकर उससे ही निवेदन कर दो कि मेरा तुमसे ऐसा कपट हुआ। ऐसा विचार कर माया कपटको अपने मनसे निकालकर आर्जवधर्मको अपने मनमें बसा लो। धर्मके बड़े-बड़े काम कपटरहित होकर हों तो बड़े फल प्राप्त हों।

कपटसे कपटीकी दुर्गति—पौराणिक वृत्त है कि एक मुनिराज एक गांवमें चार मास का कठिन उपवास करके विहार कर गये। उसी समय दूसरे मुनिराज उस गांवमें आये।

परिणाम करनेसे कोई सिद्धि नही होती। यहांके वैभव, ठाटवाट तो जो अपने पूर्वभवमें आर्जव धर्म किया, उपासना किया, सरलताका परिणाम किया तो उसके पुण्यबंधसे ये ठाठवाट मिले हैं। कहीं मायाचारसे ये नहीं मिलते हैं। कपटसे धन नहीं जुड़ता। धन तो धर्मके साथ लगे हुये शुभ अनुरागके फलमें मिलता है। आर्जव धर्मसे मन स्थिर हुआ करता है। जो जीव जैसा अपनेमें विचार करता वैसा ही दूसरेके लिये कहे और वैसा ही करे तो उसे कहते हैं आर्जवधर्म। आर्जवधर्मका पालन नहीं करने वाले, कपटको बनाने वाले लोग आप अपने प्रति कपट करते हैं। दूसरोंके लिए कपट करने वाले अपने आप खुद कपटके गड्ढेमें गिर जाते हैं। जो दूसरोंके लिए गड्ढा खोदता है वह स्वयं दुःखके गड्ढेमें गिर जाता है। उसका कोई वचाने वाला नहीं होता। उसका यह पाप, कपट उसका विश्वास खो देता है। कपटीको बहुत बातें बनानी पड़ती हैं। कहीं कुछ और कह दिया तथा कहीं कुछ और कह दिया। सामने भला कह दिया और पीठ पीछे बुरा कह दिया, यह ही तो कपट है। कपट बहुत दिनों नहीं निभता, कभी एक साथ ही उसका कपट प्रगट हो जायेगा। फिर लोकमें उसका विश्वास नहीं रहेगा। कपटसे मनुष्यको इस लोक और परलोक दोनों लोकोमें दुःख उठाना पड़ता है।

कपटसे खुदकी ठगाई—भैया! इस लोकमें तो जगजाहिर है कि कपटीके जिस समय से उसके कपटके परिणाम होते हैं वह बहुत संक्लिष्ट रहता है और कपट प्रगट होने पर तो जो उसकी दशा होती है उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। वह जीता भी मरेके समान हो जाता है। कहीं आदर नहीं, कहीं पूछ नहीं और परलोकमें "माया तैर्यग्योनस्य" माया तिर्यञ्च गतिका साक्षात् कारण वताया ही गया है। जो तिर्यञ्च गतिके दुःख मायाचारीको भुगतने पड़ते हैं वह भी किसीसे छिपे नहीं हैं। इसलिए सरल पुरुष ही धर्मका अधिकारी है। धर्मको सरल परिणतिसे जल्दी ही जाना जा सकता है। कपटी मनुष्य धर्मको क्या जानेगा? वह तो धर्मके जानने में भी कपट ही करता है। लोग समझते हैं कि यह तो सुबह पूजा करता है, शास्त्र स्वाध्याय करता है, घंटों मन्दिरमें लगाता है, परन्तु भैया! कपटी दूसरोंको तो धोखा दे सकता है, पर अपने आपको तो धोखा नहीं दे सकता अथवा दूसरोंको तो क्या धोखा देगा, कपटी अपने को ही धोखा देता है। फल तो उसे अपने परिणामोंका भोगना ही पड़ेगा। विना सरलताके धर्मके मार्गपर नहीं चला जा सकता। धर्मके मार्गपर तो सरल पुरुष ही चल सकेगा।

सरल भावोंके द्वारा आर्जवधर्मकी प्राप्ति—आर्जवगुण कपट करके नहीं, बल्कि सरल परिणतिसे पाया जा सकता है। कपटसे किया कोई काम, कपटसे कमाया हुआ धन, छलसे कमाई इज्जत और कपटसे किया हुआ धर्म सब बेकार हैं। कपटको छोड़कर सरलताके मार्गसे

चलो तो अपने आपको शान्ति मिलेगी और बनना होगा तो उस मार्गसे अपने आप ज्ञानी बन जायेगा, परन्तु कपटी मनुष्यका चित्त तो हमेशा व्याकुल रहता है। उसके चित्तमें तो धर्मकी गंध भी नहीं आ सकती। सरल पुरुषोंमें आज्ञाकारिता, बड़ोंका सत्कार आदि गुण सहज ही हो जाते हैं। बड़े शास्त्रज्ञ धर्मका हृदय नहीं पा सकते और सरल मनुष्य कुछ भी करते हुए वक्रताके अभावमें शांति पाते रहते हैं। कपटी पुरुष शास्त्रका विशेष जानकार भले ही हो जाये, परन्तु जो शास्त्र स्वाध्यायका फल सुख-शांति होना चाहिये वह उसको छू तक भी नहीं जाता और मायाचारसे रहित पुरुषको चाहे शास्त्रज्ञान थोड़ा हो, परन्तु सरल चित्त होनेसे उसमें शांति बनी रहती है और भैया, धर्म भी तो इसीको बताया है।

कपटके कारण निरंतर संक्लेशरूपता—कुटिल आदमियोंके हृदयमें तो कोई चीज प्रवेश कर ही नहीं सकती, धर्म तो दूरकी चीज है, उसके पास कोई गौरव नहीं और यह निरंतर दुःखी रहता है। इसलिए कहा जाता है कि हे भव्य जीवो! मायाको हृदयसे निकाल दो। मायाचारी प्राणी करता तो प्रयत्न दूसरोंके बिगाड़का है, हो जाता है स्वयंका बिगाड़। एक कथा है:—एक शेर कीचड़में जा फंसा। एक गीदड़ किनारेपर खड़ा था। उसने गीदड़से कहा कि तुम मेरे पास आ जाओ। तब गीदड़ने कहा—मामा, तुम खा जाओगे, इसलिये मैं तो नहीं आता। तब शेर बोला कि जो खाये उसकी सन्तान मर जाये, इसलिए मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा, तुम आओ तो सही। अगर मैं तुम्हें दगा दूँ तो मेरी संतान मर जायेगी। गीदड़ फिर भी नहीं आया। तब शेर उसके ऊपर झपटनेके लिए उछला। उसका पेट पास खड़े हुये ठूंठमें धंस गया। तब गीदड़ हंसने लग गया। शेरने पूछा कि तुम हंसते क्यों हो? गीदड़ बोला—मामा, तेरे बापने किसीको दगा दी होगी, इसीलिए तू मर रहा है। गीदड़ उसके छलको जानता था, इसलिये उसकी तो जान बच गई और वह शेर खुद ही मरने लगा। सो भैया! छल कपटका तो भयानक परिणाम होता ही है। छलसे कोई काम नहीं चल सकता। इसके फलसे दुःख पैदा होगा। माया और छलको हृदयसे निकालो, कपटको हृदयसे निकालो। थोड़ीसी मायाचारी भी बहुत अनर्थ करने वाली है। चाहे जितनी कठिनाइयां हों, परन्तु छल कपटको मनसे निकाल दो। जिसके प्रति कभी कपट किया है उसके पास जाकर उससे ही निवेदन कर दो कि मेरा तुमसे ऐसा कपट हुआ। ऐसा विचार कर माया कपटको अपने मनसे निकालकर आर्जवधर्मको अपने मनमें बसा लो। धर्मके बड़े-बड़े काम कपटरहित होकर हों तो बड़े फल प्राप्त हों।

कपटसे कपटीकी दुर्गति—पौराणिक वृत्त है कि एक मुनिराज एक गांवमें चार मास का कठिन उपवास करके विहार कर गये। उसी समय दूसरे मुनिराज उस गांवमें आये।

लोगोंने कहा कि ये कितने बड़े तपस्वी हैं, जो चार महीनेका उपवास किया। मुनिने उस बात से इन्कार नहीं किया और मौनसे वे उनकी बात सुनते रहे। उसका फल उनको अनन्त काल का लगा। वहां मिथ्यात्व हो गया, क्योंकि उन्होंने अपनी असली स्थिति नहीं बताई। सबसे बड़ा कपट अपने आपको धोखा देना है दूसरेको धोखा कोई नहीं दे सकता, जो धोखा देता है सो खुदको धोखा देता है। हम भले ही समझें कि हमने इनको धोखा देकर खूब उल्लू सीधा किया, परन्तु भैया! जरा विचारोगे तो पता चलेगा कि तुमने उसे धोखा नहीं दिया, परन्तु अपने आपको धोखा देकर अपना बहुत बड़ा अहित किया है। तुमने अपने स्वभावसे विपरीत कार्य किया। सबसे बड़ा धोखा तो अपने ही आत्माको धोखा देना है। आत्माका स्वभाव परम आनन्दमय चैतन्यमात्र स्वभाव है। मनुष्य कपटसे अपनी ही आत्माके स्वभावको धोखा देता है। यह कपट मिथ्यात्वका द्योतक है। न राग मेरा स्वभाव है, न द्वेष मेरा स्वभाव है और जितने भी बाह्य पदार्थ हैं वह भी तो मेरे कुछ नहीं हैं। उनमे भी तो मेरा कुछ सुधार बिगाड़ नहीं है, फिर किसके लिये कपट और किसके लिये मायाचारी करना? ऐसा सोचकर ज्ञानी जीवसे कपट नहीं होता। व्यवहारमें भी सोचो तो वह कपटी तो अपनी ही आत्माको धोखा दे रहा है। आर्जव धर्म तो कपटके छूटनेपर ही मिलेगा।

मायाचार न होनेसे विराम व आराम—जिसके मायाचार न हो तो विकल्पोंको विराम होता है। कुटिलता न हो तो मन स्थिर रह सकता है। कुटिलतासे कोई सिद्धि नहीं है, फिर भी मोहका ऐसा ऊधम है कि यह जीव नाना गुन्तारे लगाया करता है और कपट करके किसीको छका दिया, दगा दिया तो उसमें वह अपनी बुद्धिमानी मानता है। पर लोग तो हम आपसे भी ज्यादा गुणी, बली, कर्मठ हैं। हम किसको दगा देते चले जायें। जो दूसरों को धोखा देते हैं वे खुद ठगाये जाते हैं। सरल पुरुषकी तो कुटिल लोग भी सेवा किया करते हैं। पर कुटिलका सेवक लोकमें कोई नहीं होता।

कोई १०० सालके करीबकी बात होगी जब यहाँ गदर हुई थी। लोग घरोंको लूटने लगे। दिल्लीमें एक सेठ जौहरी थे। वे सरल परिणामी थे। सेठने सोचा कि लुटेरे आयेंगे तो वे भी तकलीफ पायेंगे और हमको भी तकलीफ देंगे। तो सब वैभव निकालकर आंगनमें लगा दिया। अब लुटेरे लोग आये, देखकर दंग रह गए। अरे, ऐसा तो कहीं हुआ ही नहीं। सेठ जी यह तुमने क्या किया है कि सारा धन आंगनमें रख दिया। सेठ बोला भैया यदि यह धन न निकाल देते तो तुम्हारे समयकी बरबादी होती और तुम्हें तकलीफ होती। इसलिए हमने इकट्ठा करके रख दिया। सेठकी सरलताको देखकर उन लुटेरोंके मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। धन लूटना तो दूर रहा, चार पहरेदार दरवाजेपर उस धनकी रक्षाके लिए खड़े कर दिये और दूसरोंका घर लूटने चले गये। सेठका धन सुरक्षित रह गया। तो जो होना है होता है,

मायाचारका परिणाम रखनेसे कोई लाभ नहीं है।

कुटिल हृदयमें धर्मका अप्रवेश व सरल हृदयमें धर्मपात्रता—यह आर्जव धर्म पापोंका नाश करने वाला है और सुखको उत्पन्न करने वाला है। जैसे जाप बनती है अर्थात् कांचकी गुरिया, जिनसे माला बनती है, उनमें से किसी गुरियामें यदि टेढ़ा छेद हो तो उसमें लाख उपाय करो, मालामें वह गुरिया नहीं फंस सकती। उसमें सूत्र नहीं प्रवेश हो सकता। इसी तरह जिसका हृदय टेढ़ा है, कुटिल है, मायाचारसे पूर्ण है उसमें धर्मकी बात प्रवेश नहीं कर सकती। सरल पुरुष उसको तुरन्त ग्रहण कर लेगा। सरलता एक बड़ा गुण है। एक कोई धामनी गांव है, वहां कोई पंडित पहुंचे। मन्दिरमें रात्रिको सब जैन श्रावक पहुंचे। पंडित जी ने उपदेश दिया कि देखो भैया! रात्रिको पानी नहीं पीना चाहिये। रात्रिको पानी पीना खून के बराबर दोषकारी है। मनुस्मृतिमें भी ऐसा लिखा है। श्रावकोंने कहा, हां महाराज न पियेंगे। रात्रि जल ग्रहणका त्याग कर दिया। दूसरे दिन सभामें एक-दो ही पुरुष आये। पहिले बहुत आते थे। तीसरे दिन पंडित जी ने पूछा—क्यों भाई तुम सब कल रात्रिको क्यों नहीं आये थे? कहा महाराज तुमने रात्रिको पानी छुड़ा दिया था तो महाराज हम झूठे मुंह तो मन्दिर न आते। क्या मतलब? खाना तो खाते थे। भाई पानी रात्रिका छूटा, पर खाना तो नहीं छूटा। वे खाकर पानी न पीवें। झूठे मुंह मन्दिर कैसे आते? अरे भाई जहां पानी का त्याग कर लिया वहां भोजनका त्याग स्वयमेव सिद्ध होता है। यह जानकर कि यहांके लोग व्रती, त्यागी तो हैं सो ऐसा समझ कर वहां पंडित जी और ठहर गये। फिर वहांपर जैसा त्याग पंडित जी ने चाहा सबने स्वीकार किया। सरलताके कारण अगर कोई श्रावक भी पहुंचे तो वह श्रावक पुरुष भी नम्र हो जाता है। यह आर्जव धर्म पापोंका क्षय करने वाला है। इसी भावका आचरण करो। दसलाक्षणी पर्वकी सेवा इसलिये यह है कि इन धर्मोंको अपनी शक्तिभर हिम्मत करके पालन करनेमें लग जावो। अब तक तुमने क्या किया? जो हुआ सो हुआ, किन्तु अब तो धर्ममार्गमें अपने कदम बढ़ाओ। क्रोधको त्यागो, मानको त्यागो, और त्याग दो मायाचार विषय। सरलताके आचरणमें रहो, आर्जवका पालन करो और आर्जव के महात्म्यका श्रवण करें।

जारिसु णियचित्ति चिंतिज्जइ, तारिसु अण्णहु पुणु भासिज्जइ।
किज्जइ पुणु तारिसु सुहसंचणु, तं अज्जवगुण मुणहु अवंचणु॥

सरलताके कारण हानिका प्रसार—जैसा मनमें अपने विचार करे वैसा ही दूसरोंसे कहे और वैसा ही कार्य करे, यह गुणरूपी निष्कपट आर्जव धर्म है। [illegible] के प्रधान के पुत्र और चोरी करने लगा। उसने चोरीका सामान [illegible] लिया और [illegible] थी। यह सेठकी इतनी मानी हो गई कि [illegible] चोरी नहीं मानी। सेठ जी ने [illegible] किया कि

ये और चोरसे कहा कि भाई, तुमसे यह उठती नहीं है, लाओ मैं इसे उठाकर पहुंचा दूं और यह कहकर वे उस पोटलीको उठाकर साथ जाकर पहुंचा आये। चोरने गठरी ले जाकर अपनी मां को बताई। मां ने कहा कि आज इतनी बड़ी गठरी कहांसे मार लाया? चोर बोला कि मां बड़ा माल मार लाया, इसके मालिकने इस गठरीको उठाकर स्वयं ही यहां तक पहुंचा दी, यह कितने आश्चर्यकी बात है? मां समझ गई और बोली—अरे, यह माल बनारसीदासका होगा। वह बड़ा धर्मात्मा है, उसका धन तुझे नहीं पचेगा, तेरी बड़ी दुर्गति होगी। जा, सारा का सारा उसे वापिस करके आ। चोरको वह धन वापिस लाकर दे देना पड़ा। तो भैया, सरल पुरुषोंकी तो रक्षा करने वाला उसका सरल आर्जव परिणाम ही होता है और इसके विपरीत जो ऐसा सोचते हैं कि देखो हमने उसे कैसा चकमा दिया, कैसा छकाया तो ऐसे लोग तो प्रायः धोखा ही खाते हैं।

कपटीका पराजय—व्यवहारमें देख लो, जो अपनेको कुटिलता और कपटमें लगाये रखता है, उसकी क्या दशा होती है और जो सरल रहता है उसका सब आदर करते हैं। मायावी पुरुषका पूजा पाठ आदि धर्म करना सब निष्फल होता है। 'मुंहमें राम बगलमें छुरी' ऐसी दशा उनकी होती है, फिर धर्म कहां? आर्जव धर्म मोक्षमार्गके पंथका सहयोगी है। मोक्षको जल्दी प्राप्त करना चाहते हो तो आर्जव धर्मको अपने भावमें रखो। बस धर्मके साथ रहनेसे मोक्षपंथपर बहुत जल्दी पहुंच सकते हो, नहीं तो चतुर्गतिमें भटकते ही रहना पड़ेगा। जो दूसरोंसे कपट करता है उसे स्वयं लज्जित होना पड़ता है। एक मजाकिया आदमी रास्तेमें कहीं जा रहा था। सामनेसे एक स्त्री कमरपर घड़ा रखे और उसको हाथसे संभाले हुए पनघटसे आ रही थी। उसने मजाकसे, कपटसे, छलसे उस स्त्रीसे कहा कि—

किं मां निरीक्षसि घटेन कटस्थितेन, वक्त्रेण चारुपरिमीलितलोचनेन।
अन्यं प्रपश्य पुरुषं तव कर्मयोग्यं, नाहं घटाङ्कितनुं प्रमदां स्पृशामि॥

अपनी कमरपर घड़ा रखे हुये हे ब्राह्मणी! तू गौरसे मुझे क्यों देखती है? इन अपने लोचनोंसे मुझको तू क्या देखती है? अपने कामके योग्य किसी दूसरे पुरुषको देख। जिसके शरीरपर घट रखा हो उसे मैं छूता भी नहीं हूं। अब वह स्त्री जवाब देती है कि—

सत्यं ब्रवीपि मकरध्वजवाणपीड, नाहं त्वदर्थं मनसा परिचिन्तयामि।
दासोऽद्य मे विघटितस्तव तुल्यरूपी, सो वा भवेन्न भवेदिति मे वितर्कः॥

कामदेवके व्यसनसे पीड़ित हे वराक पुरुष! तू बिल्कुल सत्य बोल रहा है। मगर मैं मनसे तेरे लिये नहीं विचार रही, परन्तु मेरा नौकर जो तेरी ही जैसी शकलका था, वह आज कहीं चला गया। मैं उसे देख रही थी कि वह नौकर तू ही है या और है। इस प्रकार सेरके लिये सवा सेर मिल गया। वह मजाकिया शर्मके मारे लज्जित होकर चला गया। कपटीको

तो भैया ऐसा ही नीचा देखना पड़ता है, पग-पगपर निरादर सहन करना पड़ता है।

कपटके कारण चित्तमें उधेड़पनका कष्ट—कपटसे कोई बात कहो तो सोचते रहना पड़ता है कि तुरन्त वहांसे जवाब न मिल जाये, नहीं तो लज्जित होना पड़ेगा। इस लज्जित न होनेके लिये कपटको त्यागो। हमारे गुरुजी (पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी) कहा करते थे कि हम तो सबकी बात जानते हैं कि किसके मनमें क्या भाव है, परन्तु कहते इसलिये नहीं कि क्यों उसका जी दुखावें। इसलिये यह समझना चाहिये कि कहीं ऐसा नहीं है कि कोई मेरे कपटका कहीं पता नहीं लगा सकता। कपटको सब पहिचान लेते हैं, हाँ सज्जन उसकी उपेक्षा कर जाते हैं। आप कपट करके यह न सोचें कि भाई हमारा काम तो निकल जाता है, किसीको हमारे कपटका पता नहीं चलता, परन्तु ऐसा नहीं है। पता तो अवश्य चलता है, परंन्तु सज्जन पुरुष उस कपटको प्रगट करके आपका दिल नहीं दुखाना चाहते। कुटिल परिणामोंका त्याग करनेमें ही आर्जव धर्म है। आत्मामें जो भी सम्यग्दर्शनके भाव प्रगट होते हैं वे सब आर्जव धर्मसे प्रगट होते हैं भैया, धर्म ही और क्या है? अपने स्व-भावमें आ जाना और विभाव परिणाम हट जाना, यही तो धर्म है। कपटके त्याग करनेपर आत्मा स्वयं आर्जव रूप रह जाती है। बस, जहाँ विभाव हटा धर्म स्वयमेव हो गया। आवश्यकता तो विभाव हटानेकी है। इसलिये कपट मत करो।

मायाचार द्वारा स्वयंकी वञ्चना—अपनी रात दिनकी चर्याको देख लो कि मायाचार करके कौनसा नफा पा लिया जाता है? तुम्हारी दूकान भी ठप्प हो जाय, रोजगार न चले, वहाँ यह झूठा भ्रम है कि मायाचार करके दूकान चलती है। अगर ग्राहकोंको यह पता चल जाता है कि यह दूकानपर मायाचार करता है तो उस दूकानको ग्राहक छोड़ देंगे। जब तक ग्राहक दूकानदारको सही समझते हैं तब तक ही दूकान चलेगी, मनमें हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सो करिये। बस यही आर्जव धर्म है। सो ऐसे आर्जव गुणको हे भव्यो, पालन करो। आर्जव धर्मसे खुदकी भलाई है, ठगाई नहीं है। एक बार चिरोंजाबाई जी गुरु जी से बोली कि तुम जहां चाहे ठगाये जाते हो। १० आने सेर अनार मिलता है और तुम १२-१३ आने सेर खरीदते हो। तो गुरु जी बोले, मां हम ठगाये जाते हैं, पर दूसरोंको ठगते तो नहीं है। दूसरोंको ठगनेमें पाप है, स्वयं ठगाये जानेमें कोई पाप नहीं है। हम ठगाये गये तो हममें क्रूरता तो नहीं आयी, पापबंध तो नहीं हुआ, भविष्यका मार्ग तो साफ रहा। अगर दूसरोंको ठगना चाहें तो लुटिया डूब जाती है और दूसरे अपनेको ठग लें तो अपने ऊपर कोई पाप नहीं लगता है।

प्रवञ्चनाकी अयोग्यता—एक बार जंगलमें एक संन्यासी बैठा था। भूला भटका एक सेठका लड़का वहाँ पहुंच गया। वह लड़का खूब सोने रत्नके आभूषण पहिने हुए था।

संन्यासीसे [illegible]
जानसे मारते गया । [illegible]
नहीं तो तुम्हारी [illegible]
के लिए ? एक चिड़िया तक भी तो नहीं है । ये पानीके बबूले [illegible]
तो लड़का बोला कि ये बबूले ही बता देंगे । [illegible]
फैली । सी. आई. डी. लग गई । [illegible] बन गया । बड़ी सेवा करे हर प्रकारसे । सो जब १०-११ महीने हो गए, गुरुजी [illegible] हो गया उस शिष्यपर । एक दिन गुरु जी की सेवा कर रहा था, [illegible] था वह । गुरु जी तो खूब मस्त थे, बरसातके दिन थे पानीके बबूले देखकर गुरु जी को हंसी आ गई । शिष्यने पूछा, महाराज क्यों हंसी आई ? इसका कारण तो बतलाओ ? जब कोई भक्त हो है तो उससे कहनेमें कोई झिझक नहीं होती । बोला—यह बेवकूफ लड़का कहता था कि बबूले ही बात कह देंगे । सारी बात बता दी । बस वह तो सी. आई. डी. का आदमी था, वड़ा भक्त बनकर रहता था । अब झट कोतवाली गया बता दिया कि सेठ साहबके बच्चे मारने वाला यह संन्यासी है । उसे गिरफ्तार करा दिया । लो, बबूलोंने कपट बता दिया । जिस समय यह जीव पापोंके परिणाम करता है उसी समय कर्मबंध हो जाता है, और बँध जाना यह सबसे वड़ा दण्ड है । यह आर्जव धर्म अवंचक है । इसका मनसे पालन करो ।

मायासल्ल मणेहु णिसारहु, अज्जउ धम्म पवित्त पियारहु ।
वउ तउ माया वियउ णिरत्थउ अज्जउ सिवपुर पंथ सउत्थउ ॥

मायाशल्यके निवारणका आदेश—हे भव्यजनो ! माया शल्यको मनसे निकालो । शल्य तीन होते हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) निदान और (३) माया । कषाय शल्योंसे अलग है, कषायोंको शल्यमें नहीं लिया । मायाचार ऐसा शल्य होता ही है । सामने कुछ कहें और परोक्षमें कुछ कहें । ये सब मायाचारकी ही बातें हैं । ऐसी बात जब हृदयमें रहती हैं तब शल्य बन जाता है । जैसे कांटा कीली आदि लग जाये तो दुःख देते हैं, इसी प्रकार मायाचार चित्तमें घर कर जाय तो यह महान दुःख देता है । सो मायाचार शल्यको निकालें यही आर्जव धर्मका पालन है । इस आर्जव धर्मकी उपयोगितापर सदा विचार करो । आर्जव धर्मसे नरभवकी सफलता है । मायाचारी जीवका व्रत करना, तप करना, धर्म करना यह सब निरर्थक है ।

कपटकी अस्थिरता—एक गीदड़को कहीं शेरकी खाल मिल गई और एक कागजका टुकड़ा कहींसे मिल गया । वह उस खालको पहिनकर जंगलके सब जानवरोंके पास गया और उनसे वह कागजका टुकड़ा दिखाते हुये कहने लगा कि मुझे भगवान्के यहाँका यह परवाना मिला है कि तुम आजसे जंगलके राजा हो गये । इसलिये आजसे तुम मेरी आज्ञामें चला करो

सब उसकी आज्ञामें रहने लगे। वह बड़ा सम्मान पाने लगा। आषाढ़के महीनेमें जब पानी बरसने लगा तो उसकी जातिके सब गीदड़ 'हुआं-हुआं' करने लगे। अपनी बोली होनेके कारण वह भी 'हुआं-हुआं' चिल्लाने लगा। शेरने उसे 'हुआं-हुआं' बोलते हुये सुन लिया और उसे कपटी समझ लिया। अतः उसे तुरन्त मार दिया। इसी तरह जो आदमी कपट करता है उसका कपट अधिक दिन टिक नहीं सकता। जो चीज यथार्थ नहीं होगी वह कभी नहीं टिकेगी। सदा टिकने वाली चीज तो कपट रहित ही है। कपटी अपनी शान बढ़ाने वाला जीवनमें धोखा खाता है। कपटसे तो बड़ी-बड़ी वेश्यायें भी धनी बन जायें, पर उनके धर्म नहीं होता। कपटसे कमाया हुआ धन न दानमें और न भोगमें लग सकता है। न्यायसे कमाया धन ही धर्ममें लग सकता है।

कपटार्जित धनका सत्कर्ममें, धर्ममें उपयोग होनेका अभाव एवं अपव्यय—एक वेश्या थी, उसने बहुत धन कमाया। अब उसने सोचा कि पाप तो मैंने बहुत किये, चलो अब इस पापसे कमाये हुए धनको दान करके आवें। दान करनेके लिये उसने गंगाके किनारे जानेकी विचारी। एक ठगने देख लिया और उसका विचार भी किसी तरह जान गया। वह गंगाजी के तटपर बदनमें भस्म रमाकर समाधिमें बैठ गया। वेश्या वहां जाकर देखने लगी कि कौनसे महात्मा उसके दानके योग्य हैं ताकि बड़े अच्छे महात्माको दान दे दूं। वही ठग महात्मा उसे पसन्द आये। बहुत देर हाथ जोड़े खड़े रहनेके बाद महात्माजी ने अपनी समाधि धीरे-धीरे आँख खोलकर भंगकी और वेश्यासे पूछा कि तुम कौन हो? तब उसने बताया कि मैं वेश्या हूं और दान देने आई हूं। वे बोले कि तू वेश्या होकर हम इतने बड़े महात्मासे बात करती है? इसका तो बड़ा प्रायश्चित होता है। तू क्या दान करती है? महाराज मैं अपनी सारी सम्पत्ति दान करना चाहती हूं। महाराजने स्वीकार किया। उसने सारी सम्पत्ति दी और खीर-खांडके भोजन कराये। ठग महाराजने उसकी सम्पत्ति लेकर कई तरहसे संकल्प कराये, फिर अन्तमें एक दोहा पढ़कर आशीर्वाद दिया—"गंगाजी के घाट पर खाई खीर अरु खांड। पीका धन पी ही गया तुम वेश्या हम भाँड॥" अर्थात् पापका धन पापमें ही चला गया। भैया! यह बात सयुक्तिक है कि कपटसे कमाया धन, दान धर्म आदिमें भी नहीं लग सकता। उसे तो ठग ही ठग ले जायेंगे। इसलिये कपटको मनसे निकालो। अपनी श्रद्धा करो। अपने चैतन्यस्वभावपर विश्वास करो। अपने भाइयोंके साथ, मां बापोंके साथ, छोटे बड़े सबके साथ सरलताका व्यवहार रखो। कपट करनेकी क्या आवश्यकता है? कपट भाव को मनसे बिल्कुल निकालकर शुद्ध आर्जव धर्मको धारण करना चाहिये।

आर्जवका परमार्थस्वरूप—निश्चयसे आर्जवका क्या स्वरूप है? जगत्के बाह्य पदार्थों आदिमें राग, द्वेष, आदि व्यवहारके परिणामसे जो नहीं रहता है, ऐसे अनादि अनन्त, अहेतुक

ज्ञानस्वभावकी आराधनासे जो अपने आपका अनुभव आये ऐसे अनुभवस्वरूप परमात्माके अवलोकनको ही वास्तविक सरलता कहते हैं और यही आर्जवका वास्तविक स्वरूप है। बाह्य लक्ष्यसे कुटिलता उत्पन्न होती है। जहाँ बाह्य लक्ष्य ही नहीं है, वहाँ कुटिलताकी आवश्यकता क्या है? किसी वस्तुसे राग हुआ, किसीसे द्वेष हुआ, किसीको इष्ट समझा, किसीको अनिष्ट समझा तभी तो कपटका परिणाम हुआ। अपने स्वरूपको समझो, मैं तो एक शुद्ध निर्विकार, निरंजन ज्ञानस्वभाव ही है जिसका, ऐसा आत्मा हूं। इसी प्रकारकी श्रद्धा करो, कुटिल परिणाम रहेगा ही नहीं। सरलता अवश्य आ ही जावेगी। जो माया करता, वह तिर्यञ्च योनि में जाता है 'माया तैर्यग्योनस्य' ऐसी-ऐसी दुःखमय पर्यायें इस मायाके परिणामसे हुआ करती हैं, जिनको सुनकर भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सरल और सत्य व्यवहार प्रत्येक मनुष्यसे करना चाहिये। कपट किसीसे नहीं करना चाहिये। वास्तविक आर्जव धर्म तो यही है कि सर्व जगत्के बाह्य पदार्थोंका लक्ष्य त्यागना और अपने आपमें पापकी प्रवृत्ति नहीं करना। बात वह बोलो जिससे कपट करनेकी इच्छा ही नहीं रहे और फिर किसी प्राणीसे क्षमा न मांगनी पड़े, अर्थात् प्रत्येक प्राणीके हितकी ही बात सोचना। ऐसा आर्जव धर्मका वास्तविक स्वरूप है। कपटी पुरुष यह सोचता है कि मेरा कपट प्रकट ही नहीं हो सकता, परन्तु कपटी का दिल स्वयं निर्बल होता है जिससे कपट प्रकट हो ही जाता है। प्रच्छन्न पाप भी कभी छुपता नहीं है। लोकमें भी कहते हैं कि कुएंमें किया हुआ भी पाप प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

निर्मय होकर आत्मदर्शनके पौरुषका आदेश—भैया! मनुष्य जीवन पाया है तो चाहे गृहस्थ हो, चाहे त्यागी हो, चाहे साधु हो, एक ही उद्देश्य होना चाहिये कि मैं जिस किसी प्रकार समस्त कुटिलतावोंसे रहित सरल ज्ञानानन्दस्वरूपी अपने आत्माको देख लूं, और मुझे कुछ नहीं चाहिये। जैसे कोई निष्कपट प्रभुका भक्त होता है तो वह केवल निःस्वार्थ प्रभु-भक्ति चाहता है। इसी प्रकार जो आत्मदर्शी पुरुष होता है वह निश्छल निःस्वार्थ केवल एक ही उद्देश्य रखता है कि मुझे आत्मदर्शन हो। केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसा मेरा ध्यान बने, यही धर्मका उत्कृष्ट पालन है। तो हमें इन मायाचारी परिणामोंको तो अपनाना नहीं चाहिये। आपत्तियां आती हों उन्हें सहन कर लें, दरिद्रता आती हो आये, धन बिगड़ता हो बिगड़े, ये सब साधारण चीजें हैं किन्तु मायाचारका परिणाम होगा अंतरङ्गसे तो यहां अत्यधिक विकल्प मायाचारसे गंदा और किसको कहेंगे? क्रोध होता है होओ, मगर मूलमें गंदगी न आयी, मान होना था हो गया, पर मूलमें गंदगी न रही, पर मायाचारके मूलमें तो गंदगी न रही, पर मायाचारके मूलमें तो गंदगी बसी है। लोगोंको मालूम पड़ जाय कि बड़ा छली, कपटी, धोखे-बाज है तो फिर लोग अपने पास भी नहीं बैठने देंगे। मायाशल्य इतनी बुरी परिणति है।

मायाकी बात ही क्या है ?

मायाकी मायाचारी द्वारा व्यक्तता—एक राजा था, वह अपने बगीचेमें घूम रहा था। एक सेव पेड़के नीचे सूखे गोबरपर पड़ा हुआ था। सेव बड़ा लाल, पुष्ट और बड़ा अच्छा था। उस सेवको राजाने उठा लिया और पोंछकर खा लिया। अब दोपहरको दरबार पहुंचे। दरबार बड़ा सजा-धजा था। नृत्य करने वालीका नृत्य गान हो रहा था। जो नर्तकी थी, उसने कोई गाना गाया। दूसरा गाया, तीसरी बार उसने यह गाना गाया जिसकी टेक है, "कहि देहौं ललनकी बतियां" सो राजाने यह सोचा कि इसने मुझे सेव उठाकर खाते हुए देख लिया है सो यह कह रही है कि कहि देहौं ललनकी बतियां। अभी तो यह मुझसे कह रही है शायद सबसे कह ही न दे, तो ऐसा सोचकर राजाने उस गानेपर नर्तकीको एक सोनेका आभूषण उतारकर दे दिया। उसने तीन-चार बार वही गाया। तीन-चार बार राजाने गहने उतारकर दे दिए। नर्तकी सोचती है कि यह तो कोई बढ़िया राग नहीं है, कोई ठुमरी गायें। सो ठुमरी गाने लगी। इस पर राजाने कोई इनाम नहीं दिया। फिर सोचा नर्तकीने कि महाराज तो उस गानेपर ही खुश हैं। उसने फिर वही गाया। सो फिर राजाने इनाम दिया। जब सब गहने उतर गये तो कहा बता दे ललनकी बतियां। अरे यही तो कहेगी कि राजाने गोबरपरसे सेव उठाकर खा लिया।

आत्महितविराधक मायाचारको त्यागनेका आदेश—अभी आजकल दसलाक्षणी पर्वके दिन हैं। शायद कोई हरी नहीं खाता होगा। बच्चे भी नहीं खाते हैं, और कोई लड़का ककड़ी खाकर आया हो और झूठमूठ ही उससे कह दें कि देखो यह क्या लगा है तो बच्चा हाथ फेरने लगेगा। लगा कुछ नहीं था, मगर ककड़ी खाई होगी तो हाथ जरूर मुखपर पहुंच जायगा। बहुतोंकी चोरी यों ही निकाल ली जाती है। मायाचारसे आत्माके हितकी कोई सिद्धि नहीं है। लोग यह सोचते होंगे कि मायाचारसे कुछ यश बढ़ा लेंगे, मायाचारसे कुछ धन बढ़ा लेंगे। भाई अनन्त काल भटकते-भटकते कीड़े मकोड़े, वृक्ष आदि पर्यायोंमें रुलते-रुलते आज श्रेष्ठ मन वाला जन्म पाया है तो इस वैभवके पीछे मायाचार करके अपने संसारको न बढ़ाओ। इस संसारमें कोई किसीका साथी नहीं है। केवल अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का परिणाम ही रक्षक है। सो यह आर्जव धर्म शिवपुरका सुन्दर मार्ग है। मुक्ति इष्ट है, संसारके संकटोंसे छूटना अभीष्ट है, शरीर और कर्मोंके बंधनसे रहित होकर कैवल्य अवस्था यदि अभीष्ट है तो इस आर्जव धर्मको अंगीकार करो।

जत्थ कुटिलपरिणाम चइज्जइ तहि अज्जउ धम्मजु संपज्जइ।
दंसणणाण सरूव अखण्डउ परम अतीन्द्रिय सुक्खकरंडो॥

कुटिल परिणामोंके कारण स्वयंपर अन्याय—जहांपर कुटिल परिणामोंका त्याग

होता है वहां ही आर्जव धर्म उत्पन्न होता है। कोई पुरुष कुटिल परिणाम करके, मायाचार करके समझता है कि मैंने अमुकको खूब छकाया, खूब धोखा दिया, पर भैया कोई दूसरेको धोखा नहीं दिया करता है, खुद ही धोखा खाता है। अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख शक्तिके धारक इस निजनाथको विकल्प आदि मायाचार परिणाम करके इसने आंखोंसे ओझल कर दिया। इसे अब अपना आनन्दमय स्वरूप नहीं दिखता है। यह कितना बड़ा भारी अन्याय है अपने आपके प्रभुपर? प्रभुपूजा करते हैं और अपने आपमें यह समझ न बैठ पाये कि जो प्रभुका पद है, जैसा वह अनन्त ज्ञान, अनन्त सुखादिका धारी है इस प्रकारका परिणमन मेरे नियमसे हो सकता है। इसमें रंच संदेह नहीं। इतनी बात यदि नहीं समा सकती है तो बतलाओ कर्मोंके क्षयका फिर उपाय कहाँसे प्रकट होगा? घरमें बसने वाले लोगोंसे धर्मानुकूल व्यवहार करो। जो आपकी दूकानकी आयसे वजट बने उस वजटमें पोषण करो। न उन्हें शानसे रख सकें तो भाई आप लोगोंका उदय ही ऐसा है। जैसा सम्भव है धर्मानुकूल व्यवहार कर लो कुटिलतासे तो कार्यकी सिद्धि नहीं है। कार्योंकी सिद्धि तो शुद्ध भावोंसे है। शुद्ध भाव हों तो पाप खिर जायेंगे, पुण्यका रस बढ़ जायगा, अच्छे दिन सामने आ जायेंगे-और नहीं तत्काल शांति तो रहेगी। मायाचारी पुरुष कब शांत रह सकता है? भैया, मायारहित शु परिणाम हों बालकवत्। बच्चोंमें कपटकी बात कभी नहीं देखी जाती है, और कभी देखी जाय तो समझ लो कि बापका या बड़े भैयाका असर पड़ गया है। छोटे बालकोंमें ऐसी बु कहाँसे आ जाये? वे कपट कैसे सीख सकते?

सरलताका अन्यपर प्रभाव—एक बार दो-तीन लड़के कालेज पढ़ने जा रहे थे। रा में देखा अस्पतालके सामने एक बुढ़िया बैठी थी। बच्चोंने पूछा बुढ़िया माँ तुम यहाँ क्यों हो? कहा बेटा दवाई चाहिए। बड़े-बड़े लोग तो भीतर घुस जाते हैं और दवा ले आते पर हमें कौन घुसने दे? सरकारी अस्पताल है। बच्चोंने सोचा कि हमारा पढ़ना बेकार हम किसलिए पढ़ते हैं? हम एक ऐसा अस्पताल खोलेंगे कि जिसमें गरीबोंको ही दवा मिले संकल्प कर लिया कि एक बहुत बड़ा अस्पताल खोलेंगे। सबने सलाह किया। एक वजट ५ लाखका बनाया। बातोंसे तो काम न चलेगा। इतना पैसा कैसे इकट्ठा हो? सबने सलाह किया कोई हर्ज नहीं। आपसमें ही किसी नेताको सभापति बनाया गया, कोई मंत्री बनाया गया, किसीको कोषाध्यक्ष बनाया। सब गांवके बड़े-बड़े लोगोंसे मिले। बनाया सारा हाल। किसीने कुछ दो चार हजार रुपया इकट्ठा किया। पर ५ लाख कैसे इकट्ठा हों? खैर, जो [illegible] जमा कर दिया।

[illegible] उन बच्चोंने सलाह कर दिया—क्योंकि गांवके जो सबसे बड़े धनी थे [illegible] कहा कि उनके पास जावो, उनसे २ लाखका सवाल

करो। २ लाख मिल जायेंगे तो बाकी सब काम बन जायगा। पहुंचे वहाँ लड़के। सेठसे कहा हमारी यह स्कीम है, यह सभापति हैं, यह मंत्री हैं, यह कोषाध्यक्ष हैं, हमें आपसे और कुछ नहीं चाहिए, केवल २ लाख रुपये मिल जायें और बाकी २-३ लाखका प्रवन्ध हम कर लेंगे। सेठने नहीं दिया, लड़कोंने हठ ठान लिया कि हमें इनसे लेना ही है। उनकी हवेलीके सामने बैठ गये। दो दिन हो गये, तीन दिन हो गए, भूखे बालक बैठे शुद्ध भावसे। सेठानी नीचे उतरी, बालकोंसे पूछा—क्यों बैठे हो? बालक बोले—हमें अस्पताल खोलना है उसके लिए हमें सेठ जी से २ लाख रुपये चाहियें। सेठानीने कहा ठहरो, कोई बात नहीं, हम देंगी। लड़कोंने कहा हम तो सेठ जी से ही लेंगे। सेठने उन्हें बुलाया प्रेमसे पूछा—क्या है वेटा तुम्हारी स्कीम? लड़कोंने बताया। तुम्हारा कुल बजट कितनेका है? ५ लाख का। अच्छा तो २ लाख नहीं वेटा तुम और कहीं न मांगने जावो, हमसे यह ५ लाखका चेक लो। सेठ बोले—हम तो सदस्य बनेंगे नहीं, तुम सब अपना काम करो।

सरलतामें लाभ—सरल बच्चा हो तो बाप उसको कितनी जल्दी सुख सामग्री देता है? और यदि बच्चा कुटिल हो, चकमा देता हो तो बाप उसकी पूछ नहीं करता है। कोई जगह आपको सरलतामें विजय मिल जायगी, पर मायाचार करके विजय नहीं मिलेगी। क्योंकि मायाचार झूठी और खोटी बातोंको लिये है। खोटी बातोंपर उतारू होना यह कार्य अच्छा नहीं है। बुरे कार्यके लिये कोई कदम बढ़ाये तो उसे कैसे सफलता हो सकती है? आर्जव धर्म वहां है जहां कुटिल परिणामका त्याग हो जाता है। जहां ज्ञानस्वरूपी यह आत्मा उपयोगमें हो, वहां आर्जव धर्म होता है। सुखके लिये बहुत उपाय तो किया और कहींसे मिला भी कुछ नहीं और सब अपने-अपने मनमें अन्दाज़ लगा लो। इतनी उम्र तक कितनी ही सेवायें कीं, सब कुछ किया, पर दूसरोंके हाथ कुछ नहीं लगा। एक उपाय और कर लो कि किसी क्षण दो-चार मिनट किसी स्थानपर बैठकर सबको एकदम भूल जावो, एक-दो को भी चित्तमें मत रखो, एक साथ सम्पदाको, घरको, शरीरको सबको भूल जावो। किसीको, उपयोगमें स्थान न दो। ऐसा दो मिनट भी तो कर लो। इतनेसे क्या विगड़ता है? यदि भीतरसे यह निजनाथ दर्शन दे देगा तो अनन्तकालके लिए भला हो जायगा। यह बात, यह प्रयत्न तब हो सकता है जब परिणामोंमें कुटिलता न बसी हो, सरल वृत्ति हो। दर्शन ज्ञान-स्वरूपी अखण्ड अतीन्द्रिय सुखका भण्डार आत्माका दर्शन उसे हो जाता है जो कुटिल परिणामोंको त्यागता है।

एक गृहस्थके एक बछड़ा था, सो वह उसे दो पैसेका घास रोज खिलाता था। एक ऐसा गिरमा भी आता था जो घास बटोरकर ही बनता था। बछड़ा उस गिरमाको खाने लगा, तो वह गृहस्थ बोला कि चाहे गिरमा खा लो, चाहे दो पैसेकी घास खा लो। खर्च हम दो ही

से करेंगे ।

अप्पे अप्पाउ भवहतरंगो परिमु णाणगुणालयाणो ।
सो पुण अज्जउ भासे नवाउ अज्जवेण णिम्मलगुणाउ ॥

आर्जवधर्मकी भवतारणता— यह आर्जव धर्म पालनेमें ही अपने आत्माको भव न तराने वाला है । यह आर्जव भी तब ही होता है जब अन्तरंगमें कषाय कम हों । ऐसा कोई जीव न मिलेगा कि जिसके क्रोध तो बिल्कुल न हो और मान हो, या मान बिल्कुल न हो क्रोध हो, या मान हो, माया और लोभ न हो ऐसा नहीं है । सभी जीवोंके ये चारों कषाय रहती हैं । हम उस ६वें गुणस्थानकी बात नहीं कह रहे हैं । हम तो यहांकी बात कह रहे हैं । किसीमें कोई कषाय मुख्य होती है, किसीमें कोई कषाय । नरक गतिमें क्रोध कषाय मुख्य है, तिर्यञ्च गतिमें माया मुख्य है, मनुष्य गतिमें मान कषाय मुख्य है और देव गतिमें लोभ कषाय मुख्य है । मनुष्योंमें लोभकी प्रबलता नहीं होती है, मान कषायकी प्रबलता होती है अभी कोई नाम खुदानेकी बात आये तो ले लो दो हजार, दस हजार, पच्चीस हजार । ना की बात आये तो रणमें प्राण दे दें । अपने प्राण गवां दें । यह नहीं कि मान ही मान है उसके साथ-साथ अन्य कषायें भी चलती हैं । वे अन्य कषायोंसे कषायोंके पोषक बनते हैं । आर्जव धर्ममें उसकी प्रगति हो सकती है जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ भी शांत हो हों । भैया जिनके कषाय शांत है वे भवसे तिर जाते हैं । ऐसा प्रचण्ड जो चैतन्यभाव है व एक आर्जव है । जीव परेशानियोंसे थककर सन्मार्गमें चलनेकी चाह करता है, किन्तु विवे वह है कि किसी बातमें थके बिना ही अपने आप ही वस्तुका सत्यस्वरूप जानकर अपने आ अपने शरणके दर्शन करे ।

परमार्थतः स्वके ही जाननेकी शक्यता—हम जितना भी जानते हैं यह सब अ आपको ही जान रहे हैं । चौकीको हम नहीं जान रहे, पर कहते जरूर हैं कि हम चौकी जानते हैं । हम इन भाइयोंको नहीं जान रहे हैं । हम सदा अपने आपकी ज्ञानभूमिका परिणमन होता है, ज्ञेयाकार परिणति होती है उसको ही जाना करते हैं । जैसे—हम दर्प को देखकर पीछे खड़े हुए बच्चोंकी हरकतोंको बता सकते हैं कि अमुकने हाथ उठाया, अमु पैर चलाया, पर हम एक भी लड़केको नहीं देख रहे हैं । हम दर्पणको ही देख रहे हैं पर पीछे खड़े हुये लड़के दीख रहे हैं । जिसका जैसा परिणमन है उस ही रूपका छायारूप प णमन दिख रहा है । इसी प्रकार हम परमार्थसे अपनेसे बाहर एक वस्तुको भी नहीं जानते पर ये सब वस्तुयें जैसी हैं उस प्रकारके छायारूप जाननरूपसे, ज्ञेयाकार रूपसे परिणमे अपने इस असंख्यातप्रदेशात्मक आत्माको ही जानते हैं और इसको जानकर ही सारा वय वर डालते हैं । यही एक धर्म है कि जो हम अपने सहज स्वरूपको जान जायें । सोचो य

मेरे साथ ये कर्म न होते, शरीर न होता तो मैं किस हालतमें होता ? ऐसा अनुमान करके उस अनुमानमें उतरे हुए परिणमनको ही उपयोगमें लें तो इस उपयोगमें वह सहज चैतन्य-स्वभाव आत्मतत्त्व ज्ञात हो सकता है। ऐसा प्रचंड यह चैतन्यस्वरूप है।

निज प्रभुस्वरूपका तिरस्कार न करनेका संदेश—आर्जव धर्म, जिसके पालनेसे मेरा भला है इस ज्ञायकस्वभावका यदि हम तिरस्कार कर दें, अपनेको मलिन मायाचार परिणाम वाला बनाकर इस अपने प्रभुका तिरस्कार कर दें तो कर दें, क्या इस ज्ञायकस्वरूप प्रभुका तिरस्कार हो जायगा ? इसकी याद बड़े-बड़े योगीजन किया ही करते हैं। यदि मोहियोंने, मायाचार व छलके रोगियोंने इस ज्ञायकस्वरूपका तिरस्कार कर दिया, प्रभुके स्वरूपसे दूर हो गये तो तिरस्कार उस प्रभुका नहीं हुआ, वह तो महान् ही रहेगा किंतु तिरस्कार इन व्यक्तियों का ही होगा। इस जीवका ही होगा संसारभ्रमणरूप अपमान। एक बार राजदरबारमें बहुत दिन हो गये, दो चार कवियोंको राजाने न विशेष आदर किया और न कुछ पारितोषिक दिया। तो कुछ दिन बाद जब राजाने कहा कि तुम भी कुछ सुनावो तो एक कविता सुनाता है—त्वं चेन्नीचजनानुरोधनवशादस्मासु मंदादरः, का नो मानद मानहानिरियता स्यात्किं त्वमेकः प्रभुः। गुञ्जापुञ्जपरम्परापरिचयाद्भिल्लीजनैरुज्झितं मुक्तादामनिधाम धारयति किं कण्ठे कुरङ्गी-दृशाम् ॥ कवि सुना रहा राजाको ही कि हे राजन् ! तुम यदि तुच्छ व्यक्तियोंके अनुरोधवश हम लोगोंमें यदि मंद आदरवाले हो गये तो हे मानके देने वाले राजन्, क्या तुम्हारी प्रवृत्तिसे मेरी हानि हुई ? क्या इस लोकमें केवल तुम ही प्रभु हो ? गुमची होती हैं ना, जिनसे सोना तोला जाता है, उन गुमचियोंके समूहसे जिसका परिचय है ऐसे जो जंगली लोग है उनको यदि गजमुक्ता मिल जाय तो वह उन मोतियोंका भी उपयोग पैरोंके घिसनेके लिये करता हैं। यदि ज्ञान न होनेसे मोतियोंका तिरस्कार उसने किया तो क्या बड़ी-बड़ी रानियोंके गलेमें वह रत्न शोभाको प्राप्त नहीं होता है ? कोई गृहस्थ पुरुष, मायाचारमें बर्तने वाला यदि ज्ञायक स्वरूप प्रभुका तिरस्कार कर दे तो क्या यह नाथ उसके सन्मान कियेसे ही उत्कृष्ट होगा ? अरे बड़े-बड़े योगीजन, विवेकी पुरुष इस ज्ञायकस्वरूप प्रभुका आदर करते ही हैं। परिवारके आदरसे क्या मिलेगा ? सारी जिन्दगी गुजार दिया, बुढ़ापा भी देख लिया, कितना हाथ आया है ? हमारी और आपकी ही बात नहीं, सभीकी बात है। परमेष्ठीका आदर हो और आत्म-स्वरूपका आदर हो तो इस आत्मबलके प्रसादसे इस संसारसमुद्रसे तिर जायेंगे, सदाके लिये संकटोंसे छूट जायेंगे। अपने जीवनमें संकटोंका विस्तार एवं मायाचार नहीं करना है। माया-चार न करो, सरलतासे रहनेपर यदि धनहानि भी होती है तो होने दो। इससे आत्माकी हानि नहीं है, पर कलुषित परिणाम हो जानेसे ही आत्माकी दुर्गति है। इस कारण आर्जव धर्मकी उपासना करो।

अज्जउ परमप्पउ गयसंकप्पउ, चिम्मित्तु सासउ अभयपउ ।
तं णिरु झाइज्जइ संसउ हिज्जइ पाविज्जइ सिवसासयपउ ॥

निरुपाधि सरल अन्तस्तत्त्वकी सेवा करके सत्य सरल बननेका अनुरोध—यह आर्जव धर्म परमात्मस्वरूप, संकल्पविकल्परहित है, चैतन्यस्वरूप है, शाश्वत है, आगमरूप है। हे भव्यजनो ! जो इसका ध्यान करता है और निःशंक होकर पालन करता है उसे नियमसे मोक्ष पदकी प्राप्ति होगी। ऐसा मनोबल बढ़े, ऐसा आत्मबल बढ़े कि जो मन है वही कायसे किया जाय, वही वचनसे बोला जाय। अपने ही परिणाम अपनी शरण हैं, दूसरोंसे पूरा नहीं पड़ सकता है। लोग कहते हैं कि आजकल कपट बिना गुजारा नहीं होता, ऐसा सोचना भ्रम है। अब भी कितने ही ऐसे-ऐसे व्यापारी देखे गये हैं जो निश्चय कर लेते हैं कि हमको एक रुपये पर केवल इतनासा ही नफा लेना है। वह चाहे आपसे झूठ बोलते रहें, फिर भी यदि कोई व्यक्ति उस सीमासे अधिक देवे तो उसे वे लौटा देते हैं। आनन्द तो इसमें है जो थोड़ा भी असत्य आदिका बोझ भी न लादा जाय। अन्तरङ्गकी बात जो है वह साफ तौरपर बयान कर देनी चाहिये ताकि सब लोग तुम्हारा विश्वास करें। आत्माके स्वभावको देखो यह आत्म अकेला ही जायेगा। कोई कपट वपट हमारा साथ नहीं देगा। कपटका त्याग करो, आर्जव धर्मकी भावना करो, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। निरन्तर रागद्वेषादिक औपाधिक कुटिल भावोंसे रहित सरल ज्ञानमय स्वभावके दर्शन करते रहो। इसीमें कल्याण है।

विकासका स्रोत सरलता और कषायोंसे दूर रहना—लोग अपना विकास करनेके लिए अनेक कूट नीतियाँ अपनाते हैं। मायाचार—वचन कुछ, करना कुछ, अनेक दंदफंद बना बनाकर चाहते यह हैं कि मेरा विकास हो लोकमें, मेरा सन्मान हो, प्रतिष्ठा हो, लेकिन य तो सोचिये कि अन्याय, कूटनीति, मिथ्याव्यवहार करके लोगोंके दिलमें क्या किसीने अप घर बना पाया ? और अपने आपके आत्मामें किसने महत्त्व पा लिया ? विकासका यदि स्रो है कुछ तो यह है सरलता। सरलताका नाम है आर्जव। आर्जव शब्द संस्कृतका शब्द है, य ऋजु शब्दसे बना। सरलके भावको आर्जव कहते हैं। अब आप सरलता और माया—इन दोन में अन्तर देख लीजिए। माया है कषाय और मायाका जो उल्टा है उसका नाम है सरलता देखो कषायें चार होती हैं ना ? क्रोध, मान, माया, लोभ। रोष नाम क्रोधका है। यह रोष शब्द ही यह बतलाता है कि इसके उल्टे बनो तो तुम्हारा भला होगा। रोषका उल्टा है सरो। काम सरना, काम बनना, हित होना, इसीको कहते हैं अपना काम सरना। रोषके उल्टा चलो तो उसमें आपको विकास मिलेगा। दूसरी कषाय है मान। मान शब्द ही कहता है कि यदि किसीको अपनी उन्नति करनी है, अपनी भलाई करनी है तो मुझसे उल्टे चलो, मानसे उल्टा नमा—झुकना। मान शब्द लिखकर इसका जरा उल्टा करना—नमा। नमाका अर्थ है

नम्रता होना। इससे फायदा पावोगे। हमारे शब्दके अनुसार चलोगे तो फायदा न पावोगे। ये कषायें जग रही हैं तो इनसे कुछ लाभ न मिलेगा। तीसरी कषाय है माया। उसका उल्टा है यामा। अर्थात् जो यह है सो मुझे न चाहिए। जो यह माया है, जगत है, मायारूप है यह मुझे न चाहिए। मत हो मेरा, ऐसा कोई पौरुष करे तो भला पायगा, और जरा लोभका उल्टा करो—भलो, अरे इस लोभसे उल्टे चलोगे तो भला हो जायगा। जो ये कषायें कहती हैं कि मेरी शकल सूरतपर आकर्षित मत हो, हम बड़े खतरनाक हैं, हमसे उल्टे तुम चलोगे तो भला पावोगे।

मायाचार और सरलताके हानि लाभका दिग्दर्शन—अब माया और सरलताका अन्तर देखिये—मायामें कितना कष्ट है, जो लोग मायाचारी हैं, चित्तमें कितनी ही उधेड़बुन बनाये रहते हैं, अब क्या करना, कैसी बात करना, जाहिर न होने देना। जो मायाचार करता है उसका हृदय भली प्रकार क्यों नहीं बनता? उसे चिन्ता रहती है, जिसके प्रति मायाचार किया है उसे यदि पता पड़ जाय या जिन दो के बीचमें इतनी दरार डाल दी है, माया की है उसे यदि सही बातका पता पड़ जाय तो उसका क्या हाल होगा? मायाचारी पुरुष चैनमें नहीं रहता। लोग कहते हैं कि जो सरल होता है वह ठगा जाता है, पर भाई यह तो बतलावो कि सरल पुरुष ठगा जाता है या मायाचारी पुरुष स्वयं ठगा जाता है? सरल पुरुषके तो मान लो कुछ धन कम हो जायगा, पर जिसने ठगा वह तो बड़ा खोटा कर्मबन्ध करता है, संक्लेश करता है, और फिर असार चीजोंमें उसने सिर रगड़ा। कितना नुक्सान किया? तो सरल पुरुष ठगाया नहीं जाता, सरल व्यक्तिमें देखो तो उसे इस लोकमें भी विभूतिका सम्बंध रहता है और परलोकमें भी। धनकी कमाई कोई हाथ पैरसे नहीं करता। तो सरलतासे चलनेमें लाभ है और मायाचारीसे चलनेमें बड़ा कष्ट है। एक बार सोच लो कि लोग मायाचार करते क्यों हैं? असार बातोंको पानेके लिए, असारमें अपना माथा रगड़नेके लिए मायाचारी की जाती है। धन वैभव आदिक सब साररहीन हैं। आत्माको देखो—जो ज्ञानप्रकाशमय है उस आत्माका भला किसी परवस्तुसे कैसे हो सकता है? त्रिकाल असम्भव है कि मेरे आत्माकी शान्ति, मेरे आत्माकी स्वच्छता किसी बाह्य प्रसंगसे हो जाय। तो असारको पानेके लिए मायाचार किया और सारको बरबाद करनेके लिए मायाचार किया। सार मेरेमें क्या है? मेरे आत्मामें सार है एक वह शुद्ध ज्ञानज्योतिस्वरूप जिसका आलम्बन हो तो सारे संकट दूर हो जाते हैं। तो सारको बरबाद किया गया, मायाचार द्वारा। तो मायाचारसे लाभ क्या है? सरलतामें देखो तो तत्काल भी लाभ है और आगे भी लाभ है।

सरल पुरुषसे वैरकी अनिष्पत्ति—सरल पुरुषके अधिक दुश्मन नहीं होते। आपको उदाहरणके लिए अपने इस नगरमें ही ऐसे लोग मिल जायेंगे। जो वास्तवमें सरल पुरुष है,

जिसके चित्तमें मायाचार नहीं है उसके दुश्मन, उसके विरोधी नहीं मिलते। सरलतामें बड़े गुण हैं। एक घटना है दिल्लीकी. अबसे करीब १०१ वर्ष पहिले दिल्लीमें एक गदर हो गया था तो वहाँ लुटेरे लोग धन लूट रहे थे। वहाँ एक सेठने क्या किया कि अपने घरका सारा धन (हीरा, जवाहरात, सोना, चाँदी आदि) आँगनमें निकालकर रख दिए। अब आये ५-६ लुटेरे तो जैसे ही घरमें घुसे तो देखा कि सारा का सारा धन आँगनमें पड़ा हुआ है। सेठने उन आने वाले लुटेरोंका स्वागत किया। वे लुटेरे पूछ बैठे कि भाई तुमने अपना सारा धन आंगन में क्यों निकालकर रख दिया? तो सेठ बोला—भाई मैंने सोचा था कि लोग लूटने आयेंगे तो उन्हें धन निकालनेमें अधिक समय तथा श्रम न लगाना पड़े, यही सोचकर हमने सारा धन पहिलेसे ही निकालकर आंगनमें रख दिया। वे लुटेरे उस सेठकी सरलतापर बहुत प्रसन्न हुए और धन लूटना तो दूर रहा, उल्टा अपने दो-तीन आदमियोंको उस धनकी रक्षा करनेके लिए खड़े कर दिये। सारा धन बच गया। तो देखिये ऐसा होता है सरलताका परिणाम। जो मायाचार करता है उसे तो अनेक बातें झूठ सोचनी पड़ती हैं और उन्हें सोचनेमें उसे भीतरमें कितना कष्ट होता है? तो यह कष्ट मायाचारके वश है, सरलताके वश नहीं है।

मायाप्रपञ्चदोषसे हानियोंका लाभ—ज्ञानार्णवमें बताया है "इहाकीर्ति समादत्ते, मृतो यात्येव दुर्गतिम्। मायाप्रपञ्चदोषेण जनोऽयं जिह्मिताशयः।" जिसका कुटिल अभिप्राय है, हृदय खोटा है उसकी इस लोकमें भी बदनामी है, अपयश है, और मरकर दुर्गतिमें भी जायगा। तो माया कषायसे इस जीवका अनर्थ ही होता है और देखो जगतमें जो कुछ वैभव सम्पदा है इसके लिए ही तो लोग मायाचार करते हैं, तब ही तो देखो इस धन सम्पदाका ही नाम माया रख दिया है। उसके तो बड़ी माया है। अरे माया नाम तो कपटका है। धन वैभवका ही नाम कपट रख दिया। जैसे किसी केला बेचने वालेको देखकर लोग कहते कि ऐ केला यहाँ आवो, तो क्या वह केले वाला ऐसा कहने लगता कि ऐ केले तू वहाँ जा? अरे वह तो स्वयं ही आ जाता है। वह उपचार कथन कहलाता है। इस धन वैभवका नाम लोगोंने माया रखा है। इस मायामें आप सार कुछ न पायेंगे। बृहदारण्यक उपनिषदकी भूमिकामें यह लिखा है कि जिस समय याज्ञवल्क्य विरक्त हुआ और अपनी सारी सम्पदा पत्नीको देने लगा तो पत्नी पूछती है कि जो कुछ दे रहे हो सम्पदा इससे क्या मैं अमर हो जाऊँगा? तो उत्तर दिया कि नहीं। ....तो मैं जिस तरह अमर हो सकूँ मुझे तो वह चीज दीजिए। इस सम्पदासे मुझे क्या प्रयोजन? तब फिर उसे अध्यात्मका उपदेश दिया गया। अध्यात्मविद्याका कथन किया गया। तो यह संपदा पाकर मायाचार करके क्या कोई अमर हो जायगा? किसका भला हो जायगा? देखो—जगतमें हम आप सब आत्मा केवल अकेले हैं, अपने ही साथी हैं, अपने ही सहयोगी। यहाँ किसीके कोई सहयोगी बनते हैं तो ये सही आचरणकी बातें हैं, सभी संतोंने उनका

आदर किया है। देखो जो कोई सीधे मार्गपर चला तो वह अपने लिए ही चला, और जो कोई भटक गया तो उस भटकने वालेने अपना ही बुरा किया। उसका दुःख बंटाने कोई दूसरा न आयगा सोच तो सही। जो हम करेंगे उसका बवाल बनेगा, विडम्बना बनेगी और वह मुझे ही भटकनी पड़ेगी।

मायावियोंमें धर्मप्रवेशकी अपात्रता—जो मायाचारसे भरा पूरा हृदय होगा उसमें धर्मकी बात नहीं समा सकती। जैसे देखा होगा—काँचके दाने होते हैं ना, जिनसे माला बनती है, तो अगर किसी दानेमें टेढ़ा छेद हो गया हो तो आप उसमें सूत पिरोयेंगे तो पिरेगा नहीं, क्यों नहीं पिरता कि उसमें टेढ़ा छेद है। सूत सीधा छेद माँगता है, तो ऐसे ही जिसका हृदय टेढ़ा है उसमें धर्मका सूत नहीं पिरोया जा सकता क्योंकि धर्म सीधे हृदयको चाहता है। जो कुटिल है, मायाचारमें बसा है उसमें धर्म नहीं टिक सकता। धर्म बिना मनुष्यका जीवन क्या जीवन ? सब काम होते रहें, एक धर्म न रहे तो फिर मनुष्य होनेसे क्या लाभ है सो तो बताओ—धर्मेण हीनः पशुभि समानः, धर्महीन मानव पशुओंके समान है, और सब बातोंमें तो ये पशु पक्षी आदि तिर्यञ्च मनुष्योंसे बढ़कर हैं, तब ही तो मनुष्योंकी शोभाके लिए पशुओं की उपमा दी जाती है। अगर किसी व्यक्तिकी कुछ विशेषताओंका वर्णन करना है तो कवि जन उसकी तुलना ऐसे ही तो करते है ना, कि इसकी नाक तोतेकी तरह है, इसकी कमर शेर की तरह है, इसकी चाल हंसकी तरह है, अथवा इसकी चाल हाथीकी तरह है, इसका कंठ कोयलकी तरह है,"" तो अब देखिये—मनुष्योंसे अच्छे हो गए ना ये सब पशु पक्षी वगैरह तिर्यञ्च, पर इन मनुष्योंमें एक इस धर्मपालनकी ही विशेषता है जिससे मनुष्य पशुसे अच्छा कहलाता है, जिसके हृदयमें कुटिलता है, मायाचार है उसके हृदयमें धर्म टिक नहीं सकता। लोग मायाचार करते हुएमें सोचते हैं कि मेरी बातको कौन जानता है, छिपी रहेगी, क्या हर्ज है, लाभ तो मिल जायगा। काहेका लाभ ? इन असार वैषयिक सुख साधनोंका। मगर यह मायाचारी छिप नहीं सकती। मायाचारी पुरुष, सो अपने मुखसे ही अपनी माया उगल देता है। वह जरा-जरासी बातोंमें घबड़ाता है जिससे मायाचारी की हो, वे दोनों अगर अपनी जगह खड़े हों तो वे घबड़ाते हैं। अरे रे रे अब तो आफत आ गई। तो इस माया कषायसे किसे शान्ति मिल सकेगी ?

अनेक प्रयासोसे छुपाया जानेपर भी मायाप्रपञ्चकी छुप सकनेकी अशक्यता—ज्ञानार्णव ग्रन्थमें लिखा है कि छाद्यमानमपि प्रायः कुकर्म स्फुटति स्वयम्। अलं मायाप्रपञ्चेन लोकद्वयविरोधिना।" अरे कितना ही कपटको छिपाओ, पर छिपेगा नहीं। प्रभु तो उस कपट की बातको जान ही रहा है। कौनसा प्रभु ? सर्वज्ञ प्रभु व खुदका भी प्रभु। आखिर जो यहाँ कपट कर रहा वह भी तो प्रभु है। आज यद्यपि अज्ञानमें यह हालत है, मगर प्रभुता तो उसमें

भी समायी है, प्रभु तो घट-घटमें विराजमान है। आत्मप्रभु तो जान ही रहा है। एक गुरुजी ने दो-तीन शिष्योंकी परीक्षा करना चाहा कि देखें तो सही कि कौन शिष्य अधिक बुद्धिमान है ? जो शिष्य बुद्धिमान होगा उसीको अपना उत्तराधिकारी बनाया जायगा। तो कोई एक चीज दे दिया, मानो एक (कागजकी) चिड़िया दे दिया और कहा कि जावो इसे वहाँ जाकर मार दो जहाँ कोई न देखे। एक शिष्यने तो जंगलमें जाकर कुकर्म कर दिया। दूसरा शिष्य जहाँ जाये वहींसे वापस आये। आखिर गुरु महाराजके पास आया और उस चिड़ियाको वैसा ही सौंप दिया। गुरुने पूछा, तुमने हुक्म नहीं माना।···महाराज मुझे कोई जगह ऐसी नहीं मिली जहाँ कोई देखता न हो। आपका हुक्म तो मान ही लिया। बोले—अरे ऐसे तो अनेक स्थान हैं। शिष्य बोला—महाराज मैंने बहुत जगह देखा, पर सर्वत्र मुझे प्रभु ही दिखे। मेरा जो प्रभु है वह तो देख ही रहा था। कहाँ करोगे मायाचारी, कहाँ छिपाओगे, मायाचारी छिपाये छिप नहीं सकती। पर ऐसी सरलता कैसे आयी शिष्यके ? उसे आत्मज्ञान था। देखो बात कोई कहींकी कहे, लेकिन अपना हित करना है तो बात आयगी आत्मासे। अपना आत्मसहारा लिए बिना, परिज्ञान किए बिना कोई गुण वास्तवमें प्रकट नहीं होते। भागवतमें २४ अवतारोंका वर्णन किया है। जिसमें एक ऋषभदेवको भी अवतार बताया है। ऋषभ अवतारको ज्ञान वैराग्यकी मूर्ति कहा है, और बताया है कि ये नाभिके पुत्र थे, इनके १०० लड़के थे, उनका बड़ा लड़का भरत था और भरतके ही नामपर देशका नाम भारतवर्ष पड़ा यह प्रकरण भागवतके ५वें स्कंधके ५वें अध्यायका है। तो ऋषभदेवने १०० पुत्रोंको पहिले उपदेश दिया और उपदेश देकर उनमें ज्येष्ठ पुत्र भरतको राज्य सौंपकर दिगम्बर दीक्षा धारण की। उनमें दिगम्बरत्वकी महिमा बतायी कि आकाश ही जिसका अम्बर है, और उनकी मुक्तसंगता बतायी, जहाँ मुक्तसंगता है वहाँ ज्ञान वैराग्य है, जहाँ बाह्य परिग्रहका परित्याग है व माया का अभाव है।

मायाक्रियाओंसे पराभव और देहबन्धनदार्ढ्य—ऋषभदेवने जो उपदेश किया अ[illegible] १०० पुत्रोंको उस उपदेशके प्रसंगमें एक जगह यह बताया है, सुनिये यह छंद ५वें स्कंध[illegible] [illegible] ५वां छन्द है भागवतमें "पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्व[illegible] [illegible] क्रियाः ... देहः शरीरबन्धः ॥" जब तक आत्मतत्त्वको नहीं जा[illegible] [illegible] उत्पन्न हुआ पराभव सर्वत्र होगा। मायामें बड़ा अज्ञान बसा हु[illegible] [illegible]। जैसे पैरमें काँटा लग जाय तो वह शल्यकी तरह चुभता है, [illegible] [illegible] कोई अपनी दाग चुभ जाय तो वह कितनी चुभती है, तो [illegible] [illegible] उसको निरन्तर शल्य रहती है। वहाँ अज्ञान ब[illegible] [illegible] पराभव होता है और इस मायाच[illegible]

कषायके कारण जितनी और क्रियायें होती हैं, न रहे माया तो वह भी मायाके पैंतरेसे चली ई बात है। जब तक ये मन, वचन, कायके कर्म निरन्तर तितर बितर चलते उठते रहते हैं ो तो उससे क्या होता है कि शरीरका संबन्ध होता है, नाना जन्म मरण रहते हैं, तो भाई ह अपनी दयाकी बात कही जा रही है। अनेक बातें करते आये, अनेक बार समागम हुए, गर इन धर्म समागमोंमें एक ही बार कुछ ऐसा निर्णय करके रह जायें मनुष्य कि मुझे तो छ न कुछ आत्मामें उतारना है, सीखना है और भला बतलाओ इसमें बढ़कर विपादकी बात ैर क्या होगी कि जो बात अपने आनन्दके लिए है उसको तो हटा दें और जो अपने दुःखके ए है उससे ममता करें तो इससे और विपादकी बात क्या होगी? सबको अनुभव है कि तना यह मायाका प्रसंग है यह सब दुःखके लिए है, अगर चित्त राजी होता है उस मायाके संगमें तो यह विपादकी बात है। ज्ञान और वैराग्य आत्माकी भलाईकी चीज है। तो आत्म- न करें, आत्माका बोध बनायें, यह सरलता अपने आप प्रकट हो जायगी, क्योंकि आत्मतत्त्व यं सुख है उसमें वक्रता नहीं है। सीधा सादा स्वच्छ ज्ञान प्रतिभास मात्र है, उसमें वक्रता ा काम नहीं। वक्रता तो बनाई गई चीज है। इस आत्माका परिचय हो तो सरलता आ यगी और नहीं परिचय होता तो क्या स्थिति होगी? जिन्हें आत्माका बोध नहीं है और नात्माको आत्मा मान रहे हैं, जिन्हें देहाध्यवसाय हो रहे हैं उनके मनमें कुछ और है, वचन कुछ और है, करते कुछ और हैं, यह नीति आत्मशक्तिकी नहीं है, और आत्मतत्त्वका ज्ञान से है वह जो मनमें है सो वचनसे कहता है और जो वचनसे कहता है वह करता भी है। . यदि वैसा करनेका पौरुष नहीं है तो भी वह मायाचार नहीं कहलाता। तो आत्मज्ञान होने : सर्व निर्दोष हो गया।

मायाप्रपञ्चसे हटकर ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वमें मग्न होनेका संदेश—समयसारमें बताया कि—"एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहु णिच्चमेदम्हि। एदेण होहु तित्तो होहिदि तुह उत्तमं सखं।" अर्थात् जितना ही ज्ञानमात्र प्रकाश है यह ही दर्शन है, इसीमें तृप्त हो, यह ज्ञानमात्र काश है, यह ही अनुभव कर, यह ही सारभूत चीज है और इसीमें तृप्त होओ। जो अपने स्व- को निरख लेता है और अपने ज्ञानस्वरूपमें तृप्त रहता है उसके आनन्द स्वयमेव है। जाग- शी टीकामें एक कथानक दिया है कि किसी एक नई बहूके बच्चा होना था तो उसने अपनी ससे कहा कि सासू जी! जब मेरे बच्चा पैदा हो तो मुझे जगा देना, कहीं ऐसा न हो कि : सोते हुएमें ही बच्चा पैदा हो जाय? तो सासूने कहा—अरी बहू, तू इसकी चिन्ता त कर। जब बच्चा पैदा होगा तो तुझे जगाता हुआ ही पैदा होगा। इस दृष्टान्तसे इस बात र दृष्टि देना है कि आत्मामें जब यह ज्ञानपुत्र पैदा होता है तब यह आत्मामें आनन्द उत्पन्न राता हुआ ही उत्पन्न होता है। आपको ब्रह्मज्ञान हो तो फिर किसीसे पूछनेकी जरूरत नहीं

है कि मेरेको आनन्द आया कि नहीं आया । आनन्दके अनुभवके साथ ही बताना अनुभव होता है । ज्ञानानुभव कहो, स्वानुभव कहो एक ही बात है । हम आप मनुष्य हुए हैं, श्रेष्ठ मन पाया है तो आनन्द लीजिए उस तत्त्वका, आत्मस्वरूपका । उस ज्ञानानुभवसे अपने आपको तृप्त करिये—जो मायाचारीका परिणाम होता है वह होता है पर्यायबुद्धिसे याने देहको जब माना कि यह मैं हूं तो इस देहके पोषणकी जो स्थिति है वह भी उतनी होनी चाहिए। तो उन साधनोंके लिए मायाचार किया तो जो मायाचारका कष्ट उठाना पड़ा वह देहाध्यवसानका परिणाम है ।

निज ब्रह्मत्वके बोधमें सर्व कौटिल्योंका परिहार—यदि ब्रह्मस्वरूपका बोध हो, अहो, सबमें वही ज्ञानस्वरूप है एक समान, फिर किसको क्या छलना ? किसका विषय साधन जोड़ना और विषय साधन लेकर मैं कौनसा महत्त्व पा लूँगा ? ज्ञानी पुरुष वह है जो सर्व जीवोंमें समान रूपसे आत्मतत्त्वको निरखता है, गीताके १३वें अध्यायके २७वें श्लोकमें भी बताना पड़ा है कि "समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥" जो समस्त प्राणियोंमें एक समान अन्तःप्रकाशमान परमेश्वरको देखता है जो विनष्ट होते हुओंमें अविनष्ट तत्त्वको देखता है वही सर्व प्राणियोंमें रहने वाले परमेश्वरको देखता है। देखिये—यहाँ दो-तीन मिनटके लिए एक अध्यात्मकी बात कह रहा हूं, सरल-सरल बोलनेमें मैं थक जाता हूं, तो दो-तीन मिनट तक थोड़ा धैर्य रखना, अध्यात्मकी बात सुननेमें ऊब न जाना । देखो जो ये ज्ञान बनते हैं ना कि अभी कपड़ेको जाना, अब भीतको जाना, अब चौकी को जाना, ऐसे ज्ञान जो सज रहे, बताइये—ये विनाशीक हैं कि अविनाशी ? ये सब विनश्वर चीजें हैं । अब हम आपसे एक बात पूछते हैं कि बताओ आमका फल जो रंग बदलता है, कभी नीला, कभी हरा, कभी लाल, कभी पीला आदिक तो यह सब बदल किसकी हुई ? तो आमकी ही हुई ना, अथवा जैसे अंगुली एक है तो उसमें सीधापन, टेढ़ापन, गोलपन किसका हुआ ? तो अंगुलीका ही हुआ ना ? तो आपमें जिसकी बदल हुई है उसे कहते हैं रूपसामान्य। उसका नाम है रूपशक्ति । कोई कहे कि जरा दिखा तो दो, तो तो क्या वह रूपशक्ति दिखा देनेकी चीज है ? अरे वह तो ज्ञानगम्य चीज है । इसी तरह जो हमारे ज्ञान बदलते रहते हैं, अभी कुछ जाना, अभी कुछ जाना तो कोई एक चीज तो है जिसकी बदल हुआ करती है, वह चीज क्या है ? वह है ज्ञानस्वरूप । वही है ब्रह्म, वही है परमेश्वर, वही है प्रतिभासमात्र । जरा उसे दिखा दो । तो क्या उसे कोई दिखा सकता ? अरे वह तो ज्ञानगम्य है । हाँ सरलता के द्वारा कोई उसे पा ले तो वह अमर हो जायगा, ऐसी अविनष्ट चीजोंमें जो परमात्माको देखता है वह देखता है परमात्माको । तो भाई सरल बनो और ज्ञानके लिए उत्साह जगाओ । माया-से मुख मोड़ो । मुझे तो ज्ञानका पोषण करना है । ऐसा संकल्प बनाओ, यह जिन्दगी तो

गुजर ही रही है, अन्तमें क्या निकल होना पड़ेगा, हाय मैंने इतना कमाया सब छूटा जा रहा है। अरे उसको कोई जानने वाला न होगा और फल क्या होगा, जैसा किया वैसा भोगना पड़ेगा। रहना यहां कुछ नहीं है, चाहे जितना ही मायाचार कर लिया जाय, मायाचार करके चाहे जितना जो जोड़ लिया जाय, पर रहेगा यहां किसीका कुछ नहीं। सब छूट जायगा, हाथ लगेगा सिर्फ पापकर्मोंका बन्ध।

उत्तम शौच धर्म

सच्चुजि धम्मंगो तं जि अणंगो भिण्णंगो उवओगमई।
जरमरणविणासणु तिजयपयासणु झाइज्जइ अहिणिसुजि थुई॥

शौच धर्मके अभावमें जीवकी अशुचिता—क्षमा अङ्ग, मार्दव अङ्ग और आर्जव अङ्गका वर्णन हो चुका है। आज दशलक्षण पर्वका चौथा दिन है, शौचका क्रम है। कारण यह है कि कषाय ४ होते हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ और सबसे पहिले कषायके अभावकी बात कही गई है। क्रोधके अभावसे क्षमा होती है, मानके अभावसे मार्दव होता है, मायाके अभावसे आर्जव होता है और लोभके अभावसे शौच होता है। यह शौच धर्म, धर्मका एक अङ्ग है। जहां पवित्रता होती है उसे शौच धर्म कहते हैं। शुचिके परिणामका नाम शौच है। पवित्रता वहां ही आ सकती है जिसको किसी भी अनात्मतत्त्वमें मोह न हो। भिन्न पदार्थोंमें मोह होनेको गंदगी कहा है, लोभको गंदगी कहा है? क्रोध अवश्य कषाय है, पर वह गंदगी नहीं। घमण्ड भी कषाय है, पर उसे अशुचि शब्दसे नहीं कहा और मायाचार तो महाबेवकूफी है, उसे भी अशुचि नहीं कहा और लोभको अशुचि शब्दसे कहा। जिसके हृदयमें लोभ बसा है वह अपवित्र है, गंदा है। यह जीव संसारमें जन्म मरण लेता रहता है। कारण यह है कि परवस्तुवोंमें आत्मबुद्धि लग रही है। शरीर मैं हूं, पर मेरा है, वैभव मेरा है। दो चार जीवोंको मान लिया कि ये मेरे हैं। यह हृदयकी अपवित्रता है। जब लोभ सताता है तब जीव नीति अनीति, न्याय अन्याय, भक्ष्य अभक्ष्य, विवेक अविवेक कुछ भी नहीं गिनता।

लोभकी पापजनकता—एक बार एक पंडित जी काशीसे पढ़कर आये। नई उम्र थी।

लिये हुये हैं। किसी पदार्थसे किसी अन्य पदार्थका कोई सम्बंध नहीं है। फिर क्यों इतना लालच? क्यों इतनी आसक्ति? वहाँ ममताका प्रवेश ही नहीं होता। यह शौचधर्म एक अभंग सबसे पृथक् उपयोगमय है। यह अगर मलयुक्तका नाश करने वाला है। निजगुणधामगत, तीनों लोकमें आनन्द करने वाली है, सो शौचधर्मके अनुकूल अपनी प्रवृत्ति बनाओ। भैया! लोकमें किसी दूसरी वस्तुका समागम हो तो उस वस्तुको अपवित्र कहते हैं और उस वस्तुमें से बाह्य वस्तुका समागम निवारण किया जाये तो उसको पवित्र कहते हैं। विजातीय वस्तुके मेलसे अपवित्रता आ जाती है और उसके हट जानेसे वस्तु पवित्र हो जाती है। इसी तरह यह आत्मा द्रव्यकर्म और नोकर्मका संयोग होनेके कारण जो यह उसकी पर अवस्था है अर्थात् उस द्रव्यकर्मके उदयका निमित्त पाकर जो आत्मामें राग, द्वेष आदि विभाव पैदा होते हैं, उनसे आत्मामें मलीनता होती है। उन विभावोंसे हटकर आत्मा विशुद्ध ज्ञानमात्र हो जाये अर्थात् अपने स्वभावमें आ जाये उसको कहते हैं पवित्रता। जब तक आत्माके साथ विभाव-भाव लगे रहते हैं अर्थात् आत्मा अपवित्र रहती है तब तक आत्मा कर्मोंसे बद्ध होनेके कारण संसारचक्रमें घूम घूमकर महान् क्लेशित होता रहता है। आत्माकी शान्ति तो उसकी पवित्रतामें है, किन्तु कितने ही आदमी इस रहस्यको न जानकर केवल शरीरकी पवित्रताको ही धर्म कहते हैं।

आत्माकी सम्यक्त्वसे पवित्रता—अच्छा भाई इस शरीरको ही देखो, कितना अपवित्र है, खून, पीप, राध आदिसे भरा पड़ा है। नव द्वारोंसे सदा मल भरता रहता है। इसके अतिरिक्त जितने भी रोम हैं सबसे पसीना बहता रहता है। बहुत ज्यादा मल मलकर नहाने पर भी यह पवित्र नहीं होता और मान भी लिया जाये कि साबुन आदिके प्रयोगसे क्षणभरके लिये शरीर भी पवित्र हो जाये परन्तु शरीरके साफ होनेसे आत्माकी पवित्रता नहीं आती, मल के घड़े, घड़ेको ऊपरसे शुद्ध करनेसे जैसे वह घड़ा शुद्ध नहीं होता, उसके अन्दरकी मलिनता तो उसमें रहती ही है, इसी प्रकार शरीर पवित्र करनेसे आत्मामें पवित्रता नहीं आती। जैसे मैले कपड़ेपर साबुन लगानेसे कपड़ेका मैल हट जाता है और कपड़ा साफ हो जाता है, इसी प्रकार आत्मामें जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूपी मैल विद्यमान है उसको सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान, चारित्रसे हटानेपर आत्मा पवित्र हो जाता है। दर्शन, ज्ञान, चारित्रका जहाँ एकत्व है; ऐसे चैतन्यभावकी आराधना ही कर्ममलका हटाना है; ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक भाव है। वह एक ऐसी बुहारी है कि यह आत्मा बुहारकर साफ सुथरा कर देती है; राग, द्वेष आत्मासे निकल जाते हैं, आत्मा वीतराग हो जाता है और जैसे ही वीतरागता हुई वहीं आत्मामें पवित्रता आई और वहीं धर्म हुआ। शरीरके साफ करनेसे आत्माकी पवित्रता अपवित्रताका प्रश्न ही नहीं उठता। शरीर तो आत्माके स्वरूपसे पृथक् है, उसपर विचार करना व्यर्थ है। आत्मा तो सम्यक्दर्शनसे ही पवित्र हो सकती है। उत्तम शौच धर्म यह बतलाता है कि बाह्य वस्तुओंमें

समझते हैं उस लाशको तो माता, पिता, भाई, बन्धु, सगे सम्बन्धी, पड़ोसी, ये जितने भी हैं, एक न एक दिन तुरन्त उठाकर फूँकेंगे। फूँको उसे, वह मैं नहीं हूं, सबसे भिन्न ज्ञायकभाव हूं, फिर मैं क्यों किसीसे प्रीति करूँ, क्यों उनके लिये न्याय अन्यायसे धनोपार्जन करके पापकी पोट अपने सिरपर धरूं, क्यों उनमें ममत्वबुद्धि करके अपनेको नरकनिगोदका पात्र बनाऊं? सब ओरसे अपनेको हटाओ, एक ज्ञानस्वभावको देखो। इस जगत्के बन्धनोंका त्याग करनेपर उत्तम शौचधर्म प्रगट होगा। बाह्यकी प्रवृत्तिसे आत्मामें धर्मका विकास नहीं होता। आत्माकी ज्ञानपरिणतिसे ही आत्मामें धर्मका विकास होता है। परपदार्थसे ही तो मुझे सुख मिलता है, ये स्त्री-पुत्र मुझे सुखी करते हैं, धन मेरे सुखकी वृद्धि करता है यह मानना गलत है। बाह्यपदार्थ हमारे कार्योंके निमित्त अवश्य रहते हैं, परन्तु बाह्यकी प्रवृत्तिसे वह काम नहीं होता। वह तो स्वयंके उपादानसे ही होता है। शौचधर्म वहाँ ही प्रगट होता है जहाँ बाह्यसे दूर केवल आत्माके स्वरूपका लक्ष्य होता है।

शाश्वत अन्तस्तत्त्वकी दृष्टिसे उत्तम शौच धर्मका विकास—यह शौच धर्म धर्मोंका एक अङ्ग है। ये दमके दस धर्म ऐसे हैं कि एक धर्मका पूरा पालन होवे तो उसमें ९ धर्मों का पालना स्वयमेव गर्भित है। जिसने परवस्तुमें अपने आपकी बुद्धि नहीं की, शुद्ध दृष्टापन ही तो मेरा स्वभाव है, यही तीनों काल तक मेरा स्वरूप रहेगा, मेरे कहाँ क्रोध होगा, मान होगा, कषाय होगा, अहंकार होगा, ऐसा सोचनेसे उसके सारे धर्म अपने आप आत्मामें गर्भित हो जाते हैं। यह शौच धर्म शरीरसे भिन्न है। यह आत्माका स्वभाव है। शौचधर्मको शरीरका धर्म समझना मूर्खता है। अंतरंगमें आत्माका निर्ममत्व परिणाम ही आत्माको शुद्ध करता है। परपदार्थ क्षणिक हैं अपने आप चले जायेंगे; आप आयेंगे। हमसे भिन्न हैं, हमारे नहीं हैं यहाँ तक कि शरीरको भी तो कह दिया कि मेरा शरीर भी भिन्न है, तो मैं तो कोई वस्तु ही निराला हूं। इस 'मैं' का स्वरूप इन परपदार्थोंसे बिल्कुल ही विपरीत है। बस इतना ही तो धोखा है कि हमने उनको अपना मान रखा है। इतनीसी बात मान लो कि कोई पदार्थ मेरे नहीं हैं (और वास्तवमें हैं भी नहीं) तो सब सुख तुम्हारे पास आ जायेगा। परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। आत्माका पवित्र भाव जो मेरा है वह ही पवित्र शौचधर्मके उदयमें सहायक होगा। आत्माके स्वभावकी दृष्टि रखकर ही अशुद्ध अवस्थामें भी यही विचार रखना कि यह आत्मा त्रैकालिक ज्ञानस्वभाव वाला है। यह दृष्टि ही शौच धर्मका विकास करने वाली है, यह जगतमें अपने आपके प्रकाशका विस्तार करने वाली है।

अन्यायार्जित धनके सदुपयोगका अभाव—भैया! यह केवल भ्रम है कि पैसा कमाते रहेंगे तो सुरक्षित रहेंगे। धन कमानेसे कोई सुरक्षित नहीं रहता है। अगर पुण्य है तो सुरक्षित रहता है। अगर पापका उदय आये तो धन यों ही चला जाता है। अनीतिके द्वारा कमाया

मन जितना चाहता होगा उतना ही हमारा मन चाहता होगा । तो जिसका मन शुद्ध है उसके ऐसी प्रवृत्ति होगी कि उसके व्यवहारसे दूसरोंका भी मन शुद्ध हो जाता है । इस संसारमें रुलते-रुलते अनन्तकाल व्यतीत हो गया । क्या किया अब तक ? अपवित्रता ही, विषय कषाय ही । परिणामी हुई यह अपवित्रता है । इसी अशुचिमें फंसे हुए, इस संसारमें रुलते चले आये हैं । अरे ऐसा साहस करके बैठ जावो कि उन सर्व परद्रव्योंमें, धन, वैभव घर आदिमें कुछ भी होता हो, कैसी भी अवस्था प्राप्त हो, धर्म स्वभावकी ही आराधनामें रहो । मेरे लिए सब जीव एक समान हैं, अपने निज स्वरूपकी ओर ५ मिनट भी देखो, अपने शुद्ध परिणाम बनावो ।

सब जीव एक बराबर दिखने लगेंगे तब समझो कि मेरे मनमें पवित्रता आई । इन अनन्त ओंमें से चार जीवोंके लिये ही तो सब कुछ है । सारा धन उनके ही पीछे खर्च करते, सारा ा करते और उनमें ही विचार बनाये रहते हैं तथा ये जो अनन्त जीव हैं उनकी बात दृष्टि कुछ नहीं है । सर्व जीवोंमें स्वरूपसाम्यकी दृष्टिसे हृदयकी पवित्रता ही बस सकती है । न तीर्थंकरोंकी हम आप उपासना करते हैं उन तीर्थंकरोंने इसी मार्गका अनुसरण किया । जको निज परको पर जानो, ऐसा ही उन्होंने जाना और फिर सबको छोड़कर केवल निज नस्वभावमें अपनी अनुभूति की, उसके परिणाममें वे परमात्मा बने, और आज हम आप नकी मूर्ति पूजते हैं । घरमें आप कितनी ही आसक्ति बनाए रहिए मरणके बादमें ये कोई अने वाले न रहेंगे और न परभवमें ही सुख सुविधा देंगे । यदि मन पवित्र हो तो शौचधर्म ता है ।

पवित्र परिणाम होनेपर पापोंका प्रक्षय—बंगालका एक कथानक है । एक जमींदार , बड़े प्रोफेसर भी थे । उनकी लड़कीका नाम द्रोपदी था । बालापनमें वह विधवा हो गई । ो स्त्री विधवा हो जाती है उसकी फिर घरमें कदर नहीं रहती है । यह कितनी स्वार्थबुद्धि ो बात है ? उसके बापने अपने घर ही बुला लिया और कुछ जायदाद लगा दी । एक बाग ी लगा दिया । समयकी बात है कि वह लड़की भ्रष्ट हो गई । पापका उदय आया तो उसके गीचेके जो आमके फल थे वे कड़ुवे रसके हो गए और पानीमें कीड़े पड़ गए । कई वर्षोंके ादमें उसके मनमें ग्लानि आई और उसने इस मनको त्याग दिया और इच्छा हो गई कि मैं तीर्थयात्रामें जाऊँगी; और अपने भगवानके अभिषेकमें जल चढ़ाऊँगी और उस जल चढ़ाते हुये में ही प्राण निकल जावेंगे । पितासे कहा कि तीर्थयात्राका कोई दिन नियत कर दो । दिन नियत हो गया । जब जाने लगी तो गांवके सब लोग इकट्ठे हुये खेल देखनेके लिए । यह बिल्ली सैंकड़ों चूहे मारकर आज हजको जा रही है । कोई कुछ कहे, कोई कुछ । लड़की सबसे कहती है कि मैं भ्रष्ट हो गई थी । अब मेरेमें पवित्रता आई है । मैं अब वह नहीं हूँ जो पहले थी । मैं यात्राको जाऊँगी और भगवानके ऊपर जल चढ़ाऊँगी । जल चढ़ाते हुये ही मेरे प्राण

नहीं और बेकारमें दर्द हो गया। इसी प्रकार परपदार्थोंमें ममत्वबुद्धि करके मिलना तो कुछ भी नहीं, बेकारमें ममत्व बढ़ाकर यहाँ भी दुःख भोगने पड़ते हैं और आगे भी नरककी यातनायें सहनी पड़ती हैं। भैया ! ये जगत्‌के जितने भी ठाठ हैं स्वप्नके ठाठ हैं। आँख मिची और सब यहाँका यहाँ रहेगा। यह तो सब बाह्यपदार्थ हैं। बड़े-बड़े चक्रवर्ती जिन्हें सम्यक्‌दर्शनका अतुल वैभव था, अपनी सब सम्पत्तिको बाह्यपदार्थ जानते थे, इसलिए सुखी रहते थे। कभी उन्होंने उस सम्पत्तिसे राग नहीं किया। अतः आत्मशुद्धिकी भावना करो। आप तो केवल अज्ञानमें कल्पनाके स्वामी हैं, बाह्य पदार्थोंका कोई स्वामी नहीं है। कल्पना ही करनी मात्र रह गई है तो अच्छी कल्पनामें लगो। अपने चैतन्यस्वभावके विचाररूप कल्पनामें अपनी कल्पना लगाओ। शुद्ध भावनासे कल्पना करो तो अच्छा फल मिलेगा।

तत्त्वज्ञानसे शौच धर्मका विकास—भैया जितने द्रव्य हैं सब स्वतन्त्र हैं। यह आत्मतत्त्व सदा रहने वाला है। शरीर छोड़कर भी चला जाता है। आत्मत्व फिर भी सदा रहता है। यह मनुष्यमें, पशुमें, पक्षीमें, किसी न किसी रूपसे अवश्य रहता है। जो ये देख रहे हो कि अमुक मेरा, अमुक पैदा हुआ इससे इसका अनुमान लगाया जा सकता है। पाप पुण्यके भावसे ये अवस्थायें मिलती हैं। इसलिये अपनी जिम्मेदारी आप समझकर अपने आपपर दया कीजिये और एक अपने ही सत्यस्वरूपको समझिये। शास्त्र (ज्ञान) रूपी धनकी वृद्धि करनेसे ही यह उत्तम शौचधर्म रहता है। शौचधर्म उसी मनुष्यके होता है जिसके लोभकषायका त्याग होता है। ज्ञानदर्शन स्वभावका माहात्म्य जहां रहे, उसके उत्तम शौचधर्म होता है। वर्तमान में भी यह सब बाह्यपदार्थ हमारा साथ नहीं देते तो आगे कहाँसे साथ देंगे ? जरा हम बीमार पड़ जायें, दर्दके मारे चिल्ला रहे हैं। स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, सेना, मन्त्री, नौकर चाकर आदि सभी सेवा करनेके लिये उपस्थित हैं; परन्तु क्या मजाल कि जरा भी कोई उस दर्दको बांट सके। वह दर्द तो स्वयं ही सहन करना होगा। भाई मरनेपर भी देख लो सब यहीं पड़े रहते हैं और यह आत्माराम अकेले ही चला जाता है और स्वर्ग या नरकमें पहुंचकर सुखी व दुःखी भी अकेला ही होता है, कोई भी उसमें शरीक नहीं होता। अतः इनसे अपनी परिणति दूर करो अन्यथा ये विभावपरिणतियाँ खुदमें बसकर खुदका विघात करती रहेंगी।

लोभकी गहन अपवित्रता—भैया ! यह लोभ ही तो आत्मामें अपवित्रता पैदा करता है। आत्मामें अशुचिता परद्रव्यके मोहसे आती है और देखो भैया ! है तो यही मोही आत्मा अपवित्र, और कहते हैं कि शरीर अपवित्र है। जब यह आत्मा इस शरीरमें नहीं था तो यह परमाणुपुञ्ज पवित्र था, किसी भी तरहकी अपवित्रता इसके किसी भी अंश अथवा परमाणुमें नहीं थी। इस आत्माने ही उसमें प्रवेश करके उसे अपवित्र बनाया है। इन आहारवर्गणावों को ग्रहण कर रुधिरादि रूप बनाया, तब पुद्गल अपवित्र हुआ कि आत्मा ? यह आत्मा ही

विसर्जित हो जायेंगे । यदि हमारी बातका यकीन न हो तो नगीनेमें जाओ, फल खाओ, पानी पीवो । देखो मीठे हैं कि नहीं ? लोगोंने जाकर देखा तो नगीनेके फल मीठे हो गये थे और पानी भी मीठा हो गया था, उनको कौतूहल हो गया । सोचा अब सबने कि यह भी देखना चाहिये यह कैसे प्राण छुटायेगी ? वह तीर्थयात्रा करने गयी । वहाँ जाकर लोगोंने देखा तो जैसा कहा था वैसा ही हुआ ।

ब्रह्मचर्य आदि पवित्र भावोंमें शौचधर्मकी प्रकटता—यह आत्मा केवल भावस्वरूप है । भावोंसे ही तो गंदगी आती है और भावोंसे ही निर्मलता जगती है । किसीने अब तक गंदे परिणाम किया हो, यदि भाव उलट जाय और सत्यस्वरूपकी दृष्टि जग जाय तो फिर उसके निर्मलताका कोई संदेह नहीं रहता है । उसकी उन्नति हो सकती है जिसका मन शुद्ध हो, वहाँ ही शौचधर्म प्रकट होता है । परपदार्थोंमें प्रीति या ममत्वभाव रहेगा तो उत्तम शौचधर्म प्रगट नहीं हो सकता । उत्तम शौचधर्म प्राप्त करनेके लिये परपदार्थोंसे ममत्व हटाना चाहिये । परपदार्थोंसे ममत्व हटा कि आत्मामें वह स्थिति सुनिश्चित है जो सत्य सुख का मूल है । उत्तम शौचधर्म ब्रह्मचर्य व्रतके धारणमें होता है । स्त्रीके मोहभावमें लीन रहना कितना अपवित्र परिणाम है ? उसमें उनका ज्ञान गायब हो जाता है । स्त्रीभोगका परिणाम अत्यन्त अशुचि परिणाम है । ब्रह्मचर्य धारण करने वाला ही इस उत्तम शौच धर्मको पा सकता है । उत्तम ब्रह्मचर्य भी वहाँ है जहां निजमें रहने वाली परस्त्री अर्थात् रागादिपरिणति से, परपरिणतिसे भी रुचि नहीं रहती, क्योंकि यदि परस्त्रीमें आत्माका भाव होता है तो वह हमेशा परपरिणतिमें लगा रहता है । परपरिणतियोंको जिसने अपना हित समझा वह निजकी परिणतिमें नहीं रहा । यह उत्तम शौचधर्म ब्रह्मचर्य धर्मके धारण करनेमें ही प्रगट होता है अर्थात् यह शौचधर्म ब्रह्मचर्यव्रतके धारीके ही प्रगट होता है । सारांश यह है कि पवित्रता उसके ही आती है जिसने परपदार्थको पर समझा है और निज ध्रुवज्ञानस्वभावको निज समझा है । नहीं तो, पर तो न अपना है और न होगा, विकल्पसे व्यर्थ वरबाद हो जायेंगे ।

तृष्णामें दुःखभाजनता—एक आदमी था । उसको स्वप्नमें कहींसे दो हजार रुपयोंकी थैली मिल गई । वह उस २५ सेरकी थैलीको लिये चल रहा था । मारवाड़ जैसी भूमि थी । उसके कन्धे दुःख रहे हैं, यह स्वप्न स्वप्नमें ही देख रहा था । कन्धे दुखने लगे । इसलिए वास्तवमें वह उन्हें दाबने लगा । इतनेमें नींद उचट गई । अब उसका वह २०००) हजार गायब हो गया । हालांकि यह स्वप्नकी ही बात थी, फिर भी कन्धा तो उसका दुःख ही रहा था । अतः वह उसे दाबने लगा और थैलीको भी टटोलने लगा । कन्धा दुखता हुआ इसलिये —था कि स्वप्नमें मनने सहयोग दिया था, इसलिये वह दुःख शरीरके साथ रहा । कंधेका दुःख थैली गायब होनेका शोक, दोनों ही चीजें एक साथ चल रही थीं । मिला मिलाया कुछ

नहीं और बेकारमें दर्द हो गया। इसी प्रकार परपदार्थोंमें ममत्वबुद्धि करके मिलना तो कुछ भी नहीं, बेकारमें ममत्व बढ़ाकर यहाँ भी दुःख भोगने पड़ते हैं और आगे भी नरककी यातनायें सहनी पड़ती हैं। भैया! ये जगत्के जितने भी ठाठ हैं स्वप्नके ठाठ हैं। आँख मिची और सब यहाँका यहाँ रहेगा। यह तो सब बाह्यपदार्थ हैं। बड़े-बड़े चक्रवर्ती जिन्हें सम्यक्दर्शनका अतुल वैभव था, अपनी सब सम्पत्तिको बाह्यपदार्थ जानते थे, इसलिए सुखी रहते थे। कभी उन्होंने उस सम्पत्तिसे राग नहीं किया। अतः आत्मशुद्धिकी भावना करो। आप तो केवल अज्ञानमें कल्पनाके स्वामी हैं, बाह्य पदार्थोंका कोई स्वामी नहीं है। कल्पना ही करनी मात्र रह गई है तो अच्छी कल्पनामें लगो। अपने चैतन्यस्वभावके विचाररूप कल्पनामें अपनी कल्पना लगाओ। शुद्ध भावनासे कल्पना करो तो अच्छा फल मिलेगा।

तत्त्वज्ञानसे शौच धर्मका विकास—भैया जितने द्रव्य हैं सब स्वतन्त्र हैं। यह आत्मतत्त्व सदा रहने वाला है। शरीर छोड़कर भी चला जाता है। आत्मतत्व फिर भी सदा रहता है। यह मनुष्यमें, पशुमें, पक्षीमें, किसी न किसी रूपसे अवश्य रहता है। जो ये देख रहे हो कि अमुक मरा, अमुक पैदा हुआ इससे इसका अनुमान लगाया जा सकता है। पाप पुण्यके भावसे ये अवस्थायें मिलती हैं। इसलिये अपनी जिम्मेदारी आप समझकर अपने आपपर दया कीजिये और एक अपने ही सत्यस्वरूपको समझिये। शास्त्र (ज्ञान) रूपी धनकी वृद्धि करनेसे ही यह उत्तम शौचधर्म रहता है। शौचधर्म उसी मनुष्यके होता है जिसके लोभकषायका त्याग होता है। ज्ञानदर्शन स्वभावका माहात्म्य जहाँ रहे, उसके उत्तम शौचधर्म होता है। वर्तमानमें भी यह सब बाह्यपदार्थ हमारा साथ नहीं देते तो आगे कहाँसे साथ देंगे? जरा हम बीमार पड़ जायें, दर्दके मारे चिल्ला रहे हैं। स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, सेना, मन्त्री, नौकर चाकर आदि सभी सेवा करनेके लिये उपस्थित हैं; परन्तु क्या मजाल कि जरा भी कोई उस दर्दको बांट सके। वह दर्द तो स्वयं ही सहन करना होगा। भाई मरनेपर भी देख लो सब यहीं पड़े रहते हैं और यह आत्माराम अकेले ही चला जाता है और स्वर्ग या नरकमें पहुंचकर सुखी व दुःखी भी अकेला ही होता है, कोई भी उसमें शरीक नहीं होता। अतः इनसे अपनी परिणति दूर करो अन्यथा ये विभावपरिणतियाँ खुदमें बसकर खुदका विघात करती रहेंगी।

लोभकी गहन अपवित्रता—भैया! यह लोभ ही तो आत्मामें अपवित्रता पैदा करता है। आत्मामें अशुचिता परद्रव्यके मोहसे आती है और देखो भैया! है तो यही मोही आत्मा अपवित्र, और कहते हैं कि शरीर अपवित्र है। जब यह आत्मा इस शरीरमें नहीं था तो यह परमाणुपुञ्ज पवित्र था, किसी भी तरहकी अपवित्रता इसके किसी भी अंश अथवा परमाणुमें नहीं थी। इस आत्माने ही उसमें प्रवेश करके उसे अपवित्र बनाया है। इन आहारवर्गणाओंको ग्रहण कर रुधिरादि रूप बनाया, तब पुद्गल अपवित्र हुआ कि आत्मा? यह आत्मा ही

यहाँ अपवित्र है। अतः हे आत्मन्! जब तुम अपवित्र हो व तेरे कारणसे ही यह शरीर अप-
वित्र बना तब परकी अपवित्रताके गीत न गाकर खुदकी अपवित्रता है उसे देखो और ज्ञानदृष्टि
से दूर करो, पर-विकल्प त्यागो। यह देहवर्ग अर्थात् आहारवर्गणायें तो बहुत पवित्र रूपमें क
रही थीं, तेरे आनेसे पहले उसमें यह अपवित्रता तो नहीं थी, तेरे धारण करनेके बाद ही त
यह अपवित्र हुआ है। इस प्रकार अपवित्रताको निरखो और वाह्य पदार्थोंसे मोह हटाक
आत्माका शुद्धिका उपाय करो तो आत्माको शान्ति मिलेगी।

वचनशुद्धिसे शौचधर्मका विकास—यह शौचधर्म वचनशुद्धिसे प्रकट होता है जिस
अपनी पवित्रता रखनी हो वह वचन बड़ी सावधानीसे बोले। सब आफतोंकी जड़ है व
बुरा बोलना, आँखों देख लो। जीभ उठायी और जैसी इच्छा हुई वैसा बोल दिया,
कर्तव्य नहीं है। बड़ी सावधानीसे बात बोलना चाहिये क्योंकि बोलनेके बाद फिर वह ब
वापिस नहीं आया करती है। इस जगतमें ठेका नहीं लिया है कि हम किसी की बुराई
देंगे। हमारे सहवाससे किसीकी बुराई मिटती हो, मिट जाय, पर जगतकी बुराइयाँ मिटा
लिये हमने कमर नहीं कसी। हम दूसरोंकी बुराइयोंमें दृष्टि दें और यहाँ वहाँकी बुराइय
बातें कहें, अपने समयको व्यर्थ खोवें, यह ठीक नहीं। वचनधन बहुत बड़ा धन है। व
को संभालकर बोलना चाहिये। जैसे अपना कोई सगा किसी बलवानसे लड़ता होग
उसको हाथ पकड़ कर रोकते हैं। तो जैसे अपने सगेको हाथ पकड़ कर अपने वश
करते हैं इसी प्रकार बड़े सबलोंसे भिड़ने वाला जो यह मन है उसको थाम लो और म
थामकर लोगोंसे परिमित बात बोलो। अधिक वचनालाप मत करो। ज्यादह वचन बो
आपत्तियाँ लाता है, अपने आत्माके बलको घटा देता है। प्रामाणिक वचन बोलो।
वचनोंसे आपकी जीविकाका काम निकले या कल्याणका काम निकले। व्यर्थकी गप्पों-स
क्या फायदा है? अपने वचन धनका सदुपयोग करनेसे शौचधर्म होता है। यह शौ
कषायोंके दूर होने पर होता है। सब कषाय दूर हो जायें तो पवित्रता है। क्रोध,
माया लोभ इनके अभावसे ही पवित्रता आती है। लोभके अभावसे पवित्रता आती है
नहीं यह रहे हैं किन्तु चारों कषायोंके अभावसे यह पवित्रता आती है, जिसके शौचधर्म
होता है। इसी कारण चौथे नम्बरपर शौचधर्म कहा है।

मनका नैमित्तिक प्रभाव—अपना जैसा मन व व्यवहार होता है वैसा मन दू
भी हो जाता है। एक सेठजी थे। वे गंगाजी नहाने गये। थे बड़े कंजूस। और जो
पंडा था वह भी निर्धन था। उसके पास चंदन तक भी न था कि उस सेठके तिलक
दे। पंडाजी ने गंगाजी रेत उठायी और पीसकर तिलक लगाया। पंडाजी बोले—
... सेठजी मिश्र वचन परमान। गंगाजीके रेतको, चन्दन करके मान॥ सेठजी नहा

आये और मार्गमें एक मेंढकी पकड़ लाये। सेठ जी बोले—लेउ दक्षिणा विप्रजी, सेठ वचन परमान। गंगाजीकी मेंढकी, बछिया करके मान॥ तो यह मनका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ जाता है।

अपने मानसिक भावका अन्यपर प्रभाव—यहां देखो जितनी समाज है धर्मके झंडेके नीचे बैठे हैं। जो कुछ करेंगे वह महावीर भगवानके उपदेशके प्रचारके लिये ही, अपने आपमें उसको उतारनेके लिये ही तो करेंगे। चाहे जाप करें, चाहे जो कुछ करें, महावीर स्वामीके बताए हुए मार्गकी प्रभावनाके लिये ही तो करते हैं। तब पवित्रता ऐसी होनी चाहिये कि धर्मके मामलेमें किसीके प्रसंगमें ऊंच-तने, ऊंच-नीचकी बात न हो। किसी ने कहा ऐसा होता है, हां भाई ठीक है करो। जो सहयोग हमसे हो सकेगा, करेंगे। प्रायः कई जगह दसलाक्षणीमें और चौदसके दिन तो कलह हो जाया करती है। भैया! ऐसा ज्ञान बने, ऐसा सहधर्मियोंमें प्रीतिका परिणाम हो, धर्मकी, मर्मकी बात बोलें, दूसरोंका सत्कार हो। अगर अपनेसे कोई बड़ा है और उपकारी जीव है तो उसका सत्कार करनेमें समय देना यह तो कर्तव्य ही है और कोई आपसे छोटा है उस छोटेको भी खूब सत्कार करके रखो। उस छोटेसे वात्सल्य व्यवहार रखो तो उससे धर्मकी वृद्धि होगी। ऐसा वातावरण होना चाहिये कि कहींसे कलह की बात सुननेमें न आये। जो लोग काम करने वाले हैं, बड़े जन हैं वे लोग बड़ी ही श्रद्धासे काम करते हैं। कभी किसी भी प्रकारकी कोई बात सुननेमें नहीं आई, यहांका वातावरण बहुत ही पवित्र शांत रहा आवे, जिससे कि प्रभुकी भक्तिमें, आत्मध्यानमें अपना मन उत्तरोत्तर दृढ़ हो जाये, यह भी तो शौचधर्म है। यही तो पवित्रता है, कोई छोटा पुरुष है तो उसका सम्मान रखो, कोई बड़ा उपकारी है तो आपका फर्ज है कि कृतज्ञता उसके साथ प्रकट करो। यह शौच धर्म जहां विराजता है वहां तृष्णा नहीं होती है।

धम्म सउच्च बंभव्वय-धारणु, धम्म सउच्च मयट्ठणिवारणु।
धम्म सउच्च जिणायमभणणे, धम्म सउच्च सुगुण अणुमणणे॥

लोभपरिहारमें शौचधर्म—शौच धर्म ब्रह्मचर्यके धारणसे होता है, शौच धर्म आठ मदोंके दूर करनेसे होता है। सद्गुणोंके अनुमननसे शौच धर्म होता है। सबका मूल उपाय लोभका परित्याग है। लोभवश मोही प्राणी प्राण भी गंवा देता है। दो बजाज कपड़ा खरीदने गये। ठंडके दिन थे, रास्तेमें मैदानमें वे ठहर गये। ठंड लग रही थी। न लकड़ी, न घास फूस, न अन्य कोई जलाने वाली चीज। बिल्कुल मैदान था। एक बजाजने सोचा कि घोड़ेपर हजार दो हजारके कपड़े हैं, उन्हें जला दें तो ठंडसे तो बच जायेंगे। हजार दो हजारके कपड़े ही तो जलेंगे, सो उसने खूब रातभर उन कपड़ोंको जलाकर तापा। और दूसरा यों ही जाड़ेसे ठिठुरता रहा, उसके निमोनिया हो गया और प्राण चले गये। शौच धर्म वहां होता है जहां

यहाँ अपवित्र है । मन रे भगवन् ! [illegible] चित्र बना तब पत्नी पापिताके थी । [illegible] से दूर करो, पर-निन्दा त्यागो । [illegible] रही थी, तेरे खानेसे पहले उनमें यह [illegible] यह अपवित्र हुआ है । इस प्रकार [illegible] आत्माका शुद्धिका उपाय करो तो आत्माको शान्ति मिलेगी ।

वचनशुद्धिसे शौचधर्मका विकास—यह शौचधर्म [illegible] होता है जिस अपनी पवित्रता रखनी हो वह वचन नहीं सावधानीसे बोले । सब पापोंकी जड़ है वच बुरा बोलना, आँखों देख लो । जीभ उठायी और जैसी इच्छा हुई वैसा बोल दिया, [illegible] कर्तव्य नहीं है । बड़ी सावधानीसे बात बोलना चाहिये क्योंकि बोलनेके बाद फिर वह ब वापिस नहीं आया करती है । इस जगतमें ठेका नहीं लिया है कि हम किसीकी बुराई देंगे । हमारे सहवाससे किसीकी बुराई मिटती हो, मिट जाय, पर जगतकी बुराइयाँ मिटा लिये हमने कमर नहीं कसी । हम दूसरोंकी बुराइयोंमें दृष्टि दें और यहाँ वहाँकी बुराइयों बातें कहें, अपने समयको व्यर्थ खोवें, यह ठीक नहीं । वचनधन बहुत बड़ा धन है । व को संभालकर बोलना चाहिये । जैसे अपना कोई सगा किसी बलवानसे लड़ता होगा उसको हाथ पकड़ कर रोकते हैं । तो जैसे अपने सगेको हाथ पकड़ कर अपने वश किया करते हैं इसी प्रकार बड़े सवलोंसे भिड़ने वाला जो यह मन है उसको थाम लो और मनको थामकर लोगोंसे परिमित बात बोलो । अधिक वचनालाप मत करो । ज्यादह वचन बोलना आपत्तियाँ लाता है, अपने आत्माके बलको घटा देता है । प्रामाणिक वचन बोलो । जि वचनोंसे आपकी जीविकाका काम निकले या कल्याणका काम निकले । व्यर्थकी गप्पों-सप्पों क्या फायदा है ? अपने वचन धनका सदुपयोग करनेसे शौचधर्म होता है । यह शौचधर्म कषायोंके दूर होने पर होता है । सव कषाय दूर हो जायें तो पवित्रता है । क्रोध, मान माया लोभ इनके अभावसे ही पवित्रता आती है । लोभके अभावसे पवित्रता आती है, स नहीं कह रहे हैं किन्तु चारों कषायोंके अभावसे यह पवित्रता आती है, जिसके शौचधर्म प्रक होता है । इसी कारण चौथे नम्बरपर शौचधर्म कहा है ।

मनका नैमित्तिक प्रभाव—अपना जैसा मन व व्यवहार होता है वैसा मन दूसरेका भी हो जाता है । एक सेठजी थे । वे गंगाजी नहाने गये । थे बड़े कंजूस । और जो उनका पंडा था वह भी निर्धन था । उसके पास चंदन तक भी न था कि उस सेठके तिलक लगा दे । पंडाजी ने गंगाकी रेत उठायी और पीसकर तिलक लगाया । पंडाजी बोले—तिलक [illegible] सेठजी विप्र वचन परमान । गंगाजीके रेतको, चन्दन करके मान ।। सेठजी नहा कर

आये और साथमें एक मेढकी पकड़ लाये। सेठ जी बोले—लेउ दक्षिणा विप्रजी, सेठ वचन परमान। गंगाजीकी मेंढकी, बछिया करके मान ॥ तो यह मनका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ जाता है।

अपने मानसिक भावका अन्यपर प्रभाव—यहीं देखो कितनी समाज है धर्मके झंडेके नीचे बैठे हैं। जो कुछ करेंगे वह महावीर भगवानके उपदेशके प्रचारके लिये ही, अपने आपमें उसको उतारनेके लिये ही तो करेंगे। चाहे जाप करें, चाहे जो कुछ करें, महावीर स्वामीके बताए हुए मार्गकी प्रभावनाके लिये ही तो करते हैं। तब पवित्रता ऐसी होनी चाहिये कि धर्मके मामलेमें किसीके प्रसंगमें अबे–तबे, ऊंच–नीचकी बात न हो। किसी ने कहा ऐसा होना है, हाँ भाई ठीक है करो। जो सहयोग हमसे हो सकेगा, करेंगे। प्रायः कई जगह दसलाक्षणीमें और चौदसके दिन तो कलह हो जाया करती है। भैया ! ऐसा ज्ञान बने, ऐसा सहधर्मियोंमें प्रीतिका परिणाम हो, धर्मकी, मर्मकी बात बोलें, दूसरोंका सत्कार हो। अगर अपनेसे कोई बड़ा है और उपकारी जीव है तो उसका सत्कार करनेमें समय देना यह तो कर्तव्य ही है और कोई आपसे छोटा है उस छोटेको भी खूब सत्कार करके रखो। उस छोटेसे वात्सल्य व्यवहार रखो तो उससे धर्मकी वृद्धि होगी। ऐसा वातावरण होना चाहिये कि कहींसे कलह की बात सुननेमें न आये। जो लोग काम करने वाले हैं, बड़े जन हैं वे लोग बड़ी ही श्रद्धासे काम करते हैं। कभी किसी भी प्रकारकी कोई बात सुननेमें नहीं आई, यहाँका वातावरण बहुत ही पवित्र शांत रहा आवे, जिससे कि प्रभुकी भक्तिमें, आत्मध्यानमें अपना मन उत्तरोत्तर दृढ़ हो जाये, यह भी तो शौचधर्म है। यही तो पवित्रता है, कोई छोटा पुरुष है तो उसका सन्मान रखो, कोई बड़ा उपकारी है तो आपका फर्ज है कि कृतज्ञता उसके साथ प्रकट करो। यह शौच धर्म जहां विराजता है वहां तृष्णा नहीं होती है।

धम्म सउच्च बंभवय धारणु, धम्म सउच्च मयट्ठणिवारणु।
धम्म सउच्च जिणायमभणणे, धम्म सउच्च सुगुण अणुमणणे ॥

लोभपरिहारसे शौचधर्म—शौच धर्म ब्रह्मचर्यके धारणसे होता है, शौच धर्म आठ मदोंके दूर करनेसे होता है। सद्गुणोंके अनुमननसे शौच धर्म होता है। सबका मूल उपाय लोभका परित्याग है। लोभवश मोही प्राणी प्राण भी गंवा देता है। दो बजाज कपड़ा खरीदने गये। ठंडके दिन थे, रास्तेमें मैदानमें वे ठहर गये। ठंड लग रही थी। न लकड़ी, न घास फूस, न अन्य कोई जलाने वाली चीज। बिल्कुल मैदान था। एक बजाजने सोचा कि घोड़ेपर हजार दो हजारके कपड़े हैं, उन्हें जला दें तो ठंडसे तो बच जायेंगे। हजार दो हजारके कपड़े ही तो जलेंगे, सो उसने खूब रातभर उन कपड़ोंको जलाकर तापा। और दूसरा यों ही जाड़ेसे ठिठुरता रहा, उसके निमोनिया हो गया और प्राण चले गये। शौच धर्म वहां होता है जहां

लोभका त्याग हो। जो तपके मार्गमें ले जाय वही शौच धर्म है। लोभका त्याग एक तप है कषायोंका त्याग तप है।

ज्ञानसाध्य कषायविजयका आदर न करने वालोंकी मूढ़ता—आत्मानुशासनमें श्रीगुणभद्र स्वामीने लिखा है कि—मा चरन्तु तपः घोर तपः क्लेशासहो भवान्। चित्तसाध्यान् कषायारीन्न जयेद्यत्तज्ञता। वे समझा रहे हैं। आप घोर तप मत करो, अनशन मत करो, क्योंकि हम जानते हैं कि आप नवाब साहब हैं, आप तपका क्लेश नहीं सह सकते, पर कषाय शत्रु मात्र ज्ञानभावनासे नष्ट हो जाते हैं, ज्ञानभावना तो करो, दुर्भावनाका नाश करो। जो केवल खोटे भाव बना लेनेसे कषायके परिणाम जग गये हैं, उन कषाय वैरियोंका नाश करो। जो कषाय शत्रुओंका नाश करता है, कषायोंपर विजय प्राप्त करता है उसको हम विवेकी कहें और जो कषायोंको नहीं जीतता है उसे हम बेवकूफ कहेंगे। तप नहीं कर सकते हो, न करो पर जो ज्ञानसाध्य कल्याणका काम है वह नहीं कर सकते तो यह बहुत बड़ी मूर्खता है।

ब्रह्मचर्यधारणमें शौचधर्म—यह शौचधर्म ब्रह्मचर्य व्रतका धारण करनेसे होता। सबसे बड़ा तप है भैया ब्रह्मचर्य। सोच लो, कोई ६० वर्षका हो गया, कोई ७० वर्षका हो गया और ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा नहीं हो सकती है। यदि प्रतिज्ञा नहीं ले सकते तो कामवासना [illegible]। प्रथम तो यह चाहिये कि ४०-४५ वर्षकी उम्र हो गई, कई सन्तान भी हो गई [illegible] है। तब ही सही, ब्रह्मचर्य व्रतको पति पत्नी मिलकर धारण करें तो यह [illegible] कि ब्रह्मचर्यके प्रतापसे यह धर्म आपका सहज ही पल जाया करता है और ब्रह्म[illegible] कि गृहस्थी बसाई, बहुत बालक हो गये, लड़कीके विवाहकी चिन्ता [illegible]। [illegible] बढ़ाने वाला यह अब्रह्मचर्य पाप है। शांति और संतोषका जीवन [illegible] कि ब्रह्मचर्यका पालन करो। अभीसे कर लिया तो आगेकी जिन्दगी [illegible] हो जायगी, यह तो हो जायगा कि हां हम शांतिके मार्गपर [illegible]

[illegible] विपरीत आशय गुरुसेवामें भी अनर्थ—एक [illegible] चेला था। जंगलमें गुरुके पास [illegible] रहता था। १८-२० सालका हो गया। एक बार [illegible] कि हम काम कर आवें। गुरुने कहा बेटा यह ज्ञानानन्द [illegible] लौटकर आओ। वह गया, रास्तेमें [illegible] लोगोंसे पूछा भैया [illegible]

सकता है।""अच्छा। सुनकर आगे बढ़ गया। आगे एक कुंवा था, तो कुंवा था सपाट। सपाट न बोलना चाहिये बल्कि अपाट बोलना चाहिये अर्थात् जिस कुएंमें पाट न हो, कुएंके पास वह लेट गया। नींद आ गई। उसे स्वप्न आ गया कि मेरी बारात जा रही है। शादी हो गई, बच्चे हो गये, स्त्री पास पड़ी है, बच्चा बीचमें लेटा है। स्त्री कहती है अरे जरा सरक तो जावो, यह बच्चा कुचला जा रहा है। अब आ तो रहा है स्वप्न, पर थोड़ासा सरक गया। थोड़ी देर बाद फिर स्त्री बोलती है कि बच्चा कुचला जाता है, थोड़ासा और सरको। दुबारा सरके तो कुएंमें धम्मसे गिर पड़ा। अब वह अंदरसे सोचता है भगवान कोई निकाले तो कुशल हो।

एक जमींदार प्यासा था, पानी पीने आया। उसके पास लोटा डोर था। उसने ज्यों ही लोटा डोर लटकाया अन्दरसे उसने पकड़ लिया।""कहा भैया डरना नहीं, हम भूत नहीं हैं, हमें निकाल लो। इसलिये कह दिया उसने कि यह डरकर भाग न जाय। जमींदारने धीरेसे उसे निकाल लिया। तो वह जमींदार पूछता है कि भैया! तुम कौन हो? कैसे गिर गये? वह गिरने वाला बोलता है कि भाई साहब तुमने मेरी जान बचाई, तुम मेरे उपकारी हो, जो उपकारी हो उसका परिचय पहिले लेना चाहिये। तो कृपा करके आप अपना परिचय दो। जमींदार बोला कि तुम हमें नहीं जानते हो। मैं एक बहुत बड़ा जमींदार हूं। देखो उस गांवमें जो सबसे बड़ी हवेली दिख रही है वह मेरी है। मेरे ५० हल चलते हैं। १० गांवोंमें खेती है। लगभग ५० आदमियोंका कुटुम्ब है। जब इतनी बात सुनीं तो चेला कभी तो पैर देखे और कभी सिर देखे। जमींदारने पूछा—क्या तुम डाक्टर हो? नहीं। फिर पूछा, तुम हमें ऊपरसे नीचे तक क्यों देखते हो? चेला बोला भाई हमने स्वप्नमें गृहस्थी पाली तो उसके फलमें कुंवामें गिर गये। क्या तुम सचमुचकी गृहस्थीमें रहकर अब तक जिन्दा हो, यह देख रहा हूं। जिन्दाके मायने क्या? भाई गृहस्थीमें भी रहकर यदि अपने आत्मस्वरूपका समय समय पर ध्यान आता रहे और अपनी दृष्टि बनी रहे, विकल्प छोड़कर कभी तो ज्ञानमय स्वरूपकी भावना भावे तो समझो कि हम ठीक-ठीक जिन्दा चल रहे हैं नहीं तो कषाय ही घर कर गया है। अनन्त जन्म लिया, अनन्त मरण किया तो इस जिन्दगी की ही क्या विशेषता हुई?

अष्ट मदोंके परिहारमें शौचधर्म—पवित्र वही है जिसके साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका सम्बन्ध हो। यह धर्म ८ प्रकारके मदोंका निवारण करने वाला है। देखो ज्ञानका मद आये तो पवित्रता नहीं रह सकती है। धनका मद आये तो पवित्रता नहीं रह सकती है। इज्जतका मद आ जाय, जातिका मद आये, कुलका मद आ जाय तो वहां ज्ञान स्वच्छ नहीं रह सकता है।

एक बार एक चमार हमारे साथ ही नैनागिरिको जा रहा था। रास्ता बताने वाला था। खूब बातें होती गईं। बीचमें मैंने पूछा कि जरा यह तो बतावो कि सबसे बड़ी जाति कौन है? कोई ग्वाला होता है, कोई नाई होता है, कोई धोबी होता है, ऐसी ही बहुतसी जातियां हैं। तो वह बोला महाराज ऐसी बात है कि धोबियोंमें यह बात है, ग्वालोंमें यह बात है, सबके अवगुण बता दिये, और इन सबमें चमार ऊँचा होता है। अन्य सब जातियों को हल्का बताता गया। तो प्रयोजन यह है कि अपनेको कौन मानता है कि मैं कुलका, जाति का छोटा हूं। बहुत ही छोटे कुलका हो तो शायद वह अपनेको छोटा कहे। तो यह मद सबके हुआ करता है। जिसके घमंड है उसके शौचधर्म नहीं प्रकट होता है।

धम्म सउच्च सल्लकयचाए धम्म सउच्च जिणम्मलभाए।
धम्म सउच्च कषाय अभावे धम्म सउच्च ण लिप्पइ पावे॥

गुणानुरागसे शौचधर्मका विकास—यह शौच धर्म शल्यके त्यागसे होता है, शौच धर्म निर्मल भावमें प्रकट होता है। शौच धर्म कषायके अभावमें प्रकट होता है। शौच धर्मसे पाप का लेप नहीं होता है। भैया! शौचधर्मकी वृद्धिके लिये गुणोंपर दृष्टि हो, गुणियोंपर अनुराग करो। जो गुणीजन हैं उनकी अनुमोदना करनेसे पवित्रता बढ़ती है। किसी पुरुषको यदि दूसरोंकी बुराई करनेकी आदत पड़ गई हो तो उस आदतको कैसे मिटायें? तो उसका उपाय यह है कि तुम प्रतिज्ञा कर लो कि एक माह तक ढूंढ़-ढूंढ़कर गुणी जनोंके गुण गाया करें। पवित्रता वहां ही आती है जहाँ गुणी जनोंके गुणोंकी अनुमोदना चले। किसीको तुच्छ न निरखो। सब जीव अरहंत सिद्धके स्वरूपके समान हैं। कर्मोंकी उपाधि लगी है इससे भेद हो गया है, पर तुम भेद मत देखो। जब धर्मको हृदयमें उतारनेका श्रम किया जा रहा हो तो उस जीवका जो सहज स्वरूप है उस सहज स्वरूपकी दृष्टि करो। लोभ बढ़ाना ही कठिन आपत्ति है। इसलिये कि लोभमें अपने आत्माके उस शुद्ध एकत्व स्वरूपका पता नहीं है। मैं केवल ज्ञानानन्द भाव मात्र हूं। इसका विश्वास न होनेपर वस्तुओंके लोभ आ जाता है।

लोभमें प्राणविनाश—एक भिखारीको भीख मांगते-मांगते बहुत धन जुड़ गया तो सुरक्षित घर न होनेसे वह धन फैलपुट रहता था, सो सब बेचकर ४ अशर्फियां खरीद लीं। अब रखे कहां उन अशर्फियोंको? कोई सुरक्षित घर भी नहीं था, कहाँ रखने जायें? अच्छा [illegible] कमरमें बांध ले। वहां भी डर है। सो सोचा—सबसे बढ़िया है पेटमें रख लें, खा जावे। [illegible] अशर्फियोंको पेटके अन्दर। उससे वह भिखारी मर गया। जब लोगोंने जला दिया तो उसके अशर्फियोंका ढेर मिला, तब समझमें आया कि इसने अशर्फियां खा ली थीं। [illegible] एक मुर्देको [illegible] २० रु० मिल गये। एक-एक रुपयेको [illegible]। उस तरहसे २० रु० जुड़ गये। भैया मुर्देके भी सम्यक्त्व

पैदा करनेकी शक्ति है । उसके भी विवेक होता है । जैसा मनुष्यका मन वाला भाव है तैसा ही चूहेका भाव है । चूहा अपने मनको खुश करनेके लिये रुपये निकाले । एकके ऊपर एक रखकर गड्डी वनाए और उसके चारों ओर नाच करे । एक दिन एक किसानने यह खेल देख लिया । सोचा ये रुपये चूहेके पास कहांसे आये ? देखा कि चूहा विलसे रुपये निकाल रहा है, २० रु० हैं । फिर अपने विलमें धर लिया । किसानने सोचा कि कलके दिन हम इन्हें उठा लेंगे क्योंकि चूहेके किसी कामके नहीं हैं । यह चूहा न किसीको दे सके, न किसीको कुछ खिला सके । इसके पास ये रुपये वेकार पड़े हैं । छुपकर दूसरे दिन देखा १५, १६, १७, १८ रुपये लाया, और विलमें २ रु० और लेनेको गया । इतनेमें किसानने गड्डी उठा ली और चम्पत हो गया । चूहेने जब रुपयोंकी गड्डी न देखी तो वहीं लोटकर उसने अपने प्राण छोड़ दिये । सो धन तो भैया ऐसा ही है । धन आत्माकी उन्नतिका कारण नहीं है ।

शल्यके परिहारमें शौचधर्मका विकास—शल्यका त्याग करनेसे यह धर्म प्रकट होता है । शल्य क्या है ? माया, मिथ्या, निदान । मिथ्या परिणाम न रखो, इतना दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि परिवार रहे न रहे, चाहे यह मायारूप खुद रहे न रहे, मगर देव शास्त्र और गुरुका यथार्थ श्रद्धान रखे । देव, शास्त्र, गुरुका गुणस्मरण ही हमारे लिये शरण है । सत्य श्रद्धाके सिवाय अन्य कोई मेरे लिए शरण नहीं है । इस पवित्र आत्मामें वह आत्मवल प्रकट होता है जिससे सद्गति प्राप्त हो । धनी कौन है ? जिसको संतोष व शांति है वह धनी है । जो अशांत है वह गरीब ही है । आत्मासे जिसे नफरत है, प्रभुपर अनुराग नहीं है वह इस संसारमें अशरण होकर यत्र-तत्र भटकता रहता है । तो यह जो अपना आनन्द घन स्वरूप है उसको पहिचानो, जितना जानन हो रहा है उतना ही मात्र मैं हूं । मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हूं । ऐसा परिणाम हो तो उसे ही शौच धर्म कहते हैं ।

सन्तोषसे ही दरिद्रताका नाश—एक फकीरको कहींसे पुराना पैसा पा गया । पुराना पैसा वड़ा वजनी होता था । किसीके मार दो तो खून निकल आये । चार पैसे एक छटांकमें चढ़ते थे । फकीरने सोचा कि इस दुनियामें हमें जो वहुत ही गरीव दीखेगा उसे ही हम यह पैसा दे देंगे । वह गरीव ढूंढने निकला । एक वादशाह दूसरे वादशाहपर चढ़ाई करने जा रहा था । सामनेसे गुजरा तो साधुने वह पैसा उस वादशाहकी झोलीमें फेंक दिया । वादशाहको गुस्सा आ गया । वोला यह पैसा क्यों मारा ? कहा महाराज मुझे यह मिल गया था । मैंने सोचा था कि मुझे इस दुनियामें जो सवसे गरीव दिखेगा उसे ही दे दूंगा । सो मैंने आपको दे दिया ।....तो क्या मैं गरीव हूं ?....हां महाराज ! तुम गरीव हो ।.... अरे मेरे पास सेना है, ५०० गांवोंका राज्य है, वैभव है, सव कुछ है, मैं गरीव कैसे ? ... कहा महाराज यदि आप गरीव न होते तो दूसरेकी सम्पत्ति हड़पने क्यों जाते ? गरीव तो वही है जिसके

तृष्णा लगी है। बादशाहको ज्ञान हो गया, झट सेनाको वापिस लौटा दिया। तो इन तृष्णा-वोंसे तो पूरा न पड़ेगा। इन बाह्य वैभवोंकी तृष्णाको त्यागो तभी शौच धर्मसे जीवन सफल हो सकता है। गृहस्थोंके लिए कहते हैं कि भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करें। उसके अर्थ शुद्ध प्रासुक जलसे स्नान करें। यह गृहस्थोंका काम है, मुनियोंका नहीं है। इस संसारको अनित्य जानकर एक मनसे शौचधर्मका पालन करो यही शौचधर्मका, उत्तम धर्मका पालन है।

भव मुणिवि अणिच्चो धम्म सउच्चउ पालिज्जइ एयग्गमणि।
सिवमग्गसहाओ सिवपददाओ अण्णु म चिंतहि किंपि खणि॥

जैनागमके अभ्यास द्वारा स्वभावदृष्टिका पौरुष करके शौचधर्मको उन्मत करनेका अनुरोध—इस समस्त वैभवको अनित्य जानकर इससे मोह दूर करके शौचधर्मका एकाग्रचित से पालन करो। यह शौचधर्म शिवमार्गस्वरूप है, शिवपदका देने वाला है। सो निर्मल पवित्र आत्मस्वभावके अतिरिक्त अन्य कुछ क्षणमात्र भी चिन्तन न करो। अकलंक और निष्कलंक का उदाहरण ले लो। उनका कितना बड़ा त्याग और निर्मल परिणाम था। उन्होंने जगत्में कितनी शांति पैदा की? आज अकलंक नहीं होते तो हमारा क्या हाल होता? जैनधर्मका नाम सुनकर जब फांसी दे दी जाती थी उस अवस्थासे अनुमान करो। आज हम सब इस पवित्र धर्ममय छत्रछायामें नहीं होते। यह शौचधर्म जैनागमके अभ्यासमें होता है। यह धर्म उत्तम-उत्तम गुणोंके मनन करनेसे होता है। यह सब शौचके, पवित्रताके उपाय हैं। वस्तुतः सब उपायोंमें स्वभाव दृष्टिका उपाय गर्भित हो तो उत्तम शौच प्रकट होगा। बाह्य पदार्थका त्याग करनेसे शौचधर्म होता है। बाह्य पदार्थ हैं तो अपनेसे भिन्न ही, बस श्रद्धा भी इसी प्रकार कर लो, धर्म हो जायगा। आत्माके निर्मल परिणामोंसे शौचधर्म होता है।

ज्ञानानुभवरूप पावन स्थितिसे अपनेको कृतार्थ करनेका संदेश—इस तरह उत्तम शौचधर्मका वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि जिनेन्द्र देवकी पूजा आदि करनेमें शौच धर्म प्रकट होगा। वहाँ भी जो ज्ञानानुभव हो वह शौच धर्म है। जिसकी बाह्य पदार्थोंमें ममता होगी वह भगवान्‌की पूजा करके भी वैभव नहीं पा सकता। जहाँ परपदार्थोंकी आशा लेकर भगवान्‌की पूजा की जाये वहाँ तो उल्टा पापबंध हो जाता है। पूजा तो अपने उपयोगको बाह्य से हटाकर, जिन भगवान्‌का आश्रय लेकर निज भगवान् आत्मामें उपयोग लगानेके लिये की जाती है और जहाँ उपयोग आत्मामें लगा वहाँ तो मोक्ष भी दुर्लभ नहीं, स्वर्ग आदिकी संपदा व लौकिक-वैभव तो तृणके समान है। जिनेन्द्रदेवकी निज भाव भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे शौच धर्म होता है। संसारको [illegible] जानकर एकाग्र चित्तसे इस शौच धर्मका पालन करो। [illegible] हो तो हे भव्यजन, अपने आपपर दया करो और समस्त पदार्थोंसे [illegible] और उन [illegible], स्वतन्त्र निज ज्ञानस्वभावकी श्रद्धा रखो।

लोभपरिहारमें शान्तिका अभ्युदय—सभी मनुष्य चाहते हैं शान्ति। शान्ति मिलती है सन्तोषमें। सन्तोष कब आता है कि जब लोभका परित्याग हो। पवित्रता कब आती है जब लोभका परिहार हो? देखो पवित्रता तो जब क्रोध न रहे तब भी होती, मान, माया न रहे तब भी है, चारों कषायें न रहें तब भी है, तो चार कषायोंके न होनेसे होने वाली अपवित्रताका नाम लिया गया है लोभ। तो मालूम होता है कि लोभका रंग बड़ा गहरा है। ऐसा समझिये कि जैसे धन तो है बहुत, मगर उसे खर्च न करें तो इस ही का नाम लोभ है। वह तो लोभ है ही, मगर अपने लिए बड़े अच्छे विषयसाधन जुटाये, बहुत बढ़िया खाना खाये, विषयोंसे जो प्रीति करे, उसे यह कैसे कहा जायगा कि यह निर्लोभ है? विषयोंके साधन जो जुटाये, विषयोंसे जो प्रीति करे, बस उसीका नाम लोभ है। ऐसा लोभ जहाँ बसा हो वहाँ सन्तोष कहाँसे हो सकता है? यह भी एक लोभकी स्थिति है। विषयोंमें इतना लोभ है कि अपने खानेके लिए भी खर्चा भली-भांति न कर सके, वह भी लोभी है। परपदार्थोंमें हित मानना, परका संचय करना, परसे अपना लाभ समझना—यह सब लोभकी दशा कहलाती है। जहाँ लोभ है वहाँ पवित्रता नहीं, सन्तोष नहीं, आनन्द नहीं। अब मोटे तौरसे देखो तो बतलावो लोभ करके क्या पा लोगे? सारी जिन्दगी लोभ किया तो त्याग न कर सके, दान न कर सके, खा पी भी न सके, जोड़-जोड़कर मरकर लाभ क्या मिलेगा? एक कविने बताया है कि दुनियामें सबसे बड़ा दानी तो लोभी है, कंजूस है, उसके बराबर कोई दानी नहीं हो सकता। कैसे? देखो—जो अपने लिए पैसा भी नहीं खर्च कर सकता? खूब धन जोड़-जोड़ कर जिन्दगीभर संचय किया और देखो एक साथ ही सबको दे गया। जब मर जाता है तो पूराका पूरा ही तो छोड़कर जाता है। एक अलंकारमें किसी कविने कहा है कि कंजूस सबसे बड़ा दानी है (हंसी)। तो भाई जब तक इस लोभका परिहार न हो तब तक पवित्रता और सन्तोष नहीं।

पारमार्थिकी पवित्रता निर्लोभता—शौच धर्म पवित्रताका अंग है जिससे कि सन्तोष प्राप्त होता है। दूसरी बात—कोई मनुष्य यदि शरीरको बड़ी सफाईसे रखे, खूब घंटों तेल साबुन आदिसे नहाये धोये तो भला बतलाओ शरीरको इतना अधिक साफ सुथरा रखनेसे लाभ क्या मिल जायगा? शरीरकी सफाईका अधिकाधिक ध्यान रखना यह भी एक लोभका अंग है, परद्रव्यमें मोह हो, आसक्ति हो वही तो लोभ कहलाता है। कहनेको तो यह है कि हम पवित्रता कर रहे हैं, मगर कर रहे हैं वास्तवमें अपवित्रताका काम? हाँ शरीरकी शुद्धि भी व्यवहारमें रहकर कुछ आवश्यक है, पर उससे अपने आपकी वास्तविक शुद्धि न समझें। अपनी वास्तविक शुद्धि है कि अपने आपमें अपने परमात्मतत्त्वका विश्वास हो, आत्मतत्त्वका ज्ञान हो, और आत्मतत्त्वका रमण हो। असली पवित्रता तो इसे कहेंगे। परवस्तुका सम्बंध

बनाकर पवित्रता नहीं हुआ करती, यह तो प्रसिद्ध है । मूलमें अपवित्र क्या है ? यह मोह । जैसे कोई बालक विष्टामें भिड़ गया तो लोग उसे अपवित्र कहते, ऐसे तो छगन, मोहन, मंगा आदि बालक छूते जाते वे सब अपवित्र कहलाते, पर मूलमें अपवित्र कौन है ? वही विष्टामें भिड़ने वाला बालक । अब बताओ, नालियोंमें जो गंदगी है, क्या वह अपवित्र है ? अरे वह गंदगी भी क्यों अपवित्र कही जाय ? उस गंदगीका भी मूल कारण है मोह । वे नाबदान, कीड़े मकोड़े, मांस मज्जा आदिके पिण्ड मूलमें अपवित्र नहीं रहे । आखिर ये सब भी बने इस मोह के ही कारण । मूलमें उस सारी गंदगीका कारण यह मोह ही रहा । यदि मोह न होता, मोही जीव इस शरीरमें न फँसता तो न मांस मिलता, न मज्जा, न बदबू आती । तो मूलमें गंदा रहा मोह । तो जो गंदा है उससे लोग घृणा नहीं करते । जिसके बलपर नाना तरहकी गंदगी हुई है उससे तो घृणा करते नहीं, पर जो गंदा नहीं है उससे लोग घृणा करते हैं ।

सत्य और असत्यके भेदविज्ञान द्वारा सत्यका लाभ— समयसारमें बताया—"णादूण असवाणं असुचित्तं विवरीदभावं च । दुक्खा दुक्खफलात्ति य तदो णियत्तिं कुणादि जीवो । अर्थात् ये आस्रव, रागभाव, द्वेषभाव, मोहभाव प्रेमके भाव ये सब पाप हैं । ये अशुद्ध हैं,अपवित्र हैं, गंदे हैं और विपरीत हैं, दु.ख देने वाले हैं । जो ऐसा जानता है वह अलग हो जाता है । इसके बारेमें सूरि जी ने टीकामें कहा है कि जले जम्बालवत्कलुपत्वेनोपलभ्यमानत्वादशुचयः खल्वाश्रवाः, भगवानात्मा तु नित्यमेवातिनिर्मलचिन्मात्र स्वभावत्वेनात्यन्तं शुचिरेव कौन चीज है अशुचि ? जैसे पानीमें कायी हो जाती है ना, तो यह बतलाओ कि उसमें अपवित्र पानी है कि कायी ?…अरे कायी अपवित्र है, पानी अपवित्र नहीं है । पानी तो ज्योंका त्यों निर्मल है, पवित्र है तो इसी तरह इस भगवान आत्माके साथ जो ये रागद्वेष मोह आदिक औदायिक भाव लग गए, वे तो अपवित्र हैं, पर यह आत्मा अपवित्र नहीं है । नीतिमें लिखा है कि— "मदिरेव मोदजनकः कः स्नेहः, के च दस्यवो विषयाः" अर्थात् मदिराकी तरह बेहोशी उत्पन्न करने वाली चीज क्या है ? प्रेम है, यह है मोह । द्वेषको पाप सब कहते, मगर ज्ञानी जन जानते हैं कि प्रेम तो इस द्वेषसे भी बढ़कर पाप है । अब बतलाओ जो इस रागद्वेष, इस प्रेम, लोभ और मोहके स्वप्नमें ही रह रहे हैं तो वह जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है ? जिन्दगी तो वास्तवमें वह है जिसमें परमब्रह्म निजस्वरूप ज्ञानघन इस ब्रह्मस्वरूपको अपने उपयोगमें रखा जाय । लोग तो यहाँ प्रेमका भी गुण गाते हैं, पर जैसे यहाँ किसीके १०५ डिग्री बुखार था, उतरकर १०१ डिग्री रह गया, और उससे कोई पूछे कि भाई अब आपकी कैसी तबियत है ? तो वह कहता कि अब तो तबियत ठीक है । अरे कहाँ ठीक है ? अभी तो दो तीन डिग्री बुखार है । तो जैसे उस १०५ डिग्री बुखारके सामने उसका बुखार कम है इसलिए तबियत ठीक कहा, पर अभी तो बुखार है, इसी तरह ये भोगोंके, व्यसनोंके प्रेम हैं, उनके सामने

यद्यपि सज्जनोंका प्रेम भला है पर ज्ञानी पुरुष ऐसे प्रेमको भी पाप बताते हैं। उन ज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें पुण्यपापरहित ज्ञानप्रतिभासमात्र अन्तस्तत्त्व रहता है। जहां रंच भी रागद्वेष मोह न हो वहां पुण्य न कहा जायगा, उसे तो प्रभुका अतुल आनन्द कहा गया है।

सात्त्विकवृत्तिमें तत्त्वका लाभ—शुद्ध आनन्दका अनुभव वहां ही प्राप्त हो सकता है जहां सुख दुःखको बराबर माना जा रहा हो। पुण्य पापके कारणभूत पवित्रता कहाँ है? सोचिये तो सही। देखिये श्रद्धामें लावो पूर्ण सत्। अगर सत्य श्रद्धा हो गयी तो श्रद्धामें कलंक बात न बनेगी। जो करते बने तो करो, मगर श्रद्धा सत्य ही रखियेगा कि वास्तविकता क्या है? पवित्रता क्या है? कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना सिरधा धरे, द्यानत सरधावान, अजर अमर पद भोगे, तो भाई श्रद्धामें विचलित न हो। प्रभुकी, शास्त्रकी, गुरुकी श्रद्धा कीजिए, मगर मूलमें अन्तस्तत्त्वकी श्रद्धा सत्य होना चाहिए कि जो शुद्ध ज्ञानमात्र है। प्रभु भी यही कहते हैं कि हे भक्त एक बार तू मेरी भी उपासनाका विकल्प छोड़ ज्ञानमार्गमें आ। मैं ज्ञानमय ही तो हूं। विकल्पको छोड़, निर्विकल्प अनुभूतिमें आकर तू अपने आपमें ठहर जा, वही तेरी वास्तविक पवित्रता है। वैसे तो ज्ञानज्योतिस्वरूप हैं हम आप। जरा शरीरकी निगाह छोड़ो और जो भीतर ज्ञानमय है वह कैसा निष्पाप, कैसा आनन्दमय है। मैं ज्ञानस्वरूप हूं जहां कष्टका नाम नहीं ऐसा यह आत्मा यह प्रभु और ऐसा यह भटक रहा है। क्यों भटक रहा है? कहते हैं कि यह लोभवश, विषयोंके प्रेमवश भटक रहा है, तो भाई विषयोंसे प्रीति छोड़ो, पवित्रता जगेगी, सन्तोष मिलेगा। जैसे आजकल सब परेशान हैं, पर बताओ आज तक क्या आवश्यकता किसीकी पूरी हुई? बड़े-बड़े नेताओंको ले लो, बड़े-बड़े धनिकोंको ले लो—क्या किसीकी आज तक आवश्यकता पूरी हुई? अरे आवश्यकतायें यों नहीं पूरी होतीं। आवश्यकतायें पूरी होती हैं आवश्यकताओंको खतम करनेसे। अरे इन बाह्य पदार्थोंका संचय कर करके क्या लाभ लूट लिया जायगा? एक अपने ज्ञानस्वभावकी आराधना ही अपने काम आयगी, बाकी तो सब बेकार है।

निन्दाका अपवित्रताहेतुत्व—एक बात और भी है कि इस अपवित्रताका कारण परनिन्दा है। परनिन्दा करते हैं लोग कषायवश। निन्दा करते समय दृष्टि जाती है दोषोंपर, और ज्ञानमें जहाँ दोष समझमें आ रहा है और वह भी द्वेषभावसे समझमें आ रहा है तो खुद कितना विह्वल हो गया, इसका ज्ञान नहीं है। आप कहेंगे कि यह तो विकट बात कही गई। यह निन्दा करनेकी आदत छूटे कैसे? यह निन्दा करनेकी आदत छूटेगी गुणियोंका गान करनेसे? गुणियोंके गुणोंका गान करके अपनेको पवित्र बनाओ, सन्तोष पावो और सत्य आनन्द पावो। बड़े बड़े महापुरुषोंके चरित्र गाते हैं ना, उन्होंने क्या किया? सब कुछ त्याग दिया, दीक्षित हो गए, सदाके लिए देहसे छूट गए, संसारसे मुक्त हो गए। जब संसारकी कोई भी

[illegible]

[illegible] जो ब्रह्मस्वरूप [illegible] चला आती है कषायोंके [illegible] । [illegible] भाई तप करनेकी बात नहीं कह रहे । [illegible], त्याग नहीं कर सकते, बड़े नवाब रहते हो, तपश्चरण नहीं कर सकते, मगर मेरी बात मान लो । [illegible] है वह कषायें हैं और इन कषायोंपर विजय होगी तो होगी आनन्द । [illegible] सिद्ध हो सकता है उसे तो सिद्ध कर लो । मान लो यह [illegible] । तपश्चरण नहीं कर सकते तो मत करो, मगर ज्ञानसे केवल अपने भावमात्रसे [illegible] ये कषायें जीती जा सकती हैं ?

कषायाधीन प्राणीको सर्वत्र आपत्ति—यदि कषायोंको न जीत सकेंगे तो हर जगह फजीहत है । तो यह बात अपनी समझ लो कि मोही होकर हम हर जगह फजीहत ही पाते हैं । मोही बनकर चाहें कि मेरेको क्लेश न हो, आफत न हो, तो यह कभी हो नहीं सकता । एक बार अपने चित्तको ऐसा बनाना होगा कि मेरा परमाणुमात्रसे मोह नहीं, अणु मात्रसे मेरा मोह न रहे । अपने आपको एक समृद्ध बनाना होगा, और न बनाया तो जैसे अभी तक रुलते आये वैसे रुलेंगे । तो यह मनुष्यभव मिला है एक ऐसा उपाय बनानेके लिए जिससे संसारमें फिर कभी रुलना न पड़े, संसारमें फिर कभी दुःख न उठाना पड़े । ऐसा उपाय बनाने में होवें प्रमादी तो फिर बताओ आत्मतत्त्व क्या रहा ? चित्तमें पवित्रताके साथ उदारता भाव लावो । जैसे पहिले क्षमाका संकल्प किया था, नम्रताका संकल्प किया था, अहंकार छोड़नेका संकल्प किया था ऐसे ही अब आप समझिये कि यहाँ मायाचार भी किसका करना ? किसको यहाँ अपनाया जाय, किसके लिए तन, मन, धन, वचन न्योछावर हो, ये कोई मेरी चीज नहीं हैं, ये सब चीजें मुफ्त ही मिली हैं और मुफ्त ही जायेंगी । तो हम जो भी धर्म कर्तव्य करें, जो हो सो हो, मगर वहाँ मायाचारीका व्यवहार न करें । जितना बने उतना करें, पर भीतरमें ऐसा ज्ञानप्रकाश पावें कि किसी बातपर छल क्यों करना ? यहाँ कोई बात सारकी नहीं, तात्त्विक बात है तो एक आत्मस्वरूप । ज्ञानस्वरूपकी क्या महिमा है ? यों ही थोड़े शब्दोंमें समझिये—कि हमारा जो कुछ हो रहा है वह ज्ञान हो रहा । दुःख क्या चीज ? कल्पना

बनायी जिससे दुःखी हुआ, तो यह ज्ञानकी ही तो कला है। ज्ञानकी ऐसी रीति जिससे सुख हो तो यह ज्ञानकी ही तो कला है और ऐसा ज्ञान करना कि जिससे शुद्ध आनन्द प्राप्त होता है तो यह भी ज्ञानद्वारा प्राप्त होता है। तो यह ज्ञान ही पिता है, ज्ञान ही रक्षक है, मेरा जो कुछ है वह मात्र मेरा ज्ञान है। अभी ज्ञान किसीका विगड़ जाय तो फिर कौन उसकी रक्षा करने वाला है ? एक घरमें किसी भाईका ही ज्ञान बिगड़ जाय तो उसकी कौन रक्षा कर सकता है ? ज्ञान ऐसा बनावें कि बाह्यमें व्यवहार न हो और अपने आपका जो ज्ञानानन्द स्वरूप है उसमें तृप्त रहा करें, उसके लिए चाहिए निरन्तर ज्ञानसाधना।

अकषाय ज्ञानस्वभावकी दृष्टिमें ही पवित्रता व आनन्दलाभ—ज्ञानकी दृष्टि होना वस यह ही पवित्रता है। कपायोंका परित्याग होना वस यह ही पवित्रता है। ऐसी पवित्रता कोई न रखे और कपायें करे तो कहते तो हैं सभी लोग कि नरकवास होता है पाप करनेके फलमें। इस वातको तो सभी लोग मानते हैं, पर कोई किसी रूप मानता, कोई किसी रूप। यह अपवित्रता एक ऐसी विपत्ति है कि यह जीव न यहाँ शान्त रह सकता, न अगले भवमें। भागवतके ५वें अध्यायके २८वें छन्दमें ऋषभदेवकी दीक्षाका वर्णन है। उससे उनके सारे जीवन का पता पड़ जाता है कि कैसा पवित्र मार्गके लिए उनका अवतार था ? आदि पुराणमें भी कहा है कि उन्होंने नग्न दिगम्बर दीक्षा धारण की। शरीर मात्र ही जिनका परिग्रह है, आकाश ही जिनका विस्तार है, ऐसा निःसंग होकर ठहरे थे। एक ही क्या अनेक दृष्टान्त हैं ऐसे जो संसारविषै सुख होता तीर्थंकर क्यों तजते ? तो यह विश्वास रखें कि अपने आपकी भलाई करना है तो कपायोंका परित्याग करना होगा। हाँ परिवारके बीचमें रहना पड़ता है इसलिए अनुराग करें, पर भीतरमें ऐसा समझते रहें कि मुझे तो यह अनुराग करना पड़ रहा है, पर इनसे अनुराग करनेमें मेरी रक्षा न होगी। सच्चा ज्ञान बना लें, उनके छोड़नेकी बात नहीं कह रहे, मगर जो सत्य बात है उसको समझ लें तो अपने आपकी रक्षा हो जायगी ऐसा समझें कि मुझे तो घरमें रहना पड़ रहा है, पर घरमें वँधकर रहना मेरा वास्तविक कर्तव्य न था, 'गले पड़े वजाय सरे' जब शरीरके बन्धनमें ही फंस गए, फंसना तो न चाहिए था, मैं तो ज्ञानानन्द मात्र हूं, मगर जब फंस ही गए तो चतुराईसे काम बना लें। जहाँ प्रेम करना पड़ रहा उसे भी समझें कि यह पाप है। जैसा जो कुछ करना पड़ रहा सो कर लें मगर उसे एक विडम्बना समझें, सच-सच समझनेमें क्यों इन्कार किया जा रहा ? श्रद्धा दोनों की एक समान है। यदि कोई ब्रह्मज्ञानी है तो ज्ञानी है, नहीं है ब्रह्मज्ञानी तो अज्ञानी है। भैया ! श्रद्धामें कमी न होनी चाहिए, चाहे संयमवृत्तिमें अन्तर हो, न साधु जैसा संयम धर सकें, किन्तु श्रद्धा साधुवत् हो। जैसे कटी पूँछ वाली गाय हो तो, लम्बी पूँछ वाली गाय हो तो दोनोंका प्रेम अपने-अपने बच्चेके प्रति बराबर है। हाँ एक अपनी लम्बी पूँछ डुलाकर प्यार

उत्तम सत्य धर्म

दयधम्महु कारण दोसणिवारण इहभवपरभवसुक्खयरु ।
सच्चुजि वयणुल्लउ भुवणि अतुल्लउ बोलिज्जउ वीसासयरु ॥

सत्य व्यवहार द्वारा सुपात्र बनकर सत्य अन्तरतत्त्वकी उपासनाका अनुरोध--सत्य धर्म दयाधर्मका कारण है, दोषोंका निवारण करने वाला है, इहभव और परभव दोनों स्थलों में सुखका करने वाला है। सो भैया दूसरेके हितकारी स्वहितकारी विश्वासपूर्ण वचन बोलकर अपना जीवन सफल करना चाहिये, और फिर गुप्तिबलके प्रयोगसे सत्य अंतरतत्त्वकी उपासना करनी चाहिये। निज आत्मपदार्थ जैसा स्वयं सत् है वैसा जानना, देखना अथवा कहना उत्तम सत्य है। धर्म निजका भाव है। अतः जिस ज्ञान अथवा वचनका स्वयंपर प्रभाव है वही उत्तम सत्य है अर्थात् सम्यक् विश्वास सहित लक्ष्यमें आया हुआ आत्मस्वभाव उत्तम सत्य है। उसको वचनोंसे कहना उत्तम सत्य वचन है। सत्यपालनसे पहिले यह निर्णय कर लेना आवश्यक ही है कि ध्रुवसत्य क्या है? यद्यपि अपनी-अपनी विवक्षाओंसे ध्रुव-अध्रुव विभाव पर्याय आकार सभी सत्य हैं, किन्तु ऐसा सत्य कौन है जो परके आश्रय बिना अहेतुक स्वयं सत्में होने वाला है। ऐसा सत्य यदि आत्मामें खोजा जाये तो वह चैतन्यस्वभाव है। यही अनादि अनंत अहेतुक एक स्वरूप है, इसके ही आलम्बनमें सिद्धि है। आत्मस्वभाव विकासके विपरीत जो भी वचन हैं वह सब असत्य हैं। इसी कारण तो एक जगह शास्त्रकारने यह

स्पष्ट किया है कि यद्यपि सद्गृहस्थ व्यापारविषयक बातको यथार्थ कहे तब भी वह अनात्मविषयक होनेसे असत्य है। उस असत्यका गृहस्थ त्यागी नहीं हो सकता। इसलिये वह सत्य-महाव्रती नहीं, किन्तु सत्याणुव्रती है। देखो भैया! जहाँ परविषयक बातको चाहे, जैसी हो तैसी कहे तब भी असत्य बताया है, फिर अन्य सफेद झूठोंको तो कहा क्या जावे? यह समस्त जगत् अपनेसे सर्वथा भिन्न है। इसके परिणमनसे हमारा परिणमन नहीं होता। किसी भी अन्य द्रव्यसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि सब अपने-अपने स्वरूपमें हैं, अपने चतुष्टयसे परिणमते हैं। लोक लौकिक असत्य भी इसी बाह्य जगत्को निमित्त-आश्रय बनाकर बोलनेका यत्न करते हैं। यहाँ न तो बाह्य अर्थ हितरूप है और न यह विभाव हितरूप है। केवल स्वभावसे विपरीत चेष्टा होनेसे संसारका क्लेश ही असत्यसे होता है, सत्य सुखका मूल है। सत्य से इस लोककी विपदायें भी शांत हो जाती हैं। प्रथम तो सत्यवादीपर उपसर्ग से होते हैं, किन्तु अन्तमें विजय सत्यकी ही होती है।

वैभवकी सत्यानुसारिता—एक सत्यव्रती राजा था। उसने एक नया बाजार खुलवाया और यह कह दिया कि बाजारमें जो सौदा नहीं बिके उसे हम खरीद लेंगे। एक आदमी शनीचरकी मूर्ति एवं अन्य भी मूर्तियाँ लेकर बाजारमें आया, उसकी और तो सब मूर्तियां बिक गईं, किन्तु शनीचरकी मूर्ति किसीने न ली, क्योंकि लोगोंको यह ख्याल था कि जिसके घर शनीचर आ जाता है उसके सम्पदा नहीं रहती। खैर, वह मूर्ति लेकर राजाके यहाँ गया कि महाराज! मेरी यह मूर्ति नहीं बिकी, तब राजाने उसके जो दाम मांगे, दिये और खरीद ली। कथा है कि शनीचरकी मूर्ति आते ही धन लक्ष्मी भागने लगी। राजाको कहा कि तुम्हारे घरमें शनीचर आ गये, इसलिए मैं जाती हूं। राजा बोला—जो तुम्हारी मर्जी पर मैं सत्यको तो न छोड़ूंगा। इसके बाद धर्म (पुण्य) जाने लगा, उसने भी राजाको सूचना दी। राजाने कहा कि मैं सत्यको नहीं छोड़ूंगा। तुम्हें भी जाना हो तो जा सकते हो। इसके बाद सत्य जाने लगा। तब राजाने कहा कि हे सत्य! तुम किसी प्रकार नहीं जा सकते। तुम्हारे ही लिये तो शनीचर खरीदा अर्थात् सत्य वचन निभानेको ही तो शनीचर खरीदा, तब तुम्हें जानेका अधिकार क्या है? सत्य निरुत्तर होकर लौट आया, तब धर्म और लक्ष्मीको भी लौटना पड़ा। यह अलंकारिक कथा है। तात्पर्य यह है कि सत्यके रहनेपर सभी गुण और वैभव वर्द्धमान रहते हैं।

अहित असत्य व्यर्थके वचनालापसे कलङ्ककी वृद्धि—असत्यके भावसे ही आत्मा कलङ्कित हो जाता है। फिर उसके अंतरङ्गसे क्रोध, मान, माया, लोभ छुपे-छुपे बढ़ते रहते हैं। जहां धर्मका प्रवेश नहीं होता वह सदा आकुल—व्याकुल बना रहता है। जिसके अन्दर अभी लौकिक सचाई भी नहीं है वह दूषित आत्मा तो धर्मपालनका पात्र ही नहीं, परमार्थ

नि हैं, मेरे पुत्र आदि हैं, मैं कुटुम्बको पालता हूं, मैं अमुकका विनाश कर दूंगा आदि अभि-
ाय असत्य है, परमार्थसे विपरीत है तब इन अभिप्रायोंकी प्रेरणाको निमित्त पाकर वचन
ोंका प्रकट होती है वह भी इसी हेतु असत्य है। परपदार्थ तो जैसा है वैसा ही है उसमें
ा सत्यपना है, क्या असत्यपना है? सत्यता असत्यता तो अभिप्रायसे सम्बन्ध रखती है।
तुके स्वरूपसे विपरीत अभिप्राय असत्य है, वस्तुस्वरूपके अनुकूल अभिप्राय सत्य है। वस्तुतः
आत्मा निज सर्व शक्तियोंका अभेद पिण्ड अखण्ड है, उसका कार्य-परिणमन उस ही में
में है और वह परिणमन शक्तिकी दशा है, सर्व पदार्थ इसी तरह अवस्थित हैं। किसी
र्थका किसीसे वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः कोई किसीको परिणमाता नहीं है। इस
स्वतन्त्र दृष्टिसे पदार्थको अद्वैत लखना, ऐसा ही ज्ञान होना सत्य है। अहो इस जीवने
तक इस सत्यका ध्यान ही नहीं किया, जिसके कारणसे ही संयोगी दृष्टि रखकर कर्तव्यका
बना रहा और क्लेश पाता रहा। परमार्थतः सत्यको पालने वालेके व्यवहारमें सत्यका
ार आता है।

सत्यधर्मकी लोकद्वयसुखकारिता—यह दयामयी धर्म इस लोकमें और परलोकमें सुख
े वाला है, यही सत्यधर्म है। इसके वचनोंकी कोई तुलना नहीं कर सकता। एक सत्य
दृढ़ तो रहो फिर देखो उसकी महत्ता नगरमें कितनी फैलती है? जरा-जरासे लाभके
झूठ बोल जाय, मामूली स्वार्थवासनाके पीछे असत्य व्यवहार करें, भला उस आत्मामें
ल कहाँ है कि स्वरूप समझ पाये और दूसरोंके लिये शांतिका कारण बने। सत्यताके
पर दृढ़ तो होना चाहिये। सच्चाई कहो, स्वच्छता कहो, निर्मलता कहो एक ही बात
ासी समय जिसके चारों कषायोंका अभाव हो गया उसके बाद आत्माकी बड़ी सच्चाई
होती है। यही धर्म है। कहनेसे कुछ नहीं उठता, करनेसे ही उठता है, और करनेका
खनेसे नहीं आता। अपने आपमें गुप्त रहकर जग गया हो सम्यक्त्व; तो यह साहस हुआ
है कि अपनी भलाईके लिये अपने आपको सच्चा बनाएं। इस सत्यकी तुलना जगतमें
हीं हो सकती। देखिये झूठका आजकल बोलवाला है। इसलिये सत्यकी चाल बहुत
है, किन्तु कोई सच्चाईपर तुला रहे तो कुछ दिन संकट सहनेके बाद उसके इतने प्रशं-
ग्राहक होंगे कि उसकी ख्याति नगर और देशमें फैल जायगी और वह सुखी हो
।

सच्चुजि सव्वहिं धम्मपहाणु, सच्चुजि महियलगरुव विहाणु।
सच्चुजि संसारसमुद्दसेउ, सच्चुजि भव्वहमण सुक्खहेउ॥

उत्तम सत्यकी धर्मप्रधानता—यह सत्यधर्म सर्व धर्मोंमें प्रधान है। अभी किसीके
ऐसा ख्याल जग जाय कि यह तो झूठ बोलता है फिर लोगोंकी दृष्टिमें उसका कोई

झूठ न बोलेंगे। अगर लाखोंका मामला आ जाय तो भगवान जाने। अगर किसीके प्रति यह दृष्टि हो जाय कि यह तो बड़ा झूठा है, उसके तो कोई जिम्मेदारी ही नहीं है तो उसका जीना और मरना समाजमें एक समान है। असत्य वचनसे क्लेश ही क्लेश दोनों भवोंमें होते हैं। एक सत्य वचन सबके मनके सुखको उत्पन्न करने वाला है। सत्यवादीसे सभी जीव सुखी रहते हैं। जो धोखा करे, विश्वासघात करे वह बड़ा निर्दयी होता है। चाहे दूसरेकी जान चली जाय, पर स्वार्थपूर्ण होना चाहिये, विषयवासनाकी सिद्धि होनी चाहिए, ऐसे भाववाले पुरुषोंने संसार का ठेका ले रखा है। संसार रीतेगा नहीं, वे इस संसारके ठेकेदार हैं।

सच्चेणजि सोहइ मणुवजम्मु, सच्चेण पवत्तउ पुण्णकम्म।
सच्चेण सयलगुणगण सहंति, सच्चेण तियस सेवा वहंति॥

सत्यसे मनुष्यजन्मकी सफलता—सत्यसे ही मनुष्यजन्मकी शोभा होती है। परमार्थ सत्य क्या है? सत्य केवल अपनी सत्ता मात्र चैतन्यस्वरूप जो निजभाव है उसमें श्रद्धा रखना, यह ही हुआ उसका सही ज्ञान रखना। भैया! ज्ञाताद्रष्टा रहनेका आचरण करो, ऐसी प्रवृत्ति की सिद्धि कराने वाला जो वचन है वही उत्कृष्ट सत्य वचन है। ऐसी सच्चाई उपयोगमें आ जाय तो उस मनुष्यका जन्म सफल है।

सत्यसे पुण्यकर्मकी प्रवृत्ति—सच्चेण पवत्तउ पुण्णकम्म—इस सत्य धर्मसे ही पुण्य कर्मोंकी प्रवृत्ति होती है झूठे पुरुषोंके धर्म व्रत और तपकी क्या कीमत है? मूलमें तो विपरीत बात बनी हुई है! व्रत और तपकी सिद्धि वहाँ ही है जहाँ सच्चाई आ जाय। यह सत्य आत्माका स्वभाव है। इस धर्मके पालनेके लिए कोई बड़ा श्रम नहीं करना है, केवल एक दृष्टि बनाना है, संकल्प करना है। तीन लोकका भी वैभव झूठ बोलकर मिल जाय तो उस वैभवसे शाँति नहीं मिल सकती है वह अशांतिका ही कारण है।

सत्यसे गुणचमत्कार—सत्यव्रतसे समस्त गुण उनके अन्दर प्रकट हो जाते हैं। एक बार अकाल पड़ गया, वर्षा न हुई तो लोगोंने यज्ञ किये, धर्मकार्य किए, पर सब कार्य विफल हुए। तो एक व्यक्तिने सलाह दी कि एक गरीब बनिया रहता है जो बेचारा मामूली नौन, गुड़ तौल करके अपने कुटुम्बका गुजारा करता है, किन्तु वह है पूर्ण सत्यवादी। राजा उसके पास जाये और प्रार्थना करे तो यह प्रजाका संकट टल सकता है। राजा गया उसकी झोंपड़ी पर, उसने विनय की कि आप ऐसा आशीर्वाद दें कि वर्षा हो जाय। तो उसने तराजूकी डंडी उठाकर कहा कि हे वर्षा बरस जाओ। कहने की बात थी। थोड़ी ही देरमें बदल आये तेजीसे और वर्षा शुरू हो गई। भैया, कोईसा भी नियम लिया जाय, बड़ी दृढ़तासे लिया जाय, तब फलवान होता है और जिसके दृढ़ताका नियम होता है उसकी परीक्षा पद-पद पर होती है, उसको ही उपसर्ग सताते हैं। जिन्हें रात दिन भोजनका त्याग नहीं है उन्हें क्या उपसर्ग

सतायेंगे । बाजार गये, रबड़ी तौलवाकर खा लिया । कहते हैं रात्रिमें अन्नका त्याग है। त्यागका क्या प्रयोजन है उसे समझे बिना ऐसा ही तो अनर्थ होता है । तो जिनके त्याग नहीं है उनको क्या उपद्रव आयेगा ? आप कहेंगे कि त्याग न करना भला है, कोई उपद्रव न आयेगा । अरे तो त्याग न करने वालेपर उपद्रव नहीं आता तो उत्कर्ष भी तो नहीं होता। वह तो कीड़े मकोड़े जैसी जिन्दगी है । किसी व्रतपर दृढ़ रहें तो खूब परीक्षाके लिये उपसर्ग आते हैं । परीक्षायें ही इन व्रतोंकी सिद्धिको प्रमाणित करती हैं । सच्चेण तियस सेवा वहंति- सत्यधर्मके कारण मनुष्य तो क्या देवता भी सेवा किया करते हैं ।

सत्यके घातसे घोर आपदाओंका भोग--सत्यघोषकी कथा खूब सुनी होगी । वे कहते थे कि मैं सत्य ही बोलता हूं । एक जनेऊ पहिन लिया और उसमें एक छुरी डाल लिया। कभी अचानक झूठ बोल दिया तो जीभ काट लेंगे, यों प्रसिद्धि कर दी । एक बार एक बड़ा सेठ कोई बाहर जा रहा था । उसके पास चार बड़े ही कीमती रत्न थे । सत्यघोषके पास रख दिया और कहा कि हम २०–२५ दिनमें आयेंगे तो वापिस ले लेंगे, रख दिया । सत्यघोषने सोचा कि हमारे सत्यका व्रत था, सो उसके फलमें ये चार रत्न हमारे घर आ गये । फल तो पा ही चुके, अब सेठ मांगेगा तो न देंगे । सेठ आया मांगने, पर न दिया तो सेठ विह्वल हो गया । वह राजाके महलके सामने पागल जैसा डोलता फिरे और कहे कि सत्यघोषने मुझे दगा दिया । मेरे चार रत्न चुरा लिये । केवल एक बातकी ही रटन लगाये था । राजाने सोचा यह पागल तो है नहीं । यदि पागल होता तो दसों तरहकी बातें बकता । अब राजाने सत्यघोषकी परीक्षा लेनेके लिये रानियोंसे कहा । रानियोंने जुवा खेलनेके प्रसंगमें ही सत्यघोषका जनेऊ और चाकू जीत लिया । रानीने दासीको भेजा जनेऊ और चाकू देकर कि जावो सत्यघोषके यहाँ उसकी स्त्रीसे कहो कि सत्यघोषने चार रत्न मंगाये हैं जो सेठके हैं । बहुत जरूरी काम है और निशानीके लिए यह जनेऊ और चाकू भेजा है । उसने रत्न दे दिये । काम निकल आया । अब सेठकी परीक्षा करें कि ये चारों रत्न इसीके हैं कि नहीं ? झूठे झूठे नकली रत्नोंमें उन चारों रत्नोंको मिला दिया । उस सेठने अपने ही चारों रत्न छांट लिए । उसने [illegible] दण्ड दिया । सत्यघोषसे कहा कि तुम्हारे लिये तीन दण्ड हैं, उनमें से जो पसन्द [illegible] एक दण्ड ले सकते हो । एक तो यह दण्ड कि तुम्हारे मल्ल ३२ घूंसे लगाये, सो [illegible] । दूसरा दण्ड यह है—थालभर गोबर खावो, तीसरा दण्ड है कि अपनी सारी [illegible] । उसने सोचा कि मुश्किलसे बढ़िया कौन दण्ड है जिसमें हमें विकल्प न हो, सो [illegible] लिये । मल्लके एक घूंसेमें ही टें बोल गये । तब कहा—महाराज ! हम पर [illegible] थालभर गोबर खानेका दण्ड सह लेंगे । पर कैसे थालीभर गोबर खावें ? [illegible] । अब तीसरा सब धन देना ही स्वीकार किया । तो झूठ बोलने वाला

तब तक ही समाजमें रह पाता है जब तक उसके झूठका पता नहीं पड़ता । अगर पता पड़ जाय तो सूखे हुये पेड़केसे पत्तेकी तरह इधर उधर डोलता रहेगा, उसे कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा, कोई व्यापार उसके साथमें न करेगा, कोई उसे पासमें भी न बैठने देगा । तो सत्य वचन ही इस मनुष्यकी शोभा है और इसका महत्व है ।

सच्चेण अणुव्वय महव्वयाइ, सच्चेण विणासिय आपवाइ ।
हियमिय भासिज्जइ णिच्चभाव णुवि भासिज्जइ परदुहयाणु ॥

सत्यसे सर्व व्रतनिष्पत्ति—इस सत्यसे ही अणुव्रत और महाव्रत उत्पन्न होता है । अगर देखलो, स्त्री पद-पद पर झूठ बोलती है तो पतिको उससे नफरत हो जाती है । फिर दाम्पत्य व्यवहार नहीं बन सकता । और पति पद-पद पर झूठ बोलता हो तो स्त्रीके हृदयमें घर नहीं रहेगा । पिता पुत्र परस्परमें झूठ बोलते हों तो उनमें परस्परमें बिगाड़ हो जायगा, फिर वे सुखमय जीवन नहीं बिता सकते और अणुव्रत महाव्रत आदि ये बातें उस झूठके होंगी ही कैसे ? इस सत्यसे ही सब आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । बड़े-बड़े शत्रु भी सत्यवादीपर प्रसन्न हो जाते हैं । कोई किसीका दुश्मन नहीं है । कोई ऐब करे तो दूसरोंको बुरा लगता है सो मान लेते हैं कि ये लोग मेरे दुश्मन हैं । यह नहीं समझा कि मेरेमें कोई अवगुण है सो दूसरेको नहीं सुहाते । हम व्यर्थ ही उनके प्रति कल्पना करते हैं ।

सत्यके प्रतापका अन्यपर सत्प्रभाव—दो बालक थे । एक बड़ा और एक छोटा । एक लड़केको पिताने पढ़ने भेजा । करीब सौ दो सौ कोस पढ़ने जाना था, अकेले चल दिया । रास्तेके खर्चके लिये ५ मोहर एक कथरीमें सी कर दे दिया । कपड़ेको सी करके दरी बतौर बना ली जाती है कथरी, उसमें ही ५ मोहरें सी दीं, और बता दिया कि जब कोई आपत्ति आये तब इन्हें निकाल लेना । चल दिया । कुछ दूर जंगलमें उसे चोर मिले । चोरोंने कहा, ठहरो । क्या है तुम्हारे पास ? कहा, मेरे पास बहुत कुछ है, लो इस गुदड़ीमें ५ मोहरें रखी हैं, ले लो । भला कोई बहुत सुरक्षित चीजको भी बता सकेगा ? चोरोंके हृदयका परिवर्तन हो गया । चोरोंने उस बालकके साथ और चोरोंको लगा दिया, कहा इस बालकको इस जंगलसे बाहर पहुंचा आवो । चोर जंगलसे बाहर उसे पहुंचा आये । सच्चाईपर आग्रह किये तुले रहो तो आखिर लोगोंका हृदय ही पलट जाता है । सच्चाईके आगे अविनीत पुरुष भी बदल जाता है । जिस समय कांग्रेसकी सभायें होती थीं, लाठी चार्ज कर दिया, पर सत्यका आग्रह करके लोग रहे सो शासनको झुकना ही पड़ा । दूसरोंको सच्चाईसे ही जीता जा सकता है, नहीं तो क्या तुम कोई बादशाह हो ? अरे आपमें गुण होगा, सच्चाई होगी तो दूसरे भक्त बन जायेंगे । क्या ! सभी जीव स्वतन्त्र हैं । कोई किसीके आधीन नहीं है जो किसी प्रयोजनके बिना दूसरों पर झुके । हमारा फलानेचंद नाम है, हमारे आधीन रहना ही चाहिये, ऐसे नाममें गुण नहीं

नहीं। यदि तुम्हें स्वयं शांति पसन्द है तो हित मित प्रिय वचन बोलो, अन्यथा संक्लेश ही रहेगा। एक बार जीभमें और दाँतोंमें वाद-विवाद हुआ। दाँत बोले अरी जीभ! तू बकवाद मत कर। क्या तुझे पता नहीं है कि बत्तीस दाँतोंके बीचमें है, जरासी देरमें ये कुचल देंगे तो मिट जाऊँगी। जीभ तब कहती है कि अरे दांतों! हममें वह कला है कि चाहूँ तो तुम बत्तीसों को तुड़वा दूं। बतलावो जीभमें क्या कला है? किसीको बुरा बोल दे, गाली दे दे, अट्टसट्ट वचन व्यवहार कर दे तो अभी मुक्के लग जायेंगे। बतलावो क्या लगता है? कुछ पैसे भी नहीं खर्च करना है, शरीरसे श्रम भी नहीं करना है, केवल ढंगसे बोलनेका काम कर लो, तुम्हारा जीवन सुखी हो जायगा। सब लोग तुम्हारे सेवक बन जायेंगे। एक वचन ही तो सम्हालना है, यही एक गुण अपनेमें लावो फिर देखो जीवन कैसा सुखमय है? दूसरोंको दुःख होवे ऐसे वचन कभी न बोलना चाहिये।

निष्ठुर वचनबाणका घाव—एक लकड़हारा था। जंगलमें लकड़ी बीन रहा था। रोजका काम था। एक दिन एक शेरके पैरमें काँटा चुभा था, वह कई दिनोंसे बड़ा दुःखी था। वह लकड़हारेके पास आया। पहिले तो लकड़हारा डरा कि यह मुझे मार डालेगा किन्तु बाद में जब शेरने कुत्तेकी तरह कमर टेककर पंजा सामने कर दिया और लकड़हारेने देखा कि काँटा चुभा है। तो निर्भय हुआ और उस कांटेको लकड़हारेने निकाल दिया। शेर अपनी भाषामें बोलता है कि तुम लकड़ीका गट्ठा मेरी पीठपर रख दो और जहाँ तुम चाहोगे हम ले जायेंगे। तो २५ सेर लकड़ी रोज ले जाता था। उसका मकान गांवके किनारेपर था। वह लकड़ी पीठपर धर दे और शेर डाल आवे। अब बजाय २५ सेरके ५० सेर बोझ रख दिया। फिर बेचारा ले जाकर पटक दे। शेरको क्या बोझ? तीसरे दिन दो मन लकड़ी लाद दी। इसी तरह रोज-रोज ज्यादा लकड़ी लादता जावे और शेर डाल आवे। इस तरह महीने भर में वह धनी बन गया। पड़ौसियोंने सोचा कि इतने जल्दी यह धनी कैसे बन गया? वह लकड़ी लेकर लौटा ही था कि पूछा। वह बोला कि मेरे हाथ एक गीदड़ (स्याल), गधा लगा है जिसकी वजहसे हम एक माहमें मालोमाल हो गये। लकड़हारेकी यह बात जब शेरने सुन ली तो उसके चिन्ता आ गई। (बड़े पुरुषोंसे चाहे कितना ही काम ले लो उससे नहीं थकते, मगर वचन बाणोंसे वे थक जाते हैं।) अगले दिन शेर लकड़हारेसे कहता है कि तुम्हारे हाथ में कुल्हाड़ी है, इस कुल्हाड़ीको मेरी गर्दनपर बड़ी तेजीसे मार दो। वह सोचता है कि क्या मामला है? वह घबड़ा गया। अगर तुम कुल्हाड़ी मेरी गर्दनमें नहीं मारते तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। सोचा कि अब तो हमारे प्राण जा रहे हैं। सो कहा अच्छा लेट जावो। शेर लेट गया। बड़ी जोरसे कुल्हाड़ी लकड़हारेने मार दी। मरते-मरते शेर कहता गया कि तुम्हारी कुल्हाड़ीकी धार मैंने सह ली, पर जो वचन तुमने बोला था वह मैं नहीं सह सका। आप

सोचते जावो। वचन आपके हाथकी बात है। आपका अपने वचनोंपर अधिकार है। जैसा चाहो बोल लो, किन्तु विवेक यह कहता है कि तुम अपनी जीभको सम्हालकर चलावो। आप जो वाक्य बोलते हैं उनको पहिले सोच लो फिर बोलो तो इस जीवनमें विजय पावोगे।

परबाहायर, भासहु ण भव्व, सच्चु णि छंडिज्जउ विगयगव्व।
सच्चुजि परमप्पा अत्थि एक्कु, सो भावहु भवतमदलण अक्कु॥

परबाधाकर वचनपरिहारमें ही सत्यका निभाव—हे भव्य जीव! दूसरोंको बाधा पहुंचाने वचन कभी मत बोलो। इस सत्यधर्मका पालन इसलिये मत करो कि हमारा पड़ोसी वातावरण अच्छा रहेगा तो सब लोग हमसे खुश रहेंगे। हमारे प्रति सबके हृदयमें घर रहेगा, इसलिये मत सत्य वचन बोलो, किन्तु इसलिये सत्य वचन बोलो कि असत्य वचन बोलनेका मेरा स्वभाव नहीं है। सत्य तो मेरा स्वरूप ही है। इससे मेरी आत्माका विकास है। आत्महितकी दृष्टिसे सत्य वचन बोलनेका यत्न करो। बाकी तो सब अपने आप हो जायगा। पड़ोसी खुश रहेंगे, आपके सेवक रहेंगे। यह तो अपने आप हो जायगा। पर सत्य बोलनेका उद्देश्य आत्महित, मोक्षका मार्ग होना चाहिये। यदि कोई सत्य भी दूसरोंको बाधा पहुंचाने वाला हो तो गर्वरहित होकर उन वचनोंका त्याग करो। सत्यका उद्देश्य है कि न खुदको बाधा पहुंचे और न दूसरेको। लकीरके फकीर थोड़े ही बनना है।

एक घर एक लड़कीका विवाह हो रहा था। उसके घर एक बिल्ली पाली हुई थी। भांवर पड़नेका समय था। वह बार-बार वहांसे निकल जाए। भले समयमें बिल्लीका निकल जाना असगुन मानते हैं। सो उसे टिपाड़ामें ढक दिया। टिपाड़ा वजनदार था उसको ढक दिया ताकि बिल्ली इधर उधर न जा सके। यह बात लड़कोंने देख ली। अब लगभग १५ वर्षके बादमें एक भांवर पड़नेका अवसर आया। बाप तो गुजर गया था तो लड़कोंने कहा ठहरो, एक दस्तूर और रह गया। एक बिल्लीको टिपारेमें बन्द करो तब भांवर पड़ेगी। अब तो बिल्ली ढूंढ़नेमें ही सारा समय गुजर गया। बिल्लीके ढूंढ़नेमें दो दिनका समय नष्ट हो गया। खैर किसी तरहसे भांवर पड़ीं। भांवर पड़नेमें दो दिन तो यों ही बेवकूफीमें व्यतीत हो गये।

सत्यसे आत्म-आर्जव धर्मकी निष्पत्ति—सत्य धर्मका प्रयोजन है कि खुदको शांति मिले और दूसरोंको भी शांति पहुंचे। सत्य ही एक परमात्मा है। यह भवरूपी अंधकारका दलन करनेके लिये सूर्यके समान है। देखो छलभरी बात भी झूठ कहलाती है। एक मनुष्य था। जंगलमें पहुंचा। शेर उसके पीछे लग गया। वह घबड़ाकर एक पेड़पर चढ़ गया। उस पेड़पर एक रीछ बैठा था। अब दोनों तरफसे उसके ऊपर आपत्त आ गई। एक तरफ शेर और एक तरफ रीछ। अब वह घबड़ाया। रीछने कहा, अरे मनुष्य तू घबड़ा मत। तू मेरी शरण आया है, मैं शरण दूंगा, कुछ देर हो गई। रीछको नींद आने लगी। वह पेड़पर सोने

लगा। इतनेमें शेर बोला, अरे मनुष्य यह रीछ दगावाज होता है। देख यह सो रहा है, इसको तू ढकेल दे। तू निश्चिन्त हो जायगा। नहीं तो मेरे जानेके बाद तुझे मार डालेगा। उसकी समझमें आ गया। उसे ढकेलने लगा। उसकी नींद खुल गई। विवश हो गया। खैर रीछने क्षमा किया, अब मनुष्यको नींद आने लगी, वह सो गया। शेर कहता है—अरे रीछ! देख मनुष्य बड़ा दगावाज है। तूने देख ही लिया है। इसको तू पटक दे, तेरा भी भोजन हो जायगा और मेरा भी। रीछ कहता है कि यह मनुष्य है, यह दगा कर जाय तो कर जाय, पर मैं पशु हूँ। मैं अपने रीछपनेमें बट्टा नहीं लगा सकता। यह मनुष्य मेरी शरणमें आया है, इसे कोई जोखिम नहीं हो सकती। भैया! कोई कोई पशु भी बड़े ईमानदार होते हैं। ईमानदारी तो मनुष्यमें आना ही चाहिए। इससे ही मनुष्यकी प्रतिष्ठा है।

सच्चुजि धम्मफलेण केवलणाणु वहेइ थगु।
तं पालहु भो भव्व भणहु ण अलियउ इह वयणु॥

इस सत्यधर्मके पालनेसे यह जीव केवलज्ञानको प्राप्त करता है, इस कारण हे भव्य! इस सत्यधर्मका पालन करो और रंच भी झूठ न बोलो।

कषायोंके अभावसे उत्तम सत्यकी अभिव्यक्ति—लोकमें उत्तम सत्य क्या है? जो उत्तम सत्य है वह बोलनेमें नहीं आता। वह तो केवल अनुभवमें आता है। क्या है उत्तम सत्य, सर्वोत्कृष्ट सत्य? सबके आत्मामें निरखो, अपने आपमें अन्तःप्रकाशमान सहज जो ज्ञानज्योतिस्वरूप है वह है सत्य, और उस सत्यका पालन क्या है ऐसी सत्यपर दृष्टि होनी, उसकी ओर धुन होना जिसमें सारे संकट समाप्त हो जाते हैं, यह है उत्तम सत्यका पालन। लेकिन इस ऊँची स्थिति तक जो नहीं पहुंचते हैं, घर रहते हैं, गृहस्थीमें हैं, सारे काम करने पड़ते हैं तो उन्हें क्या करना चाहिए? उनके लिए व्यवहार सत्यका उपदेश है। सच बोलो—सच भी कैसा है? जिन वचनोंसे प्राणियोंका अहित न हो, उनका हित हो, भला हो, वास्तविक कल्याण हो, ऐसे वचनके बोलनेका नाम है सत्य बोलना। अब चूंकि आत्महितसे सम्बंध है, जो बात जैसी है यथार्थ कह देना उसका भी नाम सत्य बोलना है और कभी-न कोई ऐसी स्थिति की बात बोले कि जिससे दूसरेका वध हो, विनाश हो, ऐसा कोई सत्य बोल दे, ऐसा सत्य होगा तो नहीं, पर कदाचित् कोई घटना हो, दूसरेका अहित होता हो तो ऐसे सत्यका भी निषेध है। वह सत्य नहीं, वह तो असत्य है। निषेध तो असत्यका है। सत्यका निषेध नहीं होता। जो वचन अपना और परका हित करे उसे सत्य वचन कहते हैं। ऐसी ऐसी घटनाकी स्थिति कब आ सकती है? जब क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषायें न जगायें। आज इस दसलक्षण धर्मका ५वाँ दिन है। अभी पिछले चार दिनोंमें क्या परिणाम बनाया? क्रोध न करना, मान न करना, मायाचार न करना, लोभ न करना। जब ये चारों कषायें शान्त

होती हैं तब वहाँ सत्य प्रकट होती है, और मोटे रूपसे देख लो कि झूठका आधार कषायें हैं जब कषायें रहती हैं तो असत्य बोलता है। कोई घमंडी रहता है तो असत्य बोल बैठता है मायाचारीको तो कितना असत्य बोलना पड़ता है ? उसकी विडम्बनाको तो वह मायाचारी पुरुष ही सहता है, जहाँ ये कषायें शान्त हो जायें वहाँ ही यह उत्तम सत्य प्रकट हो पाता है। ज्ञानार्णवमें लिखा है कि जब कषायोंका विषम ज्वर समाप्त हो जाता है, तो उस समय आत्मा को सत्यका दर्शन होता है।

संगसमागमको असार जानकर उत्तम सत्यके लक्ष्यमें आनेका अनुरोध—अहो, कैसे अनर्थ बातोंमें ये मनुष्य उलझे हुए हैं ? लोभमें, मायाचारमें, दूसरे प्राणियोंको अपना विरोधी माननेमें और दूसरे प्राणियोंको तुच्छ जानकर अपने आपका नाम प्रतिष्ठा चाहनेकी गरजसे अपनेको महान मानता है, कैसा उलझा हुआ है, बस इस उलझनमें परमात्मस्वरूपका दर्शन नहीं मिल पाता, आनन्द सही नहीं मिल पाता। यह जगत तो चार दिनकी चाँदनी है, और देखो यह लोक कितना बड़ा है ? जैन शासनमें तो इस लोकको ३४३ घनराजू प्रमाण बताये हैं, ७-७ द्वीप समुद्र होते यहाँ तक तो अन्य लोग भी कह देते हैं—इस लोकका कितना बड़ा विस्तार है यह चर्चा अलग है। मगर यह कहनेकी बात है कि यह लोक कितना बड़ा है। इस ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमें यह हजार, ५०० मीलका परिचय बना लिया तो यह कुछ गिनती भी रखता है क्या ? अरे यह अज्ञान अंधकार क्यों बनाया जा रहा, अपने सत्यको टटोलो—दुनियामें किसी चीजका कोई सहाय नहीं, कहीं भी जावो, कैसा ही कुछ कर लो कोई मददगार नहीं है और अपने आपके सत्यके दर्शन हो जायें, वह ज्ञानज्योतिस्वरूप, जिसमें विकारकी कालिमा नहीं, जिसमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं, किसी प्रकारका बोध नहीं, केवल एक शुद्ध ज्ञानप्रकाश वही तो मैं हूं, इस मर्मको कोई पा ले तो उसको सदाके लिए संकटोंसे मुक्ति हो जायगी, मगर यहांकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें जो उलझ गया वह संसारमें रुलनेका ही काम करता है। अपनेको बचाओ, दूसरोंपर क्या दृष्टि देना ? अपने आपमें अपनी दृष्टि बनाकर इस ज्ञानसुधारसका पान कर लें, यही उत्तम सत्यका पालन करना कहलायगा और ऐसे उत्तम सत्य देवता प्रभुताकी उपासनाके लिए हमारा व्यवहार सत्य हो तब तो हम इस सत्य प्रभुताके पात्र बन सकेंगे और व्यवहार हो जिसका झूठा है, बेईमानीका है, मायाचारका है वह उस प्रभुताके क्या दर्शन करेगा ? वे तो संसारके सुभट हैं। जरा अपनी कुछ दया करो, थोड़े समयको परिजनोंका, घरका जरा ख्याल छोड़ दो, इस मूलको तो जड़से उखाड़ना पड़ेगा। अनन्त जीवोंमें से कोई दो चार जीव क्या वे कुछ गिनती भी रखते हैं ? जैसे अनन्त जीव हैं वैसे ही घरके ये दो चार जीव हैं। इनसे मिलेगा क्या कुछ ? जरा अपनेको सम्हालकर विचार करो, मोह मोहमें ही मत पड़े रहो। बड़ी कठिनाईसे मिला है यह मनुष्यभव, बड़ी कठिनाईसे

प्राप्त हुआ है यह समागम। अहिंसा धर्मका जहाँ अपनेको वातावरण मिल रहा हो ऐसा यह समागम बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुआ। इसे यों ही मत खो दो। अपने प्रभुपर अन्याय मत करो, नहीं तो इसका परिणाम बड़ा कठिन है। किसी भी जीवको सताओगे तो उसका फल बहुत खोटा मिलता है, और ऐसे अपने इस अनन्त आनन्द ज्ञानके पुञ्ज इस प्रभुको सता रहे हो तो इसका फल कौन भोगेगा ?

विषयकषायकी उलझनमें प्राप्त उत्कर्षकी समाप्ति—देखो—कितना उत्कर्ष पाया, यदि विषयकषायमें उलझे रहे तो सब समाप्त, ऐसे ही जानो कि एकेन्द्रिय जीवसे निकलना ही बड़ा कठिन है, निगोद स्थावर पेड़, कीड़ा मकोड़ा आदिक हुए, फिर पञ्चेन्द्रिय हुए, इस आत्मदेवकी प्रसन्नतापर, निर्मलतापर। जैसे शुद्ध भाव होता गया, वैसे ही वैसे यह विकसित होता गया। कितना विकसित हो गया कि यह मनुष्य बन गया। अब यह मनुष्य सोचता है इस प्रभुपर अन्याय करना, खूब मौजसे खावो, खूब विषयसेवन करो, खूब मनमानी प्रीति करो, खूब आसक्तिसे रहो, खूब नेत्रोंसे देखो—बढ़िया-बढ़िया रूप देखो, बढ़िया-बढ़िया रागरागनी सुनो—अरे यह सब तो अपने इस आत्मदेवपर अन्याय किया जा रहा है, पर फल क्या मिलेगा इसी आत्मप्रभुका आशीर्वाद मिल जायगा कि पुर्नानिगोदो भव—फिरसे निगोद हो जा। ऐसी-ऐसी विडम्बनायें, ऐसे-ऐसे ऊधम जिसे लोग कहते हैं वाह वाह, बड़ा आराम है, बड़ा पुण्य मिला हुआ है। पर इस ऊधमका फल क्या मिलेगा ? एकेन्द्रिय। अपने आपपर दया करो। रहना वहाँ कुछ नहीं है। हमारा सत्य हमारे अन्दर विराजमान है। एक बार लक्ष्मण और परशुरामका आमना-सामना हुआ तो परशुरामने क्रोधमें आकर कहा—"रे क्रूर अधर्मी सम्हल देख अब मौत सीसपर आयी है। तू हट जा मेरे सम्मुखसे, करता क्यों ठिठाई है।।" तो लक्ष्मणने कहा—हे परशुराम जी—"करि विचार देखहु मन माही, मूँदहु आँख कितउ कछु नाहीं।।" तो भाई इन परपदार्थोंका संकल्प विकल्प छोड़कर अपने आपकी ओर दृष्टि करो, अपनी प्रभुताके दर्शन करो तो कहीं कोई कष्ट नहीं है। अरे जिन बाह्यपदार्थोंके पीछे इतना हैरान हो रहे वे अन्तमें तेरे कुछ काम आयेंगे क्या ? अरे ये सब तेरेसे छूट जायेंगे, और फिर ये तेरे हो भी कहाँ सकते ? तू तो कल्पनायें करके उन्हें अपना लेता है, उनमें ममता करता है। अरे ये सारे प्राप्त समागम कुछ भी सत्य नहीं हैं।

वास्तविक सत्यका दर्शन—सत्य क्या है ? सत्य है सम्यग्दर्शन। अपने आपके सही स्वरूपका पता हो जाना, बस यही सत्यका परिचय है। मनुस्मृतिमें भी एक श्लोक लिखा है छठवें अध्यायका ७४वाँ श्लोक है जिसका अर्थ है जो सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न है वह कर्मोंसे नहीं बँधता, और जो सत्यसे विहीन है, सम्यक्त्वसे हीन है वह संसारमें ही रुलता है। क्या है वह

सम्यग्दर्शन। नाम तो सुना है मगर सम्यक्त्व है क्या चीज ? इसकी जब निर्विकल्प हो अनुभूति बने तब वास्तवमें सम्यक्त्वका परिचय होता है। हम आपको जरा ऊधम छोड़ना है जरा ढंगसे बनना है, सब काम बन जायगा, उसके लिए यत्न करें। आदत बनी है ना ऐसी हमें तो मनपसंद बात सुनाओ, मनपसंद भोजन कराओ, मनपसंद चीज दिखाओ—अरे य मन जो तेरे ऊपर हावी है, यह तो तुझे कुचले डाल रहा है। तू अपने मनको प्रसन्न रखन चाहता पर अपने आत्माको ग्रहण करनेका भाव नहीं बनाता। अरे जिससे आत्मा प्रसन्न हो जाय ऐसा भाषण भी सुनना कठिन लगता है। तो भाई इस मनको प्रसन्न करनेकी बातें तो हर जगह सुलभ हो जायेंगी, गप्प-सप्प करने वाले अज्ञानी लोगोंसे भी मिल जायेंगी, पर इनसे तेरा कुछ भी पूरा नहीं पड़नेका। अरे तेरा पूरा पड़ेगा इन आचार्य संतोंके द्वारा कही हु वाणीका श्रवण करनेसे। इसके प्रति तो तेरी उत्सुकता ही नहीं जगती। अरे यदि इन आचा संतजनोंकी वाणी सुननेका मौका मिले तो बहुत कालमें दुःखी होता हुआ चला आया तेरा व परमात्मदेव प्रसन्न हो जायगा। बस यही तेरी सत्य बात है। उत्तम सत्य है तो यही अन्त स्तत्त्व। सत्यकी महिमा सबने गायी है।

असत्य पार्टी—असलमें झूठ क्या है ? इसका भी पता पा लो। जो विषयकषायोंव बढ़ावा दे वह झूठ है और जो हमारे आत्माको ज्ञान और वैराग्यसे सुवासित करे वह उत्त सत्य है। अब झूठोंमें ही परख की जा रही है। जो कम झूठ है उसका नाम सच है, जं असली सच है उसे असली कोई नहीं कह रहा, फिर भी लोकव्यवहारमें हम आप लोगोंक इतना तो संयम हो कि अप्रिय वचन मत बोलें—कटुक वचन, मर्मछेदी वचन मत बोलें। देख जितने भी जीव हैं वे सब स्वरूपदृष्टिसे एक समान हैं। कोई अगर विरुद्ध बन गया, उल्ट चल रहा तो उस बेचारे प्रभुका दोष नहीं है, वह तो हमारे स्वरूपके समान ही है, कर्मोंक कुछ ऐसा ही उदय है कि वह उस तरहकी अपनी प्रवृत्ति कर रहा है। इस मर्मछेदी वचन बोलनेके कारण बादमें बड़ा पछतावा करना पड़ता है। ये मर्मछेदी वचन बाणकी नोकसे भी तीव्र घाव करने वाले हैं। जरासी बातमें कषाय बना लेना, अपने मनको कुछ भी कन्ट्रोलमें न रखना यह तो कितनी अज्ञानता भरी बात है, अरे किसीको अप्रिय, कटुक कठोर शब्द मत कहें। देख तेरेमें मनुष्यपना, इन्सानियत कब आयगी जब कि तेरे अन्दर बैठे हुए क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायें शान्त हो जायें। ये चारों प्रकारकी कषायें इस जीवके लिए अहित कारी हैं। क्यों नहीं अपना प्रोग्राम बनाते, अपना उद्यम करते इन कषायोंपर विजय प्राप्त करनेके लिए ? क्रोध करके अपनेको दुःखी क्यों किया जा रहा, मान करके क्यों ऐंठ बगरा रहे ? अरे इससे तो न अपने खुदके कामके रहे और न दूसरोंके कामके रहे ? अपना एक ऐसा संकल्प बने कि मुझे कि मेरेमें ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कोई भी कषायें न जगें।

... तो मायाचारी करके आज बहुतसा धन जोड़ लिया तो भला बताओ उससे क्या पूरा पड़ेगा ? अरे पुण्यका उदय क्षीण होनेपर सब कुछ तेरे पाससे खिसक जायगा। कुछ भी तेरे पास न रहेगा। साधर्मी जनोंके साथ, परिजनोंके साथ अथवा गुरुजनोंके साथ, अथवा किसीके भी साथ यदि मायाचार किया जा रहा है तो उसमें तुझे क्या लाभ मिल जायगा ? अरे इन मलिनताओंके कारण तो तू अपने आपको धिक्कार। लोभसे भी तुझे क्या मिलेगा ?

अपने आपके इस आत्मप्रभुपर इतना अन्याय क्यों किया जा रहा है ? इस अन्याय करनेका परिणाम तो बड़ा बुरा होगा। अपने वचनोंपर कन्ट्रोल करो--इसके लिए मनुस्मृतिमें बताया है कि यदि कोई तेरे ऊपर क्रोध करता हो तो उसे तू अपशब्द मत कह। यदि अज्ञानीकी भाँति ही अपना भी कषाययुक्त व्यवहार बना लिया तो फिर ज्ञानी और अज्ञानीमें ... ही क्या रहा ?

वचनसंयमका महत्त्व---जिसने गाली दी उसकी गाली यदि सहर्ष सुन लिया, उससे ... भी क्षुब्ध न हुए तो समझ लो कि उसकी गाली उसीके पास जायगी। तो भाई सुखी ... होनेकी जो विधि है उस विधिके अनुसार चल लो। जहाँ हिंसा है वहाँ असत्य है और ... अहिंसा है वहाँ सत्य है। अहिंसा और सत्यका बड़ा सम्बंध है। अपना व्यवहार असत्य ... हटने और सत्यमें आनेका रहे। असत्य बोलनेका परिणाम इतना कठोर बताया कि इसने ... जिन्दगीभर जितना पुण्य किया है वह सब कुत्तेके बराबर हो जायगा। एक झूठके बोलने ... बताया है कि सारी जिन्दगीका पुण्य खतम हो जायगा। किसी प्राणीको अहितकारी वचन बोल दिया तो समझो कि उसने अपना सारा किया कराया पुण्य खतम कर दिया। अब क्या करना ? ज्ञानार्णवमें बताया है कि १—मौन रह जाओ—अगर आपको सत्यकी सिद्धि करना है तो मौन रहो, और २—बोलो तो सबके लिए हितकारी वचन बोलो, ३—सबके लिए प्रिय वचन बोलो और ४—फिर वचन परिमित बोलो—बस आपके वचन सही बन गए। कषाय है तो वचन भी वैसा ही बनेगा कषायके अनुरूप। इन कषायोंपर कंट्रोल करो. अपने अन्तःविराजमान सत्यके दर्शन करो, किसीको धोखा मत दो, किसीके साथ विश्वासघात मत करो। सदाचारसे चलना एक तपश्चरण है, और तपश्चरणमें आनन्द बरसता है। तपश्चरण उनका ही सफल है, आनन्द उनके ही बर्तता है जिन्होंने सत्यका दर्शन किया है और सत्यकी आराधनाके लिए ही तपश्चरण हो रहा है। तो फिर जो सीधी बात है, सरल बात है, सत्य बात है उसपर तो टिकते नहीं और जो असत्य बात है उसमें टिकते हैं, जिसके कारण अनेक प्रकारकी कवायतें करनी पड़ती हैं। तो असत्य बातमें टिककर उससे उत्पन्न हुआ दुःख तो सह लेंगे पर सत्यकी बातमें टिक नहीं पाते। यहाँपर जितना जो आनन्द (मौज) माना जा रहा है वह भ्रमका है। शुभचंद्राचार्य देवने इसी ग्रन्थमें कहा है कि देखो पूछनेपर भी इतनी

बातें मत बोलो । [illegible]
व्याकुल हो, जो [illegible]
दिखाने वाले हो, जो [illegible]
बातें ? मुझे चाहिए आत्मपरक बातें । [illegible]
प्रवृत्ति करायें और आत्मपावन [illegible]
प्रकाशमें अपने इस उपयोगको बनायें । [illegible]
पड़ रहा हो तो बस इस आत्माकी ही [illegible]
है तो मनपसंदकी बात मत सुनो ।

सत्यस्वरूप बननेके लिये [illegible] क्या [illegible] मिलना [illegible] करने को पड़ा हुआ है ? मिलना [illegible] पड़ा हुआ है [illegible] ? ये सब [illegible], परिजन हंसी मुस्कान ये मिलना जुलना, परिजन ये सब [illegible] चीजें हैं । ये [illegible] चीजें हैं । हम अपनेमें अपना काम बना लें, अपने आपमें अपना काम बनायें । अगर ऐसा [illegible] लगें कुछ लोग तो यही है धर्मकी प्रभावना, अपने धर्मकी प्रभावना । अपना धर्म क्या ? आ[illegible] का धर्म । आत्माके नाते से सोचो—मुक्तिका मार्ग एक ही है । मुक्तिका मार्ग एक ही दूसरा हो नहीं सकता । जैसे यहाँ सभी लोग चाहे हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, हों, सभी एक ही ढंगसे पैदा होते हैं और एक ही ढंगसे मरण करते हैं । वहीं ऐसा तो [illegible] है कि इन सभी मनुष्योंके पैदा होनेके ढंग और-और किस्मके हों । ऐसे ही सभी मनु[illegible] जो एक आत्माकी बात भीतरमें होती है वह भी एक ढंगकी है । जहाँ परका लोभ है [illegible] पाप है, जहाँ ज्ञानस्वरूपका दर्शन है बस वही धर्म है । अपनी दृष्टि यदि इन बाहरी पदार्थ[illegible] और होगी तो फिर इस शुद्ध ज्ञानज्योतिस्वरूपके दर्शन न होंगे । तो इन बाहरी बात[illegible] असहयोग करलें, अपने भीतर जो ज्ञानज्योति है उसका अनुभव होगा । कोई भी बात हो, बात जब हजारों लाखों कानोंमें पहुंचती है तो उस मूल बातमें बड़ी विभिन्नता आ जाती [illegible] तो भला हजारों लाखों वर्षोंसे जो बात चली आ रही हो उसकी मूल बातमें तो बड़ी वि[illegible]न्नता हो ही जायगी । आज कलिकाल है । जमाना कुछ दूसरे ढंगका है । पहिले जमाना [illegible] दूसरे ढंगका था । पहिले मूल बात कुछ और थी पर अब उसके रूप भिन्न-भिन्न हो गए, अ[illegible] प्रकारके धर्म, अनेक प्रकारके मत-मतान्तर बन गए । नहीं तो पहिले सबकी मूल बात [illegible] थी । वह मूल बात क्या थी कि अपने आपके अन्तःप्रकाशमान इस सत्यज्ञानस्वरूप आत्म[illegible] के दर्शन होनेकी बात । यही है सत्य, इसका पालन करना है और उसके लिए व्यवहार बन[illegible] है ऐसा मधुर सुन्दर कि अपनेको कोई आफत न आये और अपनेमें इस सत्यकी आराधना क[illegible]

उत्तम संयम धर्म

संयमस्वरूप जानकर संयमपालनका अनुरोध— आज दशलक्षण पर्वका छठवां दिन है। इसके अनुसार आज उत्तम संयम धर्मका वर्णन है। अविकारी निज ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि के स्वलम्बनसे स्वयं प्रकट होने वाले शुद्ध स्वभावमें स्थिर रहना, संयत होना सो उत्तम संयम है। सकल जीव जो प्राणोंके संयम, एक इन्द्रियसंयम और दूसरा प्राणसंयम, दोनों प्रकारके संयमोंका पालन करते हैं, ऐसा बड़े-बड़े मुनिराजोंका कथन है। संसारके जितने सुख हैं वे किसी अंश तक धर्मके आधीन हैं। वस्तुतः तो धर्मका फल मोक्षका आनन्द है। संसारके सुख विनाशीक हैं। आज कोई धनी है, कल देखनेमें आता है कि वही भिखारी बनकर घरघर भीख मांग रहा है। आज किसीके पुत्र प्रपौत्र आदिसे घर भरा हुआ है, कुछ ही दिनों बाद वह घर श्मशानकी भांति सुनसान हो जाता है। औरोंकी तो बात छोड़ो रामचन्द्र जी सरीखोंको भी देखो, जिनको सुबहके समय राज्य मिलना था, दोपहरके समय वे जंगलको चले जाते हैं। कोई भी जीव संसारमें यह नहीं कह सकता कि मैं सदैव सुखी हूं। आज सुखी है तो कल दुःखी हो जाता है, परन्तु खेद है कि इन प्रकारके विनाशीक सुखमें भी ममत्वबुद्धि कर करके यह महान पापी हो रहा है। ऐश्वर्य पाकर अपने आपमें नहीं रहता। फल क्या होता है—पापकर्म बांध लेता है। अधिकतर ये सांसारिक सुख पाप ही के कर्ता है। ऐसे सुखों की रुचि होना, इनमें सुखबुद्धि करना, यह विभाव मनुष्यजीवनको बर्बाद करता है। जितना कठिन मनुष्यभवको पाना है उतना कठिन और किसी भवको पाना नहीं है। देव भी इसको तरसते हैं, विवेकी मनुष्य भी तरसते हैं। इस मनुष्यभवमें ही संयम होता है। सब कुछ सुख सामग्री होते हुए भी अपने मनको उनकी ओरसे रोके रखना यह मनुष्यभवमें ही हो सकता है, देवोंमें नहीं। इसी भवसे ही मुक्ति होती है। मनुष्यजन्मके अतिरिक्त अन्य जीवनमें संयम धर्म नहीं होता। ऐसे मनुष्यजीवनमें संयमधर्म न पाला तो इससे कोई लाभ नहीं। फि मनुष्यजन्म पानेका लाभ क्या लिया? कहते हो बच्चोंको पालनेका लाभ क्या लिया? अ बच्चे-बच्ची तो तिर्यञ्चोंके भी होते रहते हैं। इसलिये मनुष्यभवको वृथा न खोकर संयम का पालन करना चाहिये।

संजम जणि दुल्लहु तं पाविल्लहु जो छंडइ पुणु मूढमई।
सो भमइ भवावलि जरमरणावलि किं पावेसइ पुणु सुगई॥

दुर्लभ मनुष्यजन्ममें दुर्लभ संयमके पालनेका आदेश——यह संयम धर्म लोकमें दुर्लभ है। सब कुछ चीजें मिल जाती हैं, पर संयम रूप प्रवृत्ति होना अधिक दुर्लभ वस्तु है। प्रथम तो सम्यग्ज्ञानका होना ही दुर्लभ है और सम्यक्त्व भी मिल जाय तो बड़े देवेन्द्र जैसे भी महान आत्मा सम्यग्दृष्टि इस संयमको तरसा करते हैं। जब तीर्थंकरके वैराग्य होने लगा तो लौकांतिक देव आये और सभी देवता आये। जब तीर्थंकर देव वनको जानेकी तैयारी करने लगे तो इन्द्रने पालकी सजाई जिसपर बैठाकर तीर्थंकरके वनमें ले जानेका प्रोग्राम था। भगवान बैठ गए। जब इन्द्र उस पालकीको उठाते हैं तो मनुष्य लोग मना कर देते हैं। तुम पालकीमें हाथ नहीं लगा सकते, क्योंकि तुम्हें अधिकार नहीं। इन्द्र बोला——हमने गर्भकल्याणक किया, हमें ही अधिकार है। दोनोंमें विवाद छिड़ गया। चार बड़े बुजुर्ग लोग न्याय करने के लिये बैठाल दिये। इन्द्रने अपना बयान दिया कि हम गर्भसे भगवानकी सेवा करते आये, जन्मके समय उत्सव मनाया, सब जगह हमारी मुख्यता रहती है। तो पालकी हमीं उठा सकते हैं। मनुष्य कहते हैं नहीं, यह हमारे घरके हैं, हमें छोड़कर जा रहे हैं तो हमारा ही अधिकार है कि हम इन्हें अपने कंधोंपर पालकी रखकर पहुंचा आवें। दोनोंके बयान सुने। बयानोंको सुनकर निर्णय देने वालोंने निर्णय दिया कि भगवानकी पालकीको वे उठायेंगे, जो भगवानके साथ-साथ भगवान जैसा हो सकेंगे। तब इन्द्र माथा झुकाता है, मनुष्योंसे भिक्षा मांगता है कि हे मनुष्यों! हमारे समस्त इन्द्रपनेकी सम्पत्ति ले लो, पर मुझे इंसानियत दे दो, मनुष्यत्व दे दो। यह मनुष्यभव कितना अमूल्य भव है, दुर्लभ है जिसे पाकर हम इसे विषयोंमें ही गवां देते हैं। इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर हे भव्यपुरुषों! इस संयमका पालन करो।

संयमकी शीघ्रकर्तव्यता——जब भगवान नेमिनाथके समवशरणमें द्वारिकापुरीकी कहानी सुन ली गयी कि यह १२ वर्ष बाद भस्म हो जावेगी तो श्रीकृष्णके दरबारमें सब लोग बैठे हुए थे, वहां श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न खड़े होकर कहते हैं-हमारा चित्त इस संसारमें नहीं है, सब त्यागकर हम उस एक ज्ञानप्रभुकी शरण लेंगे। लोगोंने समझाया, कहा बेटा तुम्हारे दादा बैठे हैं और बाप भी बैठे हैं, उस समय वसुदेव भी बैठे हुये थे, इतनी उतावल मत मचाओ। प्रद्युम्न कहते हैं जिसको संसारका खम्भा बनकर रहना हो रहे, पर मुझे तो इस संसारमें खम्भा बनकर नहीं रहना है। दरबारसे चल दिया। तो जब वह घर स्त्रीके पास पहुंचा और स्त्रीसे कहा कि हम विरक्त हो गये हैं इसलिये तुम सबको छोड़कर हम जा रहे हैं। तो स्त्री बोलती है कि झूठ बोलते हो। यदि तुम विरक्त हो चुके होते तो हमसे पूछनेकी क्या जरूरत थी? और तुम विरक्त हो या न हो, यह मैं चली। भैया! संयमके लिये जितनी उतावल हो उतनी उतावल करो। क्या पागल हो रहे हो? रात्रिका भोजन नहीं छोड़ सकते, अशुद्ध पदार्थ बाजारकी सड़ी-गली पूड़ी साग आदि नहीं छोड़ सकते। घट-

नायें दसों बता देते, हमें सर्विसमें ऐसी परेशानी होती है, रोजगारमें जाना पड़ता है। और जब पशुपक्षीकी गति मिल जाय या नरकगति मिल जाय तो किससे फरियाद करोगे ? जैसा जीवनको ढालना चाहो वैसा बन सकता है। सर्विस हो या दूर जाना हो। क्या पहिले के लोग संयमपूर्वक नहीं रहते थे ? लोटा डोर छन्ना उनके थैलेमें रहा करता था और थोड़ा सा कलेवा भी ले जाते थे। बहुत दिन लगनेकी संभावना हो तो कनक ले जाते थे। क्या नहीं पाला जा सकता है ? पर दिल बनाओ। यह मनुष्यभव बारबार नहीं मिलता और फिर इस संयमका पालन करना जो छोड़ देते हैं वे मूढ़ बुद्धि वाले हैं, जन्म मरणके चक्ररूपी संसारमें भ्रमण करने वाले हैं। वे सुगतिको कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

विषयरतिसे खुदकी बरबादी—गुरु जी सुनाते थे बनारसकी बात, जब वे पढ़ते थे। उनके मित्रोंने कहा चलो जी आज बढ़िया नाटक हो रहा है। हसीने नाटक था। गुरु जी बोले तुम तो बड़े आदमी हो, दो रुपया वाली सीटपर बैठोगे और हमें दो आनेकी सीटपर बैठना पड़ेगा।....नहीं, जहाँ हम बैठें वहीं तुम बैठना। हाथ पकड़कर जबरदस्ती ले गये। वहाँ देखा नाटक हो रहा था। स्त्रीका पार्ट करने वाली स्त्रियां ही पार्ट करती थीं। एक कोई दर्शक चक्कू साथमें लिये हुये था। उसने एक पर्चेपर कुछ लिख दिया। लिखी होगी कोई गंदी ही बात। उस पर्चेको स्टेजपर फेंक दिया। तो उस स्त्रीने जो स्टेजपर पार्ट कर रही थी उस पर्चे को बुरी तरहसे कुचल दिया और बुरी दृष्टिसे देखा। उसका दिल इतना हताश हुआ कि छुरी लिए था अपने बगलमें सो निकालकर अपने पेटमें छुरी भोंक ली। देखो यह विषयासक्ति कितनी गंदी चीज है। दसों घटनायें देशमें ऐसी ही रोज होती होंगी। जो मनुष्य जन्मको पाकर इस प्रकार विषयोंमें रति करता है वह संसारमें भ्रमण करता है। सोचो तो सही, अनन्तकालसे अब तक जन्म मरणके चक्रमें रह आये, ऐसी-ऐसी दशायें भोगीं, जिनका स्मरण आ जाय तो दिलमें पीड़ा पहुंचे और उसी तरह यह भव भी गवां दिया जो मरकर कुछ और हो गये, असंज्ञी आदि हो गये तो क्या लाभ मिलेगा ? इस संयमका पालन करके अपने जन्म को सफल करो।

संजम पंचिंदियदंडणेण, संजमजि कसायविहंडणेण।
संजम दुद्धरतवधारणेण, संजमरसचायवियारणेण॥

इन्द्रियविजयमें सर्वविजय—संयम होता है पंचेन्द्रियके विषयोंका दमन करनेसे। जो इन्द्रियविजयी है वही वास्तवमें विजयी है। पुण्यका उदय आया, कुछ बल मिला, समागम अच्छा मिला, वैभव मिला तो इसमें चाहे दूसरोंको सता लेना, दूसरोंपर बल प्रयोग करना ये साधारण बातें हैं। इनमें साहसकी बात नहीं। किन्तु अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लेना अपनी इच्छाओंपर विजय पा लेना यह है वीरताकी बात। एक राजा था, उसने सब राजाओं

को जीत लिया और अपना नाम रख लिया उसने सर्वजीत। सब लोग कहें सर्वजीत महाराज की जय। परन्तु उसकी मां न कहे सर्वजीत। एक दिन मांसे कहा कि दुनिया तो हमें सर्वजीत कहती है और तू मुझे सर्वजीत नहीं कहती है। मां ने कहा बेटा! तूने अभी सबको नहीं जीता है।····बतलाओ कौन राजा बाकी रह गया है? मैं अभी जीतकर आऊँ।····देखो तुमने अभी अपने मनको नहीं जीता। जिस दिन मनको जीत लोगे, इन्द्रिय विषयोंको जीत लोगे तब मैं तुम्हें सर्वजीत कहूंगी। जब तक मन नहीं जीता, विषयोंकी प्रवृत्तिको न हटाया तब तक वह सर्वजीत कैसे हो सकता है?

कषायपरिहारसे संयमकी साधना—संयम धर्म त्याग करनेसे होता है। गुस्सा होते जावो और पूजन करते जावो। पूजन करते जावो और दूसरेको आज्ञा देकर कहते जावो अजी वह चीज ले आवो, तो वह पूजन व्यर्थ हो गया। यह तो छोटेको हुक्म देना हुआ, अपनेमें मालिकपनेका भाव आया, दूसरेमें तुच्छताका भाव आया। अरे पूजनमें चाहे कोई सामग्री कम हो तो उसमें खेद नहीं मानना चाहिये। पूजनके समय तो बड़ी ही नम्रता रखनी चाहिये। भगवानको तो किसी सामग्रीकी आवश्यकता ही नहीं। आपने पूजनके समय बहुतसी सामग्री सजाकर रखी और किसी सामग्रीकी त्रुटि रह जाय तो उससे पूजन नहीं बिगड़ता। उसपर तो खेद हो और अपने घरका जो नौकर है उसपर नौकरकी सी दृष्टि रहे यह तो ठीक नहीं। पूजन करते समय तो ऐसी भावना भानी थी कि इस जगतके सर्व जीव एक समान हैं। सबके स्वरूपमें घुलमिलकर अपनेको खो देना था। ऐसा खो देना तो दूर रहा और वहाँ छोटे बड़ेपन का विचार आ गया तब क्या रहा? वह पूजन नहीं रहा। कषायका परिहार करके पूजन करना चाहिये। कषायका तो सर्वत्र परिहार करना चाहिये।

परवस्तुसंन्यास द्वारा संयमधारणका अनुरोध—भैया! चेत लो, सोच लो, हमें भी सब कुछ छोड़-छाड़कर चला जाना होगा। जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है वह अव्वल तो जीवनमें ही पुण्यक्षयसे बिछुड़ जायेगी अन्यथा मरणसमय तो हमें छोड़नी ही पड़ेगी। यदि इस समय इनमें ममत्व है तो छोड़ते हुए बहुत दुःख होगा। अतः हमारा कर्तव्य है कि वह स्वयं हमसे छूटे, उससे पहले ही हम उन्हें छोड़ दें और छोड़ क्या दें भैया, वह तो हमसे छूटी ही है, भिन्न ही है। हां श्रद्धा इस प्रकारकी बना लें कि वह सब हमारी नहीं हैं। सदैव हमें संयमधर्मपर अपनी दृष्टि रखना चाहिये। मुनिराज कहते हैं— हे भाई! यदि अपने मनुष्यजन्म की सफलता चाहते हो तो दोनों प्रकारका संयम धारण करो।

परमार्थसंयमका समीक्षण— आज उत्तम संयमधर्मका दिवस है। संयमधर्म ति[illegible] [illegible] अर्थात् अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञानस्वभावमय, अपनी ही आत्माको

लक्ष्य रखकर 'यह मैं हूँ' ऐसी अटल श्रद्धा होकर उसी वीतराग ज्ञानमय भावमें स्थिर हो जाना सो उत्तम संयमधर्म है। यह उत्तम संयमधर्म आत्माका स्वभाव है। यह धर्म देहकी प्रवृत्तिमें नहीं है, किसी क्षेत्रमें नहीं है, किसी कालमें नहीं है, किसी परपदार्थमें नहीं है, मेरा यह धर्म अर्हन्तदेवमें नहीं है, यह मेरे आत्मदेशके सिवाय किसी अन्यत्र देशमें नहीं है। हर समय मुझमें है, किसी विशेषकाल ही में नहीं है, मुझमें ही है किसी परपदार्थमें नहीं है, मेरे ही भावमें है किसी परके भावमें नहीं है। यह धर्म कहींसे आना जाना नहीं है। अपनेसे विभाव हटा दो; बस, यह धर्म अपनी आत्मामें रह जायेगा। ऐसे संयम धर्मको अन्यत्र लक्ष्य करके कैसे पाया जा सकता है? कोई समझे अर्हन्त भगवान्की पूजा करके इस धर्मको पा लूँगा। अरे भाई! वह पूजा भी तो इसीलिये है कि अर्हन्तदेवका लक्ष्य करके अपने आत्मदेव का लक्ष्य हो जाये। धर्म जब भी प्रगट होगा, अपने आपमें शुद्ध ज्ञानके विकासको लेकर होगा। धर्मके प्रगट होनेका और कोई जरिया नहीं। उत्तम संयम कैसे मिलेगा? आत्माके अनादि अनन्त ज्ञानके अन्तःप्रकाशमय रहने वाले उत्तम भावोंको उत्तम संयमधर्म कहते हैं, उन भावोंकी प्राप्तिसे ही उत्तम संयमधर्म मिलेगा। जिनको प्राणियोंपर दया होती है, वे प्राणी लौकिक संयमधर्मकी ही रक्षा करते हैं, किन्तु जिनकी अपनी आत्मापर दया है और विषयकषायों आदिसे विमुखता है, वे अपनी आत्मारूप संयमधर्मकी रक्षा करते हैं।

असंयमी जनोंको संयममें प्राप्त होने वाले आनन्दके अन्दाजाकी असंभवता—यह संयम दुर्धर तपस्यावोंको धारण करके प्रकट होता है। संयममें जो आनन्द होता है उसे असंयमी पुरुष कैसे समझ सकते? जब ज्ञानोपयोग अपने आत्माके शुद्ध ज्ञायकस्वरूपमें रमता उस समय जो प्रभुके आनन्दके सदृश जातिका सहज आनन्द प्रकट होता है उसको असंयमी रूप अथवा मिथ्यादृष्टि पुरुष अनुभवमें नहीं ला सकते। जिसको विषय विष ही रुचता है, जो घरके दो-चार जीवोंको ही अपना सर्वस्व मानता है, ऐसी वासना जो बनाये हुए हैं वह भगवानके आनन्दका और स्वरूपका क्या अंदाज कर सकता है? दो सहेलियाँ थीं। एक थी कहारिनकी लड़की और एक थी मालिनकी लड़की। दोनोंकी शादी हो गई। कहारिनकी लड़की देहातमें ब्याही गई और मालिनकी लड़की शहरमें ब्याही गई। एक दिन कहारिन मछलीका टोकरा लेकर उसी शहरमें बेचने गई। देर हो गई, शाम हो गई। सोचा यहाँ मेरी सहेली रहती है वहाँ ही रात बिताऊँगी, ठहर गई। मालिनने बड़ा आदर किया। भोजन कराया और सोनेके लिये बहुत बढ़िया पलंग बिछाया, कोमल गद्दा बिछाया और सुगंधित फूलों की पंखुड़ियाँ बिखेर दीं। बहुत दिनोंमें सहेली मिली है, सुखपूर्वक सोये। उस पलंगपर कहारिन लेट गई। उसे नींद न आये, मालिनकी लड़की बोली—बहिन! क्यों करवटें बदलती हो?...अजी सखी! पलंगपर क्या बिछा रखा है? इन फूलोंकी बदबूके मारे नाक फटी जा

ी चीजोंका भी हो सकता है। तो फिर वह नाकसे सूंघता है। जब सब सूंघ लिया तब मझा कि हाँ मैला है। तब लौट गया। ऐसे ही तीन तरहके विरक्त पुरुप भी होते हैं। क तो ऐसे विरक्त पुरुप होते हैं कि कहने मात्रसे ही विरक्त हो जाते हैं और भोगोंमें फंसने े पहिले ही अपने आपका स्वरूप निरखते हैं। अच्छा होना तो पहले पुरुपकी ही तरह होना । और दूसरे वे हैं जरा देख तो लें विपयभोग घर गृहस्थी। न सारकी चीज मिलेगी तो ोड़ देंगे। सो थोड़ासा वे फंसते हैं, और फंसकर देख लेते हैं, और सार नहीं नजर आता ो शीघ्र विरक्त हो जाते हैं, पर तीसरे वे हैं जो बहुत काल तक देखते हैं, पर कहते हैं अभी या देखा ? लड़कोंसे सुख नहीं मिला है, शायद नाती पोतोंसे सुख मिल जायगा। तो उन्होंने ौर प्रतीक्षा कर लिया, निरीक्षण कर लिया। खूब ठोकरें खा-खाकर बूढ़े हो जाते हैं और र भी ठोकरें खाते रहते मरते हैं।

स्ववश कष्टसहिष्णु बनकर संयमकी आराधना करके परमविश्रामका अनुरोध— ो अपना सुधार कर जायेगा, सो इस संसारमें ठीक है और जो अपनी दृष्टि अपनी आत्माके धारमें नहीं देगा, पापोंमें ही रत रहेगा, वह संसारमें भ्रमण करता ही रहेगा। इसलिये े मनुष्यभवको वृथा नहीं खोना चाहिये। देवता लोग भी इस भवके लिये तरसते हैं। ऐसे वसरको हाथसे न जाने दो और उत्तम संयमका पालन करो। जो मुनि हुये, देव हुए, सब प सबमें ही से तो हुये। क्या फिर आप भी वैसे ही मुनि और देव आदि नहीं हो सकते ? रे भाई, परवशतामें तो नाना दुःख सहने पड़ते हैं। जब कर्मकी थपेड़ लगती है तो क्या ा सहना नहीं पड़ता ? बीमार हो जाते हैं, महीनों-महीनों खानेको कुछ नहीं मिलता, ो पुत्र आदि मर जाते हैं। सब कुछ सहन करना पड़ता है और यदि कह दें कि भाई एक नके लिये उपवास कर लो या कुछ समय स्त्री-पुत्रोंसे अलग रहकर धर्मसाधन कर लो तो ने लगते कि हमसे तो नहीं बनता। भाई, जो जो परेशानियाँ परवश होकर सहनी पड़ती हैं, दे उनका शतांश भी अपने वश होकर सहन कर लें तो क्या अपना उद्धार नहीं कर सकते ? ाम आत्माका अपूर्व विश्राम है जिसमें दुःखका लेश नहीं है। ऐसे संयमको जो दो प्रकार है, भव्य जीवोंको पालन करना चाहिये। संसारमें संयमका पाना बहुत दुर्लभ है। सब छ शीघ्र ही प्राप्त हो जाए, परन्तु संयम प्राप्त नहीं हो जाता। जो मनुष्यभव पाकर वृथा ही दे वह तो महामूर्ख है। जिसके संयम नहीं होता वह संसारमें भ्रमण करता है। मनुष्य-न तो इसके पालन करनेके लिए ही मिला है। सब कुछ तो और किसी भी भवमें मिल गा। यदि मनुष्य इस धर्मका पालन नहीं करता तो मानो विधि यह जानकर कि इसको ुष्य जीवन देनेकी आवश्यकता नहीं, तिर्यञ्च गतिमें पटक देता है।

इन्द्रियविजय करके हृदयक्षेत्रको पवित्र बनानेमें आत्माकी सत्य विजय—संयमका

पालन करनेके लिये सबसे पहिले अपने हृदयस्थानको अच्छी तरहसे बनानेकी जरूरत है। वह कैसे बनेगा ? सम्यक्त्व भावनासे बनेगा। वस्तुका जैसा स्वरूप है, उसकी श्रद्धा करना। मेरा स्वरूप ज्ञानमय, कषायादि विकारोंसे रहित है, इस वास्तविक स्वरूपको जानकर अकषाय समझकर क्या पुरुष विषयकषायोंमें प्रवृत्त होगा ? जिसने अपने आपपर दया की अर्थात् अपने स्वभावकी रक्षा की, विभावको हटाया, उसने दुनियापर दया पाल ली। इसलिये अपने ज्ञानस्वभावको धारण करो, इन्द्रियदमन आदि सर्वविधि ज्ञानीके प्रकट होवेगी ही। यहां संयम पंचेन्द्रियोंको वशमें करनेसे होता है सो ज्ञानदृष्टि होनेपर ही इन्द्रियां वशगत हो जाती हैं। मात्र नामनिक्षेपसे वास्तविकता नहीं। जैसे सर्वजीत नामक राजाने बड़े आडम्बरके साथ एक दिन अपनी माताके पास जाकर यह पूछा था कि मां, तुम मुझे सर्वजीत क्यों नहीं कहती ? सारी दुनिया तो मुझे सर्वजीत कहती है। मां ने कहा कि अभी तू सर्वजीत नहीं हुआ है ? तो वह बोला कि क्यों नही हुआ ? सब देश मेरी आज्ञामें हैं। तब मां ने कहा कि तेरा सबसे बडा दुश्मन तो अभी तक तेरे सामने ही है, उसको जीतेगा तब सर्वजीत कहलायेगा। वह दुश्मन है इन्द्रियोंमें विश्वास। जिस दिन इस दुश्मनको तू जीत लेगा, उस दिन मैं तुझे सर्वजीत ही नही कहूंगी बल्कि तेरे चरणोंमें भी गिर जाऊँगी। सो भैया ! असली शत्रु तो हमारे पांचों इन्द्रियोंके विषय हैं। इन्हींको वशमें करो, अवश्य कल्याण होगा। सब संसार तुम्हारे चरणोंमें झुक जायेगा।

क्षोभके अभावमें संयमकी उपपत्ति—भैय्या ! सब कुछ हमें जो मिला, वह सब एक दिन यहीं रह ही तो जायेगा, किन्तु किसी न किसी हालतमें यह आत्मा रहेगा ही और अपने किए हुए भावसे सुख दुःख तो इसे भोगना ही पड़ेगा। इसलिये अपने आपके ज्ञानस्वभावको पहिचानो और विषयकषायोंसे और इन्द्रियोंकी दासतासे अपनेको बचाओ, यही श्रेयस्कर है। जिस समय अपने ही दर्शनज्ञानचारित्रपर श्रद्धा होगी, पर्यायोंमें रुचि या आत्मबुद्धि नहीं रहेगी तब दुनियाके द्वारा कितनी ही निन्दा किये जाने पर भी क्षोभभाव नहीं आयेगा। क्षोभके न होनेपर ही तो आत्मसंयम होता है। संयम दुर्धर तपके धारण करनेसे होता है। तब क्या क्लेशसे संयम होता है ? नहीं। संयम क्लेशके नाशसे होता है। तपस्यामें क्लेश नहीं होता, परन्तु यथाशक्ति तपस्या करो। शक्तिके अन्दर तप कर रहा है तो उसका अन्तर निर्मल ही बना रहता है। शक्तिसे बाहर तप करनेमें तो क्लेश होता है। यथाशक्ति तप करनेमें बड़ा आनन्द होता है। यह व्यवहार संयमका रूप है। बाह्य किसी पदार्थमें रत न होकर एक अपनी आत्मामें यही समझ रखना कि एक ज्ञाता दृष्टा होना ही सुखकी चीज है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी विकल्प हो वह सब दुःख है, यह अन्तःसंयम है।

इन्द्रियोंको विषयोंमें उपयोग करनेके कारण मानव-जीवनकी विफलताका चित्रण—

एक कविने एक रूपसे मनुष्य-जीवन खोने वालेको एक कवितासे समझाया। एक बार एक मनुष्य मर गया। मरघटमें उसकी लाश पड़ी, शृगाल आते हैं, खानेको तैयार होते हैं। किसी कविने गीदड़ (स्याल) को समझाया—हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ, नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ। अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरः, रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः॥ हे गीदड़! तू इसका हाथ मत खा, यह हाथ पापी है, इस हाथसे इसने कभी दान नहीं दिया। इसलिये यह खाने लायक नहीं है। इसके कानको भी मत छू, इसने कभी सरस्वतीका एक शब्द भी नहीं सुना। जिनवाणीके वचन कभी इस कानमें नहीं आये। अतः यह भी खाने योग्य नहीं है। इसकी आंख दिखनेमें तो सुन्दर दिखती है, परन्तु इसने कभी साधु, संत, महापुरुषोंके दर्शन नहीं किये, इसलिये ये नेत्र भी पापी है। तू इसका पेट भी मत खा, यह पेट अन्यायसे कमाये हुए धनसे भरा गया है, इसलिये यह भी तेरे खाने योग्य नहीं है। इसका सिर भी बिल्कुल अपवित्र है, इसने अभिमान में आकर, गर्वमें आकर हमेशा अपने आपको ऊँचा ही उठाये रखा। महापुरुषोंके सामने भी कभी नहीं झुका। इसलिए यह पापीका सारा शरीर ही तू मत खा, यह तो बिल्कुल अपवित्र है। यह पापीका सारा शरीर नीच है। इसी तरह यदि अपनी आत्माका ख्याल नहीं किया तो संकटमें ऐसा ही हमारा शरीर होगा। यह तो मात्र परके व्याजसे उपालंभ है, अपवित्र सो तो मलिन आत्मा ही है।

मनोनिरोध व विशुद्धानन्दसे संयमकी उत्पत्ति—यह संयम चंचल मनके रोकनेसे होता है। यथाशक्ति कायक्लेशसे भी उत्तम संयम होता है। कायक्लेश दुनियाको दीखते हैं, परन्तु पूज्यपाद स्वामी जी ने बताया—आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥ अर्थात् कर्मोंकी निर्जरा दुःखसे नहीं होती, कायक्लेशसे नहीं होती, आत्मा का निज आनन्द जब प्रगट होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है। जिसके परिणाममें निर्मलता आती है, उसे कायक्लेशका भान ही नहीं, परिणामोंकी उस निर्मलतासे परम आनन्दरूप रहे, ऐसे आत्मीय आनंदसे निर्जरा होती है। कायक्लेश नाम तो रागियोंकी ओटसे रखा गया। यह उत्तम संयम परिग्रहके त्याग करनेसे होता है। परपदार्थोंमें जिनको रुचि हो उनका इसी लोकमें विनाश हो रहा है। अपनी इन्द्रियोंको संयमित करो। सप्त व्यसनोंका त्याग करो। जुवां खेलने वाला, चोरी करने वाला, शिकारका शौकीन, वेश्यागामी, परस्त्रीलम्पटी, महापापी, मांसलोलुपी कभी भी संयम धारण नहीं कर सकता। इनके त्याग करनेसे ही तो संयम होता है। यह तो अभी उत्तम संयमका बहुत हल्का रूप है। वास्तविक उत्तम संयम तो ज्ञानस्वभाव निजरूपमें संयमित होनेसे ही होता है। ये इन्द्रिय विषय साक्षात् क्लेशोंमें पटक देते हैं, फिर भी विषयेच्छाकी मदिरा पीनेका पागलपन नहीं छूटता।

आरामतलबीके परिहारसे संयमकी उत्पत्ति—संजम गुरुकायकिलेसिएरा:— बड़े-बड़े कायक्लेशोंसे, तपोंसे यह संयम व्रत होता है। देखो गृहस्थीमें भी बड़ी आयकी चीज बनावोगे तो पहले बहुत कष्ट उठावोगे। कोई कारखाना खोला तो कई वर्ष तक सारा रुपया फंसाया, बड़े-बड़े कष्ट उठाये, सब कुछ उसमें ही लगा दिया तो वह धनार्जनकी एक तपस्या है। बड़े कायक्लेशोंसे उसको करनेपर फिर बादमें अच्छी आयकी सिद्धि होती है। सदाके लिये संसार के संकट मिट जायें, इतना बड़ा लाभ करनेकी बात चित्तमें चाहो और चाहो कि घरकी मौज भी अच्छा बनी रहे, और मोक्षमार्ग भी चलता रहे सो नहीं हो सकता है। मोक्षमार्ग संयमसे ही मिलेगा और संयमकी सिद्धिके लिए बड़े-बड़े क्लेश भी सहने होंगे। एक नौकर राजाका बिस्तर लगाया करता था। बहुत बढ़िया स्प्रिंगदार पलंग था, कोमल गद्देदार था। सोचा कि राजा साहब ऐसे पलंगपर रोज सोते हैं। अभी उनके आनेमें तो आधा घन्टेकी देर है। सोचा कि ५ मिनट खूब पैर पसारकर मौज तो मार लें कि यह कितना बढ़िया है। वह लेट गया, उसे २–३ मिनटमें ही नींद आ गई। आध घन्टे बाद राजा आया। उसको जगाया। राजाको गुस्सा आ गया कि मेरा पलंग जूठा कर दिया याने सो गया। खड़ा करके राजाने उसके बेंत लगाये जैसे ही राजा बेंत मारे तैसे ही वह हंसता जाय। राजाने कहा कि तू पिटता भी है और हँसता भी है। क्यों हँसता है? नौकरने कहा महाराज हम इस लिये हँसते हैं कि हम तो ५ मिनट सोये सो बेंत लग रहे हैं और आप रोज-रोज सोते तो न जाने क्या लगेंगे? यह विषयोंका मौज भोगते समय तो भला लगता है, मगर इसका परिणाम नियमसे खोटा होगा। खूब देख लिया होगा, कुछ समझ लिया होगा। कौनसा विषयोंमें सार मिलता है? यह संयम परिग्रह–पिशाचके त्यागसे होता है।

संजमु तस–थावर–रक्खरणेरा, संजमु सत्तत्थ परिक्खरणेरा।
संजमु तणु–जोय–णियंतणेरा, संजमु बहु–गमरणु चयंतएरा॥

जीवदया व तत्त्वपरीक्षणसे संयमकी उत्पत्ति—यह संयम त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे प्रकट होता है। जहां हिंसा है वहाँ संयम कैसे? संयममें प्रधानता दो चीजोंकी है—(१) प्राणसंयम और (२) इन्द्रिय संयम। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करो और किसी जीवकी हिंसा न करो। सो दो बातोंपर ध्यान जितना बन सके उतना ही आपका संयम है। यह संयम सप्ततत्त्वोंकी परीक्षा करनेसे होता है। जब ज्ञानकी महिमा, ज्ञानका चमत्कार समझमें आता है। सो यह जीव अपने स्वभावमें प्रवेश करे, क्योंकि परमार्थ संयम तत्त्वज्ञानसे उत्पन्न होता है। असंयमी को कष्ट ही व्यर्थ भोगना पड़ता है।

असंयमसे [illegible]—एक थानेदार था। सो उसका किसी पड़ोसकी स्त्रीसे प्रेम हो गया। सो एक वर्ष तो उस गांवमें गुजर गया। बादमें नवादलेका हुकुम आ गया। अब वह

था बड़ा परेशान। थानेदार उसे मनावे कि तू भी चल। कोई दूसरेके साथ कैसे चल दे? बड़ी चिन्तामें था। कोई समझदार दूसरी औरत वहां रहती थी जिससे थानेदारका परिचय था। उस औरतने पूछा कि क्या बात है? क्यों दुःखी हो? थानेदारने सारी बात बता दी। यह नहीं चलनेको राजी होती है। उसने कहा अच्छा हम समझा देंगी। उस कुटिलाके पास वह स्त्री गई। दो तीन दिन रही, बड़ी सेवा की और एक दिन बड़ी उदास हो गई। उस कुटिलाने पूछा आज क्यों उदास हो? वह बोली—तुम एक बात बतलाओ तब हमारी भीतरकी शल्य मिटेगी। बोली क्या? कहा यह बतलाओ कि तुम्हारी किस किससे प्रीति है।...लिख लो फलाने प्रसाद, फलाने नाथ! ऐसे ५० नाम लिख दिये। फलाने नाथ। अच्छी बात। लिखते-लिखते ६० नाम हो गये। और ख्याल करलो। ७० नाम हो गये। और भी ख्याल किया तो दो नाम और उनमें मिले, ७२ हो गये। सारी लिस्टमें उन थानेदार साहबका नाम ही न आया। थानेदारके पास वह गई, कहती है "कि मैं लिख देखा पत्तरमें, तू सत्तरमें न बहत्तरमें"। याने जिसके पीछे तू रात दिन स्वप्न देखा करता है उसकी लिस्टमें तेरा नाम भी नहीं है। उसके ज्ञान जग गया। समझ गया कि सब मायाकी बातें हैं। तो यह मन जब रम जाता है कहीं, तो उसके स्थिरता नहीं हो पाती है। यह संयम, ज्ञान हो तब यह स्थिरता रहती है।

यह संयम काययोगका नियंत्रण करनेसे होता है और बहुत-बहुत गमनोंका त्याग करने से यह संयम होता है। साधुओंका चातुर्मास क्यों होता है? यों कि वे गमन करनेमें, चलनेमें संयम होता है। इस मनुष्य-जीवनको क्यों व्यर्थ गंवा रहे हो? दूसरेके मोहमें पड़कर व्यर्थ अपनेको बरबाद कर रहे हो। उत्तम धर्म इन परिग्रहोंके त्यागसे, इस मूर्छाके त्यागसे होता है। संयम क्या है? संयम दो प्रकारके होते हैं—इन्द्रिय-संयम और प्राण-संयम। इन्द्रियोंके विषयोंमें न पड़ना इन्द्रिय-संयम कहलाता है और जीवोंकी रक्षा करना प्राण-संयम कहलाता है। दयालु आदमीका सर्व ओरसे यह प्रयत्न होता है कि किसी भी प्रकार जीवकी हिंसा न हो। दया अपनी प्रवृत्तिसे, अपने परिणामोंके उपयोगसे होती है। सब प्राणियोंपर दया करो। इससे पहले अपने ज्ञानस्वभावकी दृष्टिपर दया करो। जो अपने ज्ञानस्वभावकी दृष्टिपर दया करता है, उसके सदैव ऐसे परिणाम होते हैं कि मेरेमें मेरे स्वभावके विरुद्ध कभी भी रागद्वेष उत्पन्न न हो और जब रागद्वेष न होगा, समता परिणाम होंगे तब दूसरेका अहित उससे हो जाये, असम्भव है। इससे सब प्राणियोंपर दया हो जायेगी। यह संयम धर्म त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे होता है। सो उत्तम संयमके लक्ष्य वालेसे अनुचित व्यवहार होता ही नहीं, सो यह प्राणसंयम पालता ही है। यह संयम मन, वचन, कायके रोकनेमें होता है, सम्यग्ज्ञानकी प्रवृत्तिसे होता है। मिथ्यात्वमें पड़े रहने वाले लोग कभी संयमको धारण नहीं

कर सकते। अपने ज्ञानस्वभावको देखो, यह प्रभु स्वयं है। यह मोहकी प्रकृतियोंके वशीभूत हो रहा है। इसको इन प्रकृतियोंसे भिन्न समझो। यह समझो कि मेरा काम मेरे ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि रखना ही है। संयम त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे होता है, मन वचन काय योगोंके नियंत्रणसे होता है, गमनागमन त्याग करनेसे संयम होता है। उत्तम संयमको पालनेके लिये ही यह बाहरी संयम है। वास्तविक संयम तो निज आत्मामें लीन होना है।

धर्मसे आत्मरक्षा व पापसे बरबादी— संयम हमेशा अपने आपकी व परकी रक्षा करता है। लोगोंको ऐसा भ्रम हो गया कि देश बरबाद हुआ तो धर्मसे बरबाद हुआ। धर्मसे ही बरबादी कलह सब हुआ। लोगोंको ऐसा भ्रम है, परन्तु पाप ऐसा चालाक है कि वह सारी करतूत कर रहा है। वास्तवमें पापका फल ही यह निर्धनता है, धर्मका फल नहीं। एक बन्दर था। वह एक गांवमें एक किसानके घर, जिस समय किसान खेती करने जाता था, आता था और आलमारीके अन्दर रखी उसकी रोटियाँ खा जाता था। किसानके पास तीन बैल थे। उनमें से दो तो वह अपने साथ खेतीके लिये ले जाता था और तीसरेको घरपर ही छोड़ जाया करता था। वह बन्दर नित्य ही उस किसानकी रोटियाँ खाकर उनका धौनधान जो बचा रहता था उसे उस बैलके मुंहपर लीपकर भाग जाता था। जब किसान लौटता था तो उस बैलके मुंहको धौन लगा देखता तो समझता कि बैल उसकी रोटियाँ खा गया, यह समझकर उसे मारता था। रोज इसी तरह होता था। एक दिन पड़ौसियोंने उससे कहा कि भाई, तुम क्या करते हो? तो उसने कहा कि यह बैल रोज ही आलमारीमें से मेरी रोटियाँ निकालकर खा जाता है, इसलिये मैं इसे पीटता हूं। पड़ौसी बोले कि बेवकूफ, कहीं इस बैलका मुंह भी आलमारीमें जा सकता है? तब उसने कहा कि इसके मुंहपर धौनधान कैसे लगा रहता है? उन्होंने कहा कि एक दिन छिपकर इस बातको देखो। उसने एक दिन वैसा ही किया, कहीं छिप गया। वह बन्दर रोजकी तरह समयपर आया और आलमारी खोलकर रोटियां खा गया था धौन बैलके मुंहपर लगानेके लिये जाने लगा। तब किसानकी समझमें सारी बात आ गई और उसने बैलको पीटनेके बजाय उस बन्दरको ही पीटा। उस बन्दरकी तरह ही यह पाप भी चालाक है। खुद खोटे काम कराता है, कितने-कितने पाप कराता है और नाम कराता है धर्म का। तीर्थक्षेत्रोंपर जाकर देखो। कितने जोगी साधु धूनी रमाये बैठे रहते हैं और पुजापे पाते परन्तु उनमें से बहुतोंके अन्तरंगमें विषय कषाय भरे रहते हैं, हजारों स्त्रियोंके हरणके र तरह-तरहके किस्से सुननेको मिलते हैं। काम खुद करते हैं और नाम है भगवानका बद- म। इसी तरह हमको विषयकषाय खुदको भोगने हैं और हम नाम लेते हैं धर्मका। जगतके न इस पापके कारण मिथ्यात्वमें भ्रमण करते हैं। इसलिए संयम धारण करो। दूसरेके

आप गर्भित हो जाते हैं। यह मनुष्यभव ही बिना संयमके व्यर्थ है। जिसके संयम होता है उसको सब कुछ मिलता है अर्थात् आत्म-संयमीको कुछ चाह ही नहीं और जहाँ चाह नहीं, वहाँ सब कुछ मिला ही समझो। इस मनुष्यभवके लिये इन्द्र और देवता भी तरसते हैं। ऐसे मनुष्यभवको पाकर व्यर्थ न खो देना चाहिये। जिस पर्यायको इन्द्र भी तरसते हैं उसको क्यों व्यर्थ खो रहे हो और देवोंके मुकावले में मनुष्यभवकी जो विशेषता है वह संयम ही के कारण तो है। संयमके विना यह जीव दुर्गतिमें पड़ जाता है। जितनी जल्दी संयम धारण कर सको उतना ही अच्छा है और जितनी देर करोगे उतना ही बुरा है। शरीरको खिलाओ भी, पिलाओ भी, पर जीनेके लिये, न कि जीओ खानेके लिये। शरीरसे ममत्व इतना न करो कि दिन रात इसको ही संवारनेमें लगे रहो! भैय्या! इसे थोड़ा भोजन देकर आत्म-कल्याणका काम लो, तपस्या करो, संयम धारण करो तब यह अपवित्र शरीर तुम्हारे कल्याणमें साधक हो जायेगा। इसलिये शरीरसे ममत्व छोड़कर जल्दी ही संयमको धारण करो। संयमके विना सर्व आयु व्यर्थ ही है। इसलिए जितनी जल्दी वाह्य पदार्थोंसे मुक्ति पाओ उतना ही अच्छा है, क्योंकि देहकी शिथिलता होनेपर फिर चित्त प्रायः अस्थिर हो जाता है।

संजमु अणुकंप कुणंतएरोण, संजमु परमत्थ-वियारणेण।
संजमु पोसइ दसणहँ पंथु, संजमु णिच्छय णिरु मोक्ख-पंथु॥

अनुकम्पा और परमार्थविचारणसे संयमकी प्रकटता—यह संयम अनुकम्पा करनेसे प्रकट होता है, दयासे प्रकट होता है जिसके हृदयमें दया नहीं है वह हृदय क्या है? वहाँ कैसे संयम होगा? हृदयमें दया बसी नहीं, कोमलता आई नहीं है तो संयम कैसे प्रकट हो सकता है? कषायोंपर विजय पानेकी इच्छा हुई नहीं है, प्रभुके गुणोंका अनुराग पहिचाना नहीं है तो धर्मका रूपक बनानेसे तो कहीं सिद्धि नहीं हो जाती। जब इतना कष्ट सहते हैं नहाया, पूजन किया, स्वाध्याय किया, जाप किया और फिर खाया। इतने-इतने कष्ट सहते हैं, तो अंतरंगमें एक दयाका परिणाम और बढ़े, सब जीवोंको अपने स्वरूपके समान समझने की भावना और बने। अपनेको दुःख हो जाय तो हो जाने दो, पर दूसरोंको दुःखी न करो। कहीं ऐसा नहीं होता कि झट दुःखी हो जाय। जो गरीवोंको देखे और उसके ऐसी अनुकम्पा बस जाय है तो वह संयममें प्रगति करता है। संजम परमत्थु-वियारणेण—यह संयम परमात्म-स्वरूपका विचार करनेसे प्रकट होता है। यह संयम सम्यग्दर्शनके मार्गको पुष्ट करता है। संयम ही एक मोक्षका मार्ग है। दृष्टि छूटे, कहांसे? विषयोंसे। देखो कष्ट तो मिलता है विषयों में दृष्टि लगानेसे ही। अतः विषयोंकी दृष्टि छोड़ दो तो कष्ट छूटेगा। दुःख छूटना तुम्हारे ही हाथ है।

संजमु विणु णर-भव सयलु सुण्णु, संजमु विणु दुग्गइ जि उववण्णु ।
संजमु विणु घडिय म इत्थ जाउ, संजमु विणु विहलिय अत्थि आउ ॥

संयमके बिना नरभवकी व्यर्थता और शुद्धानन्दका अलाभ—संयमके बिना यह नर-भव बेकार है, शून्य है। जिस उपयोगमें वासना बसी रहती है उस उपयोगमें क्या शांतिका मार्ग दीख सकता है ? यह बात कठिन ही नहीं, असम्भव है। एक हलवाईके घरमें बसने वाली चींटी नमक बेचने वालेके घरमें रहने वाली चींटीके पास पहुंची। मिठाईकी चींटी कहती है बहिन क्या करती हो ? यह खारा नमक खा रही हो। चलो हमारे साथ, हम तुम्हें मीठा-मीठा खिलायेंगी। उसने मना कर दिया। चींटियोंके मन तो नहीं होता है, पर कथा कह रहे हैं। नमककी चींटीने कहा कि तुम मुझे बहकाती तो नहीं हो ?....नहीं-नहीं बहिन बहकाती नहीं हूं। बड़ा आग्रह मिठाईकी चींटीने किया तब वह नमकमें रहने वाली चींटी राजी हो गई। अच्छा, चलो। चली तो मगर अपनी चोंचमें एक दिनका भोजन लेकर चली। नमककी डली इसलिये साथमें ले ली कि अगर कहीं भोजन न मिले तो उपवास तो न करना पड़ेगा। एक दिन तो काट लेंगी। क्योंकि उपवास करनेकी सामर्थ्य नहीं है। पहुंच गई। अब मिठाईकी चींटी कहती है बहिन कैसा स्वाद आया ? तो वह कहती है कि वही स्वाद आ रहा है जो पहिले आता था। कहा, यह कैसे हो सकता है ? इसको तो बड़े-बड़े राजा लोग पसन्द करते हैं। बहिन हमें तो वही बढ़िया-बढ़िया स्वाद आता। अरे तू अपनी चोंचमें तो नहीं कुछ लाए है ?....हाँ एक दिनका भोजन लिए हूं।....अरे उस एक दिनके भोजनको अलग कर दो तो इस मिठाईका आनन्द आयगा। आग्रह करनेसे डलीको अलग रख दिया और खाया तो उसे मीठा स्वाद मिला। अरी बहिन तू कबसे ऐसा खा रही है ? शक्करकी चींटी बोली, मैं जबसे पैदा हुई तबसे खा रही हूं। यों ही चींटीकी तरह ये संसारके मोही जीव अपने चोंचमें अपने उपयोगमें विषय कषायोंकी डली, नमककी डली रखे हैं, फिर बतलावो उनको बोधि समाधिका मधुर रस कैसे आये ? अरे जरा इस विषयवासनाको निकाल दो और अपने उपयोगमें उस शुद्ध चैतन्य प्रभुके स्वरूपको रख दो तो देखो तुम्हें अलौकिक विलक्षण आनंद आता कि नहीं आता है।

मिथ्याभाव मदिरासे बेहोश जीवोंको आत्माकी सुधकी असंभवता—संयम बिना इस जीवकी दुर्गति ही होती है। असंयम अव्रत, पाप, मिथ्यात्व ये सब मदिरा हैं इनमें नशा होता है जिनमें आसक्त होकर यह प्राणी अपने स्वच्छन्द मनके माफिक अपनी प्रवृत्ति करता है और आत्म-हितकी प्रवृत्ति करनेमें असमर्थ हो जाता है। करें क्या ? जब देखा नहीं है अपनी ज्ञायक प्रभुको तो उसके भक्ति जगे कहांसे ? एक बार एक राजा गांव घूमने गया। गाँवके गँवड़ेपर उसको एक कोरी मदिरा पिये हुये मिला, उसके होश न था। बक-बक करता था। राजा

हाथीपर चढ़ा जा रहा था। वह कोरी राजासे बोला, ओवे रजुवा हाथी देवेगा ? गांवके रा का हाथी था। सोचा यह कैसे मेरे हाथीको खरीदेगा ? मंत्री था साथमें वह बोला, महारा अभी चलते हैं दरबारमें। वहां इसे बुलायेंगे आप वहाँ फैसला करना। वहाँ ही आप उसे द देना। कुछ देरके बाद राजा दरबारमें पहुंचा। उसको बुलवाया। उसका नशा अब उ चुका था। होशमें आ गया। दरबारमें आया राजाके सामने तो राजा कहता है कि अबे व बात तू कह। तू मेरा हाथी खरीदेगा ? कांपने लगा बेचारा। बोला महाराज यह आप क कह रहे हैं ? मैं गरीब आदमी, आप हैं राजा। आपका हाथी मैं कैसे खरीद सकता हूं ? म कहता है कि राजन् ! अब यह होशमें है। वहां जो हाथी खरीदनेको कह रहा था तो य नहीं कह रहा था। वह तो कहने वाला मदिरा था, नशा था। अब इसके नशा नहीं रहा इसी तरह हम और आप सब प्रभुकी तरह पवित्र हैं, मूलमें इतनी बड़ी पकड़ नहीं होती, हम आप सब जीवोंके मोहका नशा है उससे ही ये बिरंगी चालें हो रही हैं। यह नशा मि जाय तो वह प्रभुस्वरूप प्रकट हो जायगा। संयमके बिना तो इस जिन्दगीकी घड़ियाँ व्यर्थ जाती हैं। आत्महितका ध्यान रखो और ऐसा न रखो प्रोग्राम कि अभी दसलाक्षणी है आजकल तो खूब मूर्तियाँ पधारें, अधिक संख्यामें सब लोग इकट्ठे हों, धर्म खूब करें इसलि कि इकट्ठा साढ़े ग्यारह महीनेका धर्म कर लें। इससे साल भरके लिये धर्म नहीं जुड़ता। यह संकल्प करो कि आत्महित करना है। आत्महित करना है तो यह बात जीवनभर करन है, प्रतिदिन करना है, प्रति घंटे करना है। दूकानपर भी बैठे हैं तो वहाँ भी विवेकपूर्ण बन रहे। विवेकका पूर्ण ध्यान सर्वत्र रखना है। संयमके बिना एक भी घड़ी व्यर्थ मत जावे संयमके बिना जीवन बेकार है। हमारा शरण इस भवमें और परभवमें संयम ही हो सकत है। संयम नहीं है तो दुर्गति ही दुर्गति है।

उन्मार्गगामियोंकी फजीहत—एक मियां बीबी थे। मियाँका नाम था बेवकूफ और बीबीका नाम फजीहत। थोड़ी-२ देरमें उनमें लड़ाई हो जाती थी और थोड़ी ही देरमें सुलह हो जाती थी। एक दिन ऐसी लड़ाई हुई कि फजीहत घरसे भाग गई। अब वह पड़ौसियोंसे पूछे कि भाई क्या तुमने कहीं मेरी फजीहत देखी है ? तो वे तो जानते थे कि इसकी बीबीका नाम था फजीहत। तो वे कह देते थे कि भाई हमने तुम्हारी फजीहतको नहीं देखा। एक बार [illegible] [illegible] पूछा जो इसके [illegible] था। कहा भैया ! तुमने हमारी फजीहत देखी ? वह तुम [illegible] [illegible] आश्चर्य हो गया कि यह क्या कह रहा है ? पूछा भाई तुम्हारा [illegible] हमारा नाम बेवकूफ है। तो वह बोला कि बेवकूफ होकर भी तुम [illegible] फजीहत ढूंढते फिरते हो ! किसे ही बुरा कह दो, कुछ गालियां दे दो नहीं तो

तुम्हारे लिये सैकड़ों लाठी घूंसे तैयार हैं, फजीहत हाजिर है। सो भैया ! जो सन्मार्गपर न लग रहा है वह पापरूप प्रवृत्ति करता है। उसे जगह-जगह आपत्तियाँ ही आपत्तियाँ हैं संयम ही एक शरण है। इस भवमें और परभवमें यह संयम दुर्गतिरूप तालाबका शोषण करनेके लिये सूर्यकी किरणोंके समान है, वहाँ दुर्गति नहीं हो सकती है, इस संयमसे ही संसार भ्रमणका नाश होता है। ऐसे आत्महितके लिये, संयमके लिये आज हम एक बात आपसे कहेंगे कि पानी और औषधिके अलावा रात्रिको किसी चीजका ग्रहण न करो। पानी और औषधि रख लेनेसे तो कोई कष्ट नहीं पहुंचता और इससे अधिक बढ़कर यदि हो सके तो विशेष संयम धारण करो। अपने इस जीवनमें संयम धारण करके जीवनको सफल करो।

शीघ्र संसारसंततिच्छेद करनेमें विवेक—एक किंवदन्ती है कि ब्रह्माने ४ जीव बनाये। एक उल्लू, एक कुत्ता, एक गधा और एक आदमी। चारोंके लिये ४०–४० वर्षकी आयु सुरक्षित रख दी। उल्लूको पैदा करते समय उससे कहा कि जाओ हमने तुम्हें पैदा किया। उल्लू बोला महाराज ! मुझे क्या करना होगा ? ब्रह्मा बोले—तुम्हारा काम अन्धे बने बैठे रहनेका है और तुम्हारी आयु ४० वर्षकी है तुम्हें कहीं कुछ खानेको मिल जाये तो खा लेना, नहीं तो नहीं। उल्लूने कहा कि यह तो बुरी जिन्दगी है और नहीं तो कमसे कम हमारी जिन्दगी की आयु ४० वर्ष मत रखो, कम कर दो। उसके कहनेपर ब्रह्मा ने उसकी आयु आधी कर दी और आधी आयु सुरक्षित रख ली। फिर कुत्तेसे बोले कि जाओ तुम यह काम करोगे कि कहींसे भी कुछ किसीके द्वारा कोई टुकड़ा डाल दिया जाये तो खा लेना, नहीं तो सही और तुम्हारी आयु भी ४० वर्षकी है। उसने भी कहा कि यह जिन्दगी भी बहुत बुरी है। हमारी आयु कम कर दो। ब्रह्माने कुत्तेकी आयु भी आधी कर दी। फिर गधेसे कहा कि जाओ, तुम्हारा काम यह होगा कि तुम हमेशा जो कोई बोझ तुम्हारे ऊपर रखे उसका बोझ लादे फिरना तथा जो रूखा-सूखा भूसा मिले उससे पेट भरना। तुम्हारी भी आयु ४० वर्षकी है। उसने भी यह सुनकर अपनी आयु २० वर्षकी ही रख ली। ब्रह्माने उसकी बची हुई आयु को सुरक्षित रख ली।

फिर मनुष्यसे कहा गया कि जाओ तुम्हें हमने पैदा किया। तुम्हारा काम होगा कि बचपनमें तो तुम पढ़ो, फिर अपना विवाह करो, सम्पत्तिका सुख लूटो, बच्चोंको खिलाओ और जी चाहे जिस तरह रहो। उसने पूछा कि हमारी आयु कितनी है ? तो ब्रह्माने कहा कि तुम्हारी आयु ४० वर्षकी है। मनुष्यने कहा कि यह तो बहुत कम है, हमें ऐसा सुख पानेके लिये अधिक आयु दो। ब्रह्माने बहुत समझाया कि आयु मत बढ़वाओ, किन्तु मनुष्य न माना, ब्रह्माने अपनी आयुकी तिजोरी देखी [illegible]

की हथिनी बनाई जाती है। उसके पास ही एक झूठमूठका दौड़ता हुआ हाथी बनाया जाता है उसे देखकर उस जंगलका हाथी हथिनीकी ओर तेजीसे झपटता है और निकट आकर उस गड्ढेमें गिर जाता है। कई दिनों तक उस गड्ढेमें पड़ा रहनेसे भूख प्यासके मारे वह हाथी शिथिल हो जाता है और बादमें शिकारियोंके द्वारा कब्जेमें कर लिया जाता है। तो वह हाथी शिकारियोंके चंगुलमें फंसा स्पर्शनइन्द्रियके वश होकर, ऐसे ही मछली रसनाइन्द्रियके वश होकर शिकारियोंके चंगुलमें आ जाती है। भंवरा गंधके वश होकर कमलके फूलके बीच बन्द होकर अपने प्राण गवां देता है। यद्यपि ताकत उसमें इतनी होती कि बड़े बड़े काठकी शिलावोंको छेदकर आर-पार निकल जाय पर गंधके वशीभूत होकर कमलके फूलके अन्दर बन्द होकर अपने प्राण गवां देता है। पतंगोंको तो आप देखते ही हैं—दीपकमें आ आकर चक्षुरिन्द्रियके वशीभूत होकर अपने प्राण गवां देते हैं। ये हिरण, सर्प आदिक कर्णेन्द्रियके वशीभूत होकर शिकारियोंके चंगुलमें फंस जाते हैं। यह एक एक इन्द्रियके वशीभूत हुए जीवोंकी बात कही जा रही है, फिर भला बतलाओ जो इन पञ्चेन्द्रियोंके वशीभूत हो उनका न जाने क्या हाल होगा ? तो भाई इन इन्द्रियोंको वश करना होगा। इन इन्द्रियोंसे योग्य काम लेना है। अगर यह मनुष्यका शरीर मिला है हाथ पैर आदिक सभी चीजें ठीक ठीक मिली हैं तो अब क्या करना है ? इनसे भला काम करना है तभी इन सारी इन्द्रियोंके पाने से लाभ है।

अनुदार विषयव्यामोही मानवोंके जन्मकी व्यर्थता—एक बार कोई व्यक्ति मर गया तो उसे श्मशानमें यों ही छोड़ दिया गया, उसे जलाया न गया, तो उसके शरीरको खानेके लिए कुत्ते, स्याल आदि आये। उस जगह एक कविने अपनी कल्पनामें जो चित्रण किया उसे देखिये—जब स्याल उस मृतक शरीरके हाथ खाने लगा तो कुत्तेने कहा—ऐ स्याल ! तू इस शरीरको मत खा, ये हाथ तेरे खाने योग्य नहीं हैं।··· क्यों ?····अरे इन हाथोंने कभी दान पुण्य नहीं किया, कभी दूसरोंकी सेवा नहीं किया, ये बड़े पापी हैं, इन हाथोंने दूसरोंका अनर्थ ही किया, ये बड़े खराब हैं, इन्हें तू मत खा। जब स्याल कान खाने लगा तो फिर कुत्तेने कहा—अरे स्याल ! तू इन कानोंको मत खा, ये कान बड़े पापी हैं। इन्होंने कभी धर्मकथा नहीं सुनी, खोटी पाप भरी बातोंके सुननेमें ही अपना मन लगाया, ये बड़े पापी हैं, इन्हें तू मत खा। जब स्याल आँखोंको खाने लगा तो फिर कुत्ता बोला—अरे स्याल ! ये आँखें तेरे खाने योग्य नहीं। क्यों ?····अरे इन्होंने कभी देव, शास्त्र, गुरुके दर्शन नही किए, गंदी अश्लील विकारयुक्त चीजोंको ही देखनेमें चित्त दिया, ये महापापी हैं, इन्हें तू मत खा। जब स्याल पैर खाने लगा तो फिर कुत्ता बोला—अरे स्याल ! ये पैर भी तेरे खाने योग्य नहीं, अरे गंदी चीजको कौन खाता है ?····क्यों ?····अरे इन पैरोंने कभी तीर्थयात्रायें नहीं किया, कभी दूसरोंकी मदद करने जाना नहीं विचारा, बल्कि महाखोटे कार्योंको करने जानेके लिए

अभी तक कभी खानेका त्याग न कर सके, किसीको नजरमें न कर सके, यह तो एक खाने की बात कही, यही बात सभी इन्द्रियोंकी है। मनके विषयमें कीर्ति नामवरीके चक्करमें कितने ही लोगोंसे परिचय बढ़ाया, कितना ही बेहूदा प्रयत्न किया जा रहा, केवल एक नामवरी लोभमें क्या किया जा रहा है ? अपनेको बरबाद किया जा रहा है। यह रोग गृहस्थों को ही नहीं लगा, बल्कि जो त्यागी बने हैं उनके भी लगा है। तो मनःसंयम कहाँ रहा ? इन्द्रियसंयम और मनःसंयम जहाँ नहीं रहता वहाँ कषायोंपर विजय नहीं होती, और जहाँ कषायोंपर विजय नहीं वहाँ धर्मका मार्ग नहीं। तो यह इन्द्रियसंयम किए बिना हम कषायों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते।

विषयविजयमें रसनेन्द्रियविषयविजयकी कठिनताका अनुमान—एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि जब कभी व्रत तपकी बात चलती है तो खाने पीने पर चलती है, लोग खाने पीनेकी बात क्यों चलाते हैं ? तो समझ लो अपने अनुभवपर कि यह रसनाका विषय, मौज लूटनेका विषय एक ऐसा आधार है कि सभी इन्द्रियाँ और यह मन स्वच्छन्द होनेमें बड़ी मदद पा रहे हैं और जिनको रसनाके स्वादमें आसक्ति नहीं ऐसे पुरुषोंको देख लो प्रायः करके सभी विषयोंमें अनासक्त मिलेंगे। एक ही प्रश्न करें कि इस रसनाके विषयकी आसक्ति क्यों नहीं छोड़ सकते ? मुखसे तो कह देंगे कि हम अन्य इन्द्रियोंकी आसक्ति छोड़ देंगे, मनकी आशक्ति न रखेंगे, मुझे केवल एक रसनाकी ही छूट दे दो। अरे रसना की छूट क्यों चाहते ? मालूम होता कि यह सबमें प्रबल विषय है। ग्रन्थोंमें बताया है कि सबसे कठिन विषय हैं स्पर्शन और रसना। इनपर जब तक विजय नहीं प्राप्त होती तब तक कषायोंपर विजय नहीं की जा सकती। मनको तो जहाँ चाहे लगा दो, जहाँ मन लग गया बस वहीं उसे रम गया। दूसरा कुछ नहीं सुहाता। जैसे असंयमीजनोंको ज्ञान और वैराग्यकी बात रुचिकर नहीं होती ऐसे ही ज्ञानी विरक्त पुरुषोंको असंयमकी बात रुचिकर नहीं होती। जो विषयविषकी प्रीतिमें निरन्तर रमा करते हैं उन्हे तत्त्वज्ञान, वैराग्य, आत्मस्वरूप की बात नहीं सुहाती। मार्ग कठिन नहीं है, पर रुचि न होने से कठिन बन गया। मार्ग तो इतना सरल है कि जितना सरल यहाँका और कोई काम नहीं है। इस ज्ञान वैराग्यके काममें किसीकी अपेक्षा नहीं करनी है, अपने आधीन सारी बातें हैं। लेकिन रुचि नहीं है, संसार निकट नहीं है यह समझ लो। भवितव्य अच्छा नहीं है यह समझ लो उनको इस ज्ञान वैराग्यकी ओर रुचि नहीं जगती। यह इन्द्रियका कुल जैसे मदोन्मत्त होता जाता है वैसे ही वैसे यह कषायाग्नि और भी बढ़ती चली जाती है। क्या किसीने आज तक इन्द्रियविषयोंमें अपना भला पाया ?

इन्द्रियविषयोंकी व्यामोहकारिता—स्पर्शनइन्द्रियके वश होकर बड़े-बड़े हाथी भी पकड़ लिए जाते हैं। एक बड़ा गड्ढा खोदा जाता है, उसको बाँसकी पंचोंसे पाटकर भूठ-

की हथिनी बनाई जाती है। उसके पास ही एक झूठमूठका दौड़ता हुआ हाथी बनाया जाता है उसे देखकर उस जंगलका हाथी हथिनीकी ओर तेजीसे झपटता है और निकट आकर उस गड्ढेमें गिर जाता है। कई दिनों तक उस गड्ढेमें पड़ा रहनेसे भूख प्यासके मारे वह हाथी शिथिल हो जाता है और बादमें शिकारियोंके द्वारा कब्जेमें कर लिया जाता है। तो वह हाथी शिकारियोंके चंगुलमें फंसा स्पर्शनइन्द्रियके वश होकर, ऐसे ही मछली रसनाइन्द्रियके वश होकर शिकारियोंके चंगुलमें आ जाती है। भंवरा गंधके वश होकर कमलके फूलके बीच बन्द होकर अपने प्राण गवां देता है। यद्यपि ताकत उसमें इतनी होती कि बड़े बड़े काठकी शिलावोंको छेदकर आर-पार निकल जाय पर गंधके वशीभूत होकर कमलके फूलके अन्दर बन्द होकर अपने प्राण गवां देता है। पतंगोंको तो आप देखते ही हैं—दीपकमें आ आकर चक्षुरिन्द्रियके वशीभूत होकर अपने प्राण गवां देते हैं। ये हिरण, सर्प आदिक कर्णेन्द्रियके वशीभूत होकर शिकारियोंके चंगुलमें फंस जाते हैं। यह एक एक इन्द्रियके वशीभूत हुए जीवोंकी बात कही जा रही है, फिर भला बतलाओ जो इन पञ्चेन्द्रियोंके वशीभूत हो उनका न जाने क्या हाल होगा? तो भाई इन इन्द्रियोंको वश करना होगा। इन इन्द्रियोंसे योग्य काम लेना है। अगर यह मनुष्यका शरीर मिला है हाथ पैर आदिक सभी चीजें ठीक ठीक मिली हैं तो अब क्या करना है? इनसे भला काम करना है तभी इन सारी इन्द्रियोंके पाने से लाभ है।

अनुदार विषयव्यामोही मानवोंके जन्मकी व्यर्थता—एक बार कोई व्यक्ति मर गया तो उसे श्मशानमें यों ही छोड़ दिया गया, उसे जलाया न गया, तो उसके शरीरको खानेके लिए कुत्ते, स्याल आदि आये। उस जगह एक कविने अपनी कल्पनामें जो चित्रण किया उसे लिखिये—जब स्याल उस मृतक शरीरके हाथ खाने लगा तो कुत्तेने कहा—ऐ स्याल! तू इस शरीरको मत खा, ये हाथ तेरे खाने योग्य नहीं हैं।''क्यों?''''अरे इन हाथोंने कभी दान पुण्य नहीं किया, कभी दूसरोंकी सेवा नहीं किया, ये बड़े पापी हैं, इन हाथोंने दूसरोंका अनर्थ ही किया, ये बड़े खराब हैं, इन्हें तू मत खा। जब स्याल कान खाने लगा तो फिर कुत्तेने कहा—अरे स्याल! तू इन कानोंको मत खा, ये कान बड़े पापी हैं। इन्होंने कभी धर्मकथा नहीं सुनी, खोटी पाप भरी बातोंके सुननेमें ही अपना मन लगाया, ये बड़े पापी हैं, इन्हें तू मत खा। जब स्याल आँखोंको खाने लगा तो फिर कुत्ता बोला—अरे स्याल! ये आँखें तेरे खाने योग्य नहीं। क्यों?''''अरे इन्होंने कभी देव, शास्त्र, गुरुके दर्शन नहीं किए, गंदी अश्लील विकारयुक्त चीजोंको ही देखनेमें चित्त दिया, ये महापापी हैं, इन्हें तू मत खा। जब स्याल पैर खाने लगा तो फिर कुत्ता बोला—अरे स्याल! ये पैर भी तेरे खाने योग्य नहीं, अरे गंदी चीजको कौन खाता है?''''क्यों?''''अरे इन पैरोंने कभी तीर्थयात्रायें नहीं किया, कभी दूसरोंकी मदद करने जाना नहीं विचारा, बल्कि महाखोटे कार्योंको करने जानेके लिए

सदा तैयार बने रहे, तो अरे स्याल ! ये पैर तेरे खाने योग्य नहीं । जब स्याल मस्तक खाने लगा तो फिर कुत्तेने कहा अरे स्याल ! यह मस्तक तेरे भक्षण करने योग्य नहीं ।···क्यों ?···अरे इसने कभी दूसरोंका भला नहीं विचारा । इसने सदा दूसरोंका बुरा ही विचारा, इसलिए यह तेरे खाने योग्य नहीं, जब स्याल पेट खाने लगा तो फिर कुत्तेने कहा—अरे स्याल ! यह पेट तो महापापी है । अरे इसने अन्याय करके, छल करके अपना पेट भरा, जब चाहे जो चाहे अटपट खाता पीता रहा, इसने कभी संयमको पसंद नहीं किया, असंयमी बना रहा, इस लिए अरे स्याल ! यह पेट भी तेरे भक्षण करने योग्य नहीं ।

अहिंसासिद्धिमें इन्द्रियसंयमका प्राथमिक सहयोग—भाई इस इन्द्रियसंयमको तो करना ही होगा तभी पूर्ण अहिंसा बनेगी । जहाँ विषयविकार न रहे और कषायविकार न रहे वहाँ ही पूर्ण अहिंसा बन सकेगी । ये विषय कालकूट हैं । एक तो कालकूट विष होता और दूसरा है विषयविष । इन दोनोंमें विषयविष बड़ा भयंकर है । इन दोनोंमें राई और पर्वत जितना अन्तर है । सुमेरु पर्वत है लाखों योजनका बड़ा और राई होता है एक छोटासा दाना । जितना अन्तर राई और पर्वतमें है उतना ही अन्तर कालकूटविष और विषयविषमें समझिये ···क्यों ?···देखिये—कालकूटविषका भक्षण करनेसे सिर्फ एक ही बार मरण होता है मगर विषयविषका सेवन करनेसे तो न जाने कितने भवोंमें जन्म मरण करना पड़ता है । तो इन्द्रियोंको संयममें रखकर सत्संगति और स्वाध्यायमें, ज्ञान और वैराग्यमें अपना चित्त लगानेमें आपकी रक्षा है । अन्यथा हम आपकी रक्षा नहीं है । विषयप्रेमी जन या परिग्रह ··· ··· ही शेखचि

बल्कि आत्मशान्ति पानेके लिए अपनी लोकनिन्दा भी करा देते, बाहरमें किसीसे किसी भी चीजकी वाञ्छा नहीं करते, एक अध्यात्मसाधनाकी धुनमें ही जो निरन्तर रहते वे ही आत्म-कल्याण कर सकनेके पात्र होते हैं। आत्मशान्ति पानेके लिए बड़े-बड़े बलिदान करने होंगे, इन समस्त बाह्य पदार्थोंको तिलाञ्जलि देनी होगी। आज तक बीसों पचासों वर्षोंसे लोग धर्म-साधना करते आये पर अभी तक शान्ति न पा सके, अभी तक कषायोंमें कोई फर्क न आया, जरा-जरासी बातोंमें क्रोध आ जाता, मान बगराते, माया, लोभ आदिसे ग्रस्त रहते। क्या धर्म साधना किया अभी तक ? अरे धर्मसाधना अभी तक सही ढंगसे किया ही कहाँ ? धर्म साधना करनेकी जो विधि है उससे तो चले नहीं, चले उल्टे ही उल्टे तो फिर शान्ति कैसे मिले ?

धर्मसाधनके लिये ज्ञान व वैराग्यके बलकी आवश्यकता—धर्मसाधना करनेके लिए अपने अन्दर बहुत बड़ी तैयारी करनी होगी। अपने आपको बहुत सावधान बनाना होगा। इन समस्त धार्मिक क्रियाकाण्डोंको करते हुए अपने अन्दर थोड़ा ज्ञान और वैराग्यकी बात बनानी होगी। यदि ज्ञान और वैराग्यका आदर नहीं किया जा रहा, केवल रूढ़िवश धार्मिक क्रियाकाण्ड किया जा रहे तो उसका फल क्या होगा कि करेंगे पाप और पिटेगा धर्म। लोग करते हैं पाप और बदनामी होती है धर्मकी। धर्म नाम है वास्तवमें उसका जहाँ आत्मामें मोह और क्षोभ न रहे, जहाँ रागद्वेष न रहें, केवल एक ज्ञानज्योतिमय उपयोग बन रहा वह है धर्म-मूर्ति, और इसका जो उद्देश्य बनाता है वह भी धर्मात्मा है। जो इसका उद्देश्य ही नहीं बनाता वह धर्मात्मा कैसे कहला सकेगा ? केवल ऊपरी क्रियाकाण्डोंसे, हाथ पैर चलानेसे क्या होता है ? वहाँ सारका नाम नहीं। धानका व्यापार करनेसे फायदा पहुंचेगा। उस धानमें सार चीज है चावल। यदि कोई धानके ऊपरी छिलकोंको ही धान समझकर धानोंके ही भावसे खरीद कर उसे बेचे तो क्या वह कुछ लाभ पा सकेगा ? अरे वहाँ तो उसको हानि ही है। उसका सारा समय तथा श्रम व्यर्थ ही जायगा, ठीक इसी प्रकार जिसने केवल ऊपरी क्रियाकाण्डोंको ही धर्म समझ लिया, धर्मके वास्तविक स्वरूपको न जाना तो वह तो ऊपरी ऊपरी धर्मकी क्रियावोंमें ही फंसा रहेगा। धर्मके वास्तविक फलको वह प्राप्त न कर सकेगा। यों समझो कि उसका सारा समय तथा श्रम व्यर्थ जायगा। तो भाई पहिले धर्मके वास्तविक स्वरूपको समझो। वत्थुसभावोधम्मो—वस्तुका जो स्वरूप है बस वही धर्म है। जहां वस्तुका स्वभाव नहीं वह धर्म नहीं। उसमें अपने आप जो सहज पाया जाता हो वह धर्म है। ऐसे ही आत्मामें तक लो—हम सबके अपने आत्मामें स्वयं सहज अपने आप अपने सत्त्वके कारण जो भी भाव हो वही मेरा धर्म है और उसकी दृष्टि करना मेरा धर्म नहीं। उसके अतिरिक्त जो कुछ भी परके सम्पर्कसे, मेलसे जो बात आयी है—विषय कषाय, विचार विकल्प, तर्क वितर्क ये सब पाप हैं,

अनित्य हैं ।

सहजचिद्ब्रह्मके अतिरिक्त सभी भावोंकी उपेक्षणीयता——देखो जो बहुत ऊंचा जौह है वह जब कभी सही शुद्ध सोना देखता है तो उसे देखकर बड़ा खुश होता है, पर किसी सो में कुछ मेल मिलावटकी बात हो तो वह झुंझलाकर फेंक देता है और कहता है कि यह क्य मिट्टी ले आये ? ठीक इसी तरह जिसने धर्मका सही स्वरूप जाना है वह उस धर्मकी ही लग करेगा, धर्मका ही आश्रय देगा और यदि थोड़ी बहुत खोट लगी है तो वह झुंझलाकर कहेगा कि अरे यह तो पाप है । तो समझलो कि जो धर्मके स्वरूपको रहस्यको जानता है—वही तो ब्रह्ममूर्ति है, वही तो तत्त्वज्ञानी है, इस चीजको वेदान्तमें चतुर्थपाद कहा है । जैनसिद्धान्तमें बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और कारणसमयसार कहा है । तो वह चतुर्थपाद क्या है ? ज्ञायकस्वरूप तो पहिली बात है बहिरात्मा । लोकव्यवहारमें जग रहे, दूसरी चीज सुषुप्ति अन्तरात्मा यानि बाहरकी बातोमें सो गए । सुननेमें यों आता कि सुसुप्ति बुरी है, मगर भा की बात है और इससे बढ़कर क्या है ? अन्तर्प्रज्ञ, परमात्मा, परमात्मतत्त्व । सर्वज्ञ हो गए, सब कुछ जान लिया, चतुर्थपाद और ज्ञायक स्वरूप क्या है ? जिसके अन्दर आत्मा परमात्मा समाये ऐसा एक मूल तत्त्व वह है चतुर्थपाद ज्ञायकस्वभाव । इसे एक दिन आमके संतोंका दृष्टान्त बताया था । जैसे आमका रंग कभी नीला रहता, कभी काला होता, कभी हरा होता, फिर पीला, लाल, सफेद आदि होता, तो ये सब रंग बदलते रहते हैं, पर वे बदलते हैं

उत्तम तप धर्म

दसलाक्षणी पर्वके ६ दिन चले गये ना ? आज सप्तम दिन है और दसलाक्षणीमें से तप नामक धर्मका दिन है। आज तपके विषयमें शिक्षा सुनिये—

णरभव पावेप्पिणु तच्च मुणेप्पिणु खंडवि पंचिंदिय समणु।
णिव्वेउवि मंडिवि संगइ छंडिवि तव किज्जइ जायें वि वणु ॥

इस दुर्लभ नरजीवनमें तपश्चरणकी श्रेष्ठ कर्तव्यता—इस दुर्लभ नरजीवनको पाकर श्रेष्ठ कर्तव्य यह है कि तत्त्वका मनन करें। यह माथा नारियलकी तरह तुच्छ कीमत वाला नहीं होना चाहिये कि जहाँ चाहें नवा दिया, फोड़ दिया। मन भी इतना बेकार नहीं होना चाहिये कि मोह और रागके ही साधनोंका मनन करता रहे। यह आयु क्षण-क्षणमें ऐसी बही जा रही है जैसे पहाड़से गिरने वाली नदी। जितना पानी बह गया, वह ऊपर नहीं आता। इसी तरह जितना समय निकल गया वह फिर कभी नहीं आता। सो तत्त्वका मनन करके और मन एवं पंचेन्द्रियोंका दमन करके वैराग्य प्राप्त करो और परिग्रहका त्यागकर वन में जाओ। इतनी बड़ी तैयारी कौन कर सकता है ? जिसके कृतकृत्यताका भाव आ गया है जिसे जगत्में कोई भी कार्य नहीं रहा है ? शुद्ध आत्मस्वभावकी रुचिपूर्वक इच्छाओंका निरोध होना, चैतन्य स्वभावमें प्रतपन करना सो तप है। मनुष्यभवकी सबसे बड़ी विशेषता तप है। जो अन्य जगह नहीं हो सकती। जिसे न तिर्यञ्च कर सकते हैं और न नारकी देव ही कर सकते हैं। तपका अधिकार मनुष्यको है। तप क्या चीज है ? इच्छाओंको रोकना ही तप है। देवोंको जिस समय भूख प्यास लगती है तो उनके मुंहसे अमृत झड़ता है। जिससे उनकी भूख प्यास दब जाती है। देव इच्छाओंका दमन नहीं कर सकते। इच्छाओंका दमन करना मानव-जीवनमें ही सम्भव है। सबसे विशेष भव तो मनुष्यका है, परन्तु जैसे ही उसको बाह्य विकार आया वैसे ही उन इन्द्रियोंको संभालनेमें लगा दिया। तब क्या किया, दुर्गतिका पात्र ही हुआ।

पर्यायबुद्धि तजकर अन्तःस्वभावकी ओर उपयुक्त होनेमें तपश्चरणकी सार्थकता—पर्यायबुद्धि सर्व दुःखोंकी मूल है। अन्य बुद्धियोंकी तो बात दूर रही, यदि भक्ति आदि शुभ रागमें भी आत्मीय बुद्धि हुई तो संसारकी वृद्धि ही फल रहा। स्वानुभवी अन्तरात्माके कदाचित् रागादि भाववश बाह्यप्रवृत्ति होती है तो भक्ति आदि रूप होती है। इसीको कहते हैं

व्यवहारिक धर्म। तपका मतलब है किसी चीजकी इच्छा न करना, विषयवासनाओंसे दू रहना ही तप है। तप दो प्रकारका होता है—आन्तरिक और बाह्य। उस तपमें जब वि सम्यग्दर्शन न होनेपर जो लोग तपस्या करते हैं, उनकी कई तरहकी विडम्बनायें हो जाती हैं। बाह्यतप भी तप तभी कहलाते हैं जबकि आन्तरिक तप भी चल रहा हो। कभी बाह्यतप पहिले होता और उस प्रसंगमें आन्तरिक तप हो जाता है, अतः बाह्यतप बिल्कुल व्यर्थ न समझना। अनशन क्यों किया जाता है, उसका क्या प्रयोजन है? पहिले भोजन करते समय अनेक प्रकारके राग पैदा होते हैं। भोजनमें शुद्धता होती है। भोजनके बाद नाना मौज इच्छायें होती हैं। उपवासमें इन्द्रियदमन, इच्छादमन व प्रकृत्या कल्याण रुचिका भाव हो है। उपवास करके देखो प्रायः आत्मकल्याणकी भावना होती है या नहीं तथा जो स्वाद लोभको तज देता है, सुखसातामें भी स्वेच्छासे उसके अन्य विषयोंका अभाव ही तो होगा ज्ञानस्वभावमें लीन रहना ही तपस्या है। ऐसे नहीं, जैसे कि एक घटना है कि—एक भा जी थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हरे सागको छौंकना नहीं। वह एक दिन उपवास किय करते थे और एक दिन खाते थे। जिस दिन वह खाते थे तो सारा दिन प्रबन्ध व खानेमें ह व्यतीत हो जाता था। एक दिन जब भोजनका समय था तो हरी साग छौंकनेको रख दी औ प्रतीक्षा करने लगे कि यदि कोई इधरसे निकले तो उससे साग छौंकवा लें। इतनेमें उधरसे गुरु जी निकले, भाई जी ने उनसे कहा कि पंडित जी, यह साग छौंक दीजिए। पंडित जी ने कहा—मैं साग छौंक दूंगा, पर यह कहकर कि साग छौंकनेमें जो पाप लगे वह तुम्हें लगे। इस पर भाई जी ने कहा कि ना भाई ना, ऐसा न करना। पर पंडित जी ने जब साग छौंका तो यह कह दिया कि इसका जो पाप लगे वह इन्हीको लगे, परन्तु पंडित जी यह अच्छी तरह जानते थे कि कहनेसे पाप तो नहीं लगता, पाप तो भावोंसे है। जब इनकी इच्छा छौंकवानेकी है और विकल्पबुद्धि है तो यहाँ तो कर्मबंध है ही।

तपश्चरणमें शुद्ध आनन्द और उससे कर्मसंकटका विनाश—तप तो वह है जहाँ सम्यग्दर्शन हो और उसके विषयमें झुकाव हो। सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर जो तप होता है उसमें कष्टकी कोई बात नहीं। तपमें तो आनन्द रहता है। पूज्यपाद स्वामीने कहा कि—आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥ जिसके अन्तर्दृष्टि है वह बाह्य दुःखोंमें अचेतनवत् है। वह खेद नहीं करता, उसके आनन्द ही भरता है, वही आनन्द कर्मनिर्जरा करता है। मात्र अनशनमें वह शक्ति नहीं जो कही गई है, वह तो आहारका वियोग है, परन्तु वहाँ जो विषयेच्छाका अभाव है, वह तप है। विषय प्रवृत्ति विषयमें आकुलताकी द्योतक है। विषयोंमें आकुलता प्रकट है। सुनने और देखनेकी इच्छा तथा नई-नई इच्छायें क्यों उत्पन्न होती हैं? देखो खानेकी आकुलता, एक ग्रास मुखमें है, एक

[illegible] फिर नमकीन खाऊंगा । खैर, [illegible] अब मिठाई खाऊंगा, [illegible] आदि इच्छायें हो जाती हैं । अहो [illegible] और [illegible] ..., [illegible] आत्मा अपने सहज स्वभावमें लीन होता है [illegible] निरखे तो गुणोंमें, [illegible] एक धातु है जिसका [illegible] दुःख ही है, आकुलता ही है । [illegible] 'टुनदि समृद्धौ' [illegible] करके ये जीव तो [illegible] दुःख ही है, [illegible] आनन्द ही है [illegible] रहे । रागद्वेष करके ये जीव तो [illegible] दुःख नहीं है, [illegible] बनी रहे । [illegible] आत्माके स्वभावका [illegible] विचार न दुःख नहीं है, चारों ओर [illegible] शान्तिमय व ज्ञानमय आत्माके स्वभावका [illegible] होता है—चारों ओर आनन्द, चारों ओर [illegible] यह श्रद्धा है उसमें [illegible] हो रहे हैं । आत्मरुचि [illegible] होना है, जिसकी यह श्रद्धा है उसमें [illegible] होता है । परदृष्टिसे ज्ञान और शान्तिका [illegible] विषयोंको अपनाना उचित नहीं । यह रुचि है कि दुःखमें भी अनाकुलता [illegible] नहीं पाई, विषयोंके [illegible] मोही जीव जिसने कि अपने स्वभावकी [illegible] जैसे महलोंमें बसने वालोंको [illegible] पाई, वह [illegible] लगता है ? भाई ! [illegible] अच्छी संगतिसे मनुष्य संस्कारमें ही पालना पाई, वह [illegible] कैसे सुहावे ? [illegible] अन्तिम पूर्ण अवस्थामें पहुं- फूस नहीं सुहाते वैसे ही विषयोंमें बसनेपर स्वानुभव [illegible] तथापि वह लाभ [illegible] चाहे बहुत देरमें लाभ पा सकता है [illegible] नहीं तथापि वह लाभ अन्तिम पूर्ण अवस्थामें पहुं- चने वाला होगा । "भोग तजना [illegible] काम, भोगना भोग बड़ा आसान ।"

परसम्पर्क व कर्तृत्वबुद्धिमें पीड़ाधिक्य—मेरा अन्य पदार्थोंके साथ क्या सम्बन्ध है ? बाह्य पदार्थोंमें जितना समय लगा रहा है वह सब पागलपन है ऐसा आचार्योंने बताया है कौनसी वस्तु सारभूत है जो मेरे इस ज्ञानमात्र आत्माका पूरा पाड़ देगा ? ऐसा जगतमें कु नहीं है, फिर भी यह संसारी प्राणी रोगी बन रहा है । कौनसा रोग लगा है ? मुझे अ काम करनेको पड़ा है, इस प्रकारका जो परिणाम है वही महारोग है । क्या पड़ा है करनेको ? इस ज्ञानमात्र आत्मामें सिवाय जाननके अन्य कुछ करनेकी सामर्थ्य ही नहीं है फिर बाहरमें कौनसा काम करनेको पड़ा है ? एक रुई धुनने वाला था । वह कमाईके लिये परदेश गया । जब वहांसे वापिस आया तो पानीके जहाजसे आना पड़ता था । वह समुद्री जहाजसे आया । सो जिस जहाजपर वह बैठा था उसमें देखा कि हजारों मन रुई लदी हुई है । मुसाफिर तो एक दो ही थे । रुईको देखकर उसका सिर दर्द करने लगा, क्योंकि मनमें यह बात आ गई कि हाय इतनी सारी रुई हमें धुननी पड़ेगी, और भी उसका गहरा विचार बन गया सो वह बीमार हो गया । घर आया । डाक्टर बुलाया, वैद्य बुलाया, पर किसीसे ठीक न हो सका एक चतुर पुरुष आया जो मनोविज्ञानको समझता था । बोला हम इसे अच्छा कर देंगे । उसने बड़ा एहसान माना, कर दो अच्छा ।—अच्छा तुम सब लोग जावो हम अकेलेमें दवाई करेंगे । पूछा भैया कितने दिन हो गए तुम्हें बीमार हुये ? तीन दिन हो गये । कहांसे बीमार हुए ? अमुक नगरसे चला तो रास्तेमें बीमार हो गया । जहाजपर आ रहा था । ...हाँ उस जहाजपर कितने लोग बैठे थे ? बोला लोग तो दो तीन ही थे, पर उसमें हजारों मन रुई लदी

व्यवहारिक धर्म । तपका मतलब है किसी चीजकी इच्छा न करना, विषयवासनाओंसे दूर रहना ही तप है । तप दो प्रकारका होता है— आन्तरिक और बाह्य । उस तपमें जब नि सम्यग्दर्शन न होनेपर जो लोग तपस्या करते हैं, उनकी नाना तरहकी विडम्बनायें हो जाती हैं । बाह्यतप भी तप तभी कहलाते हैं जबकि आन्तरिक तप भी साथ रहा हो । कभी बाह्यतप पहिले होता और उस प्रसंगमें आन्तरिक तप हो जाता है, अतः बाह्यतप बिल्कुल व्यर्थ न समझना । अनशन क्यों किया जाता है, उसका क्या प्रयोजन है ? पहिले भोजन करते समय अनेक प्रकारके राग पैदा होते हैं । भोजनमें मूढ़ता होती है । भोजनके बाद नाना मौजकी इच्छायें होती हैं । उपवासमें इन्द्रियदमन, इच्छादमन व प्रकृत्या कल्याण रुचिका भाव होता है । उपवास करके देखो प्रायः आत्मकल्याणकी भावना होती है या नहीं तथा जो स्वादके लोभको तज देता है, सुखसातामें भी स्वेच्छासे उसके अन्य विषयोंका अभाव ही तो होता । ज्ञानस्वभावमें लीन रहना ही तपस्या है । ऐसे नहीं, जैसे कि एक घटना है कि—एक भाई जी थे । इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हरे सागको छोंकना नहीं । वह एक दिन उपवास किया करते थे और एक दिन खाते थे । जिस दिन वह खाते थे तो सारा दिन प्रबन्ध व खानेमें ही व्यतीत हो जाता था । एक दिन जब भोजनका समय था तो हरी साग छोंकनेको रख दी और प्रतीक्षा करने लगे कि यदि कोई इधरसे निकले तो उससे साग छोंकवा लें । इतनेमें उधरसे गुरु जी निकले, भाई जी ने उनसे कहा कि पंडित जी, यह साग छोंक दीजिए । पंडित जी ने कहा—मैं साग छोंक दूंगा, पर यह कहकर कि साग छोंकनेमें जो पाप लगे वह तुम्हें लगे । इस पर भाई जी ने कहा कि ना भाई ना, ऐसा न करना । पर पंडित जी ने जब साग छोंका तो यह कह दिया कि इसका जो पाप लगे वह इन्हींको लगे, परन्तु पंडित जी यह अच्छी तरह जानते थे कि कहनेसे पाप तो नहीं लगता, पाप तो भावोंसे है । जब इनकी इच्छा छोंकवानेकी है और विकल्पबुद्धि है तो यहाँ तो कर्मबंध है ही ।

तपश्चरणमें शुद्ध आनन्द और उससे कर्मसंकटका विनाश—तप तो वह है जहाँ सम्यग्दर्शन हो और उसके विषयमें झुकाव हो । सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर जो तप होता है उसमें कष्टकी कोई बात नहीं । तपमें तो आनन्द रहता है । पूज्यपाद स्वामीने कहा कि— आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं । न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ।। जिसके अन्तर्दृष्टि है वह बाह्य दुःखोंमें अचेतनवत् है । वह खेद नहीं करता, उसके आनन्द ही झरता है, वही आनन्द कर्मनिर्जरा करता है । मात्र अनशनमें वह शक्ति नहीं जो वहाँ गई है, वह तो आहारका वियोग है, परन्तु वहाँ जो विषयेच्छाका अभाव है, वह तप है । विषय प्रवृत्ति नियमसे आकुलताकी द्योतक है । विषयोंमें आकुलता प्रकट है । सुनने और देखनेकी इच्छा तथा नई-नई इच्छायें क्यों उत्पन्न होती हैं ? देखो खानेकी आकुलता, एक ग्रास मुखमें है, एक

जाते हैं और साथ कल्पना कर रहे हैं अब मिठाई खाऊंगा, फिर नमकीन खाऊंगा। खैर, खानेके युद्धसे निपटे तो सुगंध, रम्यावलोकन, रागश्रवण आदि इच्छायें हो जाती हैं। अहो विषयसम्पर्क! दुःख ही है, आकुलता ही है। जहाँ आत्मा अपने सहज स्वभावमें लीन होता है वहाँ इस प्रकारके विचार व दुःख नहीं हैं, आनन्द ही है 'टुनदि समृद्धौ' एक धातु है जिसका अर्थ होता है—चारों ओर आनन्द, चारों ओर समृद्धि बनी रहे। रागद्वेष करके ये जीव तो आनन्दशून्य हो रहे हैं। आत्मरक्षा उसकी है जिसके शांतिमय व ज्ञानमय आत्माके स्वभावका आलम्बन होता है। परदृष्टिसे ज्ञान और शांतिका घात होता है, जिसकी यह श्रद्धा है उसमें यह शक्ति है कि दुःखमें भी अनाकुलता रख सके, फिर मोहसे विषयोंको अपनाना उचित नहीं। परन्तु क्या करें, मोही जीव जिसने कि अपने स्वभावकी परख निरख नहीं पाई, विषयोंके संस्कारमें ही पालना पाई, वह कैसे उसे छोड़ सकता है? भाई! जैसे मछलीमें बसने वालोंको फूल नहीं सुहाते वैसे ही विषयोंमें बसनेपर स्वानुभव कैसे सुहाये? अच्छी संगतिसे मनुष्य चाहे बहुत देरमें लाभ पा सकता है जल्दी नहीं तथापि वह लाभ अन्तिम पूर्ण अवस्थामें पहुंचाने वाला होगा। "भोग तजना शूरोंका काम, भोगना भोग बड़ा आसान।"

परसम्पर्क व कर्तृत्वबुद्धिमें पीडाधिक्य—मेरा अन्य पदार्थोंके साथ क्या सम्बन्ध है? बाह्य पदार्थोंमें जितना समय लगा रखा है वह सब पागलपन है ऐसा आचार्योंने बताया है। कौनसी वस्तु सारभूत है जो मेरे इस ज्ञानमात्र आत्माका पूरा पाड़ देगा? ऐसा जगतमें कुछ नहीं है, फिर भी यह संसारी प्राणी रोगी बन रहा है। कौनसा रोग लगा है? मुझे अमुक काम करनेको पड़ा है, इस प्रकारका जो परिणाम है वही महारोग है। क्या पड़ा है करनेको? इस ज्ञानमात्र आत्मामें सिवाय जाननके अन्य कुछ करनेकी सामर्थ्य ही नहीं है फिर बाहरमें कौनसा काम करनेको पड़ा है? एक रुई धुनने वाला था। वह कमाईके लिये परदेश गया। जब वहांसे वापिस आया तो पानीके जहाजसे आना पड़ता था। वह समुद्री जहाजसे आया। सो जिस जहाजपर वह बैठा था उसमें देखा कि हजारों मन रुई लदी हुई है। मुसाफिर तो एक दो ही थे। रुईको देखकर उसका सिर दर्द करने लगा, क्योंकि मनमें यह बात आ गई कि हाय इतनी सारी रुई हमें धुननी पड़ेगी, और भी उसका गहरा विचार बन गया सो वह बीमार हो गया। घर आया। डाक्टर बुलाया, वैद्य बुलाया, पर किसीसे ठीक न हो सका। एक चतुर पुरुष आया जो मनोविज्ञानको समझता था। बोला हम इसे अच्छा कर देंगे। तो सबने बड़ा ऐहसान माना, कर दो अच्छा।—अच्छा तुम सब लोग जावो हम अकेलेमें दवाई करेंगे। पूछा भैया कितने दिन हो गए तुम्हें बीमार हुये? तीन दिन हो गये। कहाँसे बीमार हुए? अमुक नगरसे चला तो रास्तेमें बीमार हो गया। जहाजपर आ रहा था।...हाँ उस जहाजपर कितने लोग बैठे थे? बोला लोग तो दो तीन ही थे, पर उसमें हजारों मन रुई लदी

व्यवहारिक धर्म। तपका मतलब है किसी चीजकी इच्छा न करना, विषयवासनाओंसे दूर रहना ही तप है। तप दो प्रकारका होता है—आंतरिक और बाह्य। उस तपमें जब कि सम्यग्दर्शन न होनेपर जो लोग तपस्या करते हैं, उनकी नई तरहकी विडम्बनायें हो जाती हैं। बाह्यतप भी तप तभी कहलाते हैं जबकि आंतरिक तप भी चल रहा हो। कभी बाह्यतप पहिले होता और उस प्रसंगमें आंतरिक तप हो जाता है, अतः बाह्यतप बिल्कुल व्यर्थ न समझना। अनशन क्यों किया जाता है, उसका क्या प्रयोजन है? पहिले भोजन करते समय अनेक प्रकारके राग पैदा होते हैं। भोजनमें गृद्धता होती है। भोजनके बाद नाना मौजकी इच्छायें होती हैं। उपवासमें इन्द्रियदमन, इच्छादमन व प्रकृत्या कल्याण रुचिका भाव होता है। उपवास करके देखो प्रायः आत्मकल्याणकी भावना होती है या नहीं तथा जो स्वादके लोभको तज देता है, सुखसातामें भी स्वेच्छासे उसके अन्य विषयोंका अभाव ही तो होगा। ज्ञानस्वभावमें लीन रहना ही तपस्या है। ऐसे नहीं, जैसे कि एक घटना है कि—एक भाई जी थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हरे सागको छौंकना नहीं। वह एक दिन उपवास किया करते थे और एक दिन खाते थे। जिस दिन वह खाते थे तो सारा दिन प्रबन्ध व खानेमें ही व्यतीत हो जाता था। एक दिन जब भोजनका समय था तो हरी साग छौंकनेको रख दी और प्रतीक्षा करने लगे कि यदि कोई इधरसे निकले तो उससे साग छौंकवा लें। इतनेमें उधरसे गुरु जी निकले, भाई जी ने उनसे कहा कि पंडित जी, यह साग छौंक दीजिए। पंडित जी ने कहा—मैं साग छौंक दूंगा, पर यह कहकर कि साग छौंकनेमें जो पाप लगे वह तुम्हें लगे। इस पर भाई जी ने कहा कि ना भाई ना, ऐसा न करना। पर पंडित जी ने जब साग छौंका तो यह कह दिया कि इसका जो पाप लगे वह इन्हीको लगे, परन्तु पंडित जी यह अच्छी तरह जानते थे कि कहनेसे पाप तो नहीं लगता, पाप तो भावोंसे है। जब इनकी इच्छा छौंकवानेकी है और विकल्पबुद्धि है तो यहाँ तो कर्मबंध है ही।

तपश्चरणमें शुद्ध आनन्द और उससे कर्मसंकटका विनाश—तप तो वह है जहाँ सम्यग्दर्शन हो और उसके विषयमें झुकाव हो। सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर जो तप होता है उसमें कष्टकी कोई बात नहीं। तपमें तो आनन्द रहता है। पूज्यपाद स्वामीने कहा कि— आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥ जिसके अन्तर्दृष्टि है वह बाह्य दुःखोंमें अचेतनवत् है। वह खेद नहीं करता, उसके आनन्द ही भरता है, यही आनन्द कर्मनिर्जरा करता है। मात्र अनशनमें वह शक्ति नहीं जो कही गई है, वह तो आहारका वियोग है, परन्तु वहाँ जो विषयेच्छाका अभाव है, वह तप है। विषय प्रवृत्ति नियमसे आकुलताकी द्योतक है। विषयोंमें आकुलता प्रकट है। सुनने और देखनेकी इच्छा तथा नई-नई इच्छायें क्यों उत्पन्न होती हैं? देखो खानेकी आकुलता, एक ग्रास मुखमें है, एक

थमें है और साथ कल्पना कर रहे हैं अब मिठाई खाऊंगा, फिर नमकीन खाऊंगा। खैर, नेके युद्धसे निपटे तो सुगंध, रम्यावलोकन, रागश्रवण आदि इच्छायें हो जाती हैं। अहो पयसम्पर्क ! दुःख ही है, आकुलता ही है। जहाँ आत्मा अपने सहज स्वभावमें लीन होता है हाँ इस प्रकारके विचार व दुःख नहीं हैं, आनन्द ही है 'टुनदि समृद्धौ' एक धातु है जिसका र्थ होता है—चारों ओर आनन्द, चारों ओर समृद्धि वनी रहे। रागद्वेष करके ये जीव तो नन्दशून्य हो रहे हैं। आत्मरक्षा उसकी है जिसके शांतिमय व ज्ञानमय आत्माके स्वभावका लम्बन होता है। परदृष्टिसे ज्ञान और शांतिका घात होता है, जिसकी यह श्रद्धा है उसमें शक्ति है कि दुःखमें भी अनाकुलता रख सके, फिर मोहसे विषयोंको अपनाना उचित नहीं। न्तु क्या करें, मोही जीव जिसने कि अपने स्वभावकी परख निरख नहीं पाई, विषयोंके कारमें ही पालना पाई, वह कैसे उसे छोड़ सकता है ? भाई ! जैसे मछलीमें वसने वालोंको न नहीं सुहाते वैसे ही विषयोंमें वसनेपर स्वानुभव कैसे सुहाये ? अच्छी संगतिसे मनुष्य है वहुत देरमें लाभ पा सकता है जल्दी नहीं तथापि वह लाभ अन्तिम पूर्ण अवस्थामें पहुं-ने वाला होगा। "भोग तजना शूरोंका काम, भोगना भोग वड़ा आसान।"

परसम्पर्क व कर्तृत्वबुद्धिमें पीडाधिक्य—मेरा अन्य पदार्थोंके साथ क्या सम्बन्ध है ? ह्य पदार्थोंमें जितना समय लगा रखा है वह सव पागलपन है ऐसा आचार्योंने बताया है। नसी वस्तु सारभूत है जो मेरे इस ज्ञानमात्र आत्माका पूरा पाड़ देगा ? ऐसा जगतमें कुछ हीं है, फिर भी यह संसारी प्राणी रोगी वन रहा है। कौनसा रोग लगा है ? मुझे अमुक म करनेको पड़ा है, इस प्रकारका जो परिणाम है वही महारोग है। क्या पड़ा है करनेको ? ा ज्ञानमात्र आत्मामें सिवाय जाननके अन्य कुछ करनेकी सामर्थ्य ही नहीं है फिर वाहरमें नसा काम करनेको पड़ा है ? एक रुई धुनने वाला था। वह कमाईके लिये परदेश गया। ब वहाँसे वापिस आया तो पानीके जहाजसे आना पड़ता था। वह समुद्री जहाजसे आया। जिस जहाजपर वह वैठा था उसमें देखा कि हजारों मन रुई लदी हुई है। मुसाफिर तो क दो ही थे। रुईको देखकर उसका सिर दर्द करने लगा, क्योंकि मनमें यह बात आ गई कि ये इतनी सारी रुई हमें धुननी पड़ेगी, और भी उसका गहरा विचार वन गया सो वह मार हो गया। घर आया। डाक्टर वुलाया, वैद्य वुलाया, पर किसीसे ठीक न हो सका। क चतुर पुरुष आया जो मनोविज्ञानको समझता था। वोला हम इसे अच्छा कर देंगे। तो सने वड़ा ऐहसान माना, कर दो अच्छा।—अच्छा तुम सव लोग जावो हम अकेलेमें दवाई देंगे। पूछा भैया कितने दिन हो गए तुम्हें वीमार हुये ? तीन दिन हो गये। कहाँमें वीमार ए ? अमुक नगरसे चला तो रास्तेमें वीमार हो गया। जहाजपर आ रहा था।...हाँ उस हाजपर कितने लोग वैठे थे ? वोला लोग तो दो तीन ही थे, पर उसमें हजारों मन रुई लदी

हुई थी। जब हानके साथ [illegible] गया। [illegible] मानमें गुम हुई थी। ... आये थे उस जहाजमें पता नहीं [illegible] गई और सारी रुई जल गई।''''कहा, [illegible] ? हाँ, [illegible]। [illegible] हो गया। बीमारी तो इसीलिए हुई थी कि हाय इतनी रुई [illegible] धुननी पड़ेगी। [illegible] ठीक हो गया कि मेरे धुननेको रुई अब नहीं रही तो ठीक हो गया। [illegible] शरीरमें तो विकल्प हैं। अभी हमें इतना काम करना है, [illegible]। अभी इसके आगे और क्या करना है? रजिस्टर ठीक करना है, अमुक काम करना है, तो बीमार हो गये। भाई कुछ भी करते जावो, पर इतना अमृत तो पीते जावो कि मैं ज्ञानमात्र हूं, मैं सिवाय ज्ञान के और कुछ नहीं करता हूं। इतनी दृष्टिका अमृत तो कभी-कभी बीच-बीचमें पीते जाइए तो अच्छा जीवन चलेगा। तो जैसे धुनियाको यह बात आ गई कि मेरे धुननेको कोई रुई नहीं रही तो अच्छा हो गया, इसी तरह सम्यग्दृष्टि पुरुषके और विशेषता ही क्या है? यही विशेषता है कि ज्ञानी पुरुषके यह दृढ़ विश्वास है कि मेरेको जगतमें करनेको कोई काम नहीं पड़ा है। "होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम?" यह श्रद्धा ज्ञानी जीवके प्रबल है इसलिये अन्तरमें अनाकुलता रहती है।

तं तउ जहिं परिग्गह छंडिज्जइ, तं तउ जहिं मयणुजि खंडिज्जइ।
तं तउ जहिं णग्गत्तणु दीसइ, तं तउ जहिं गिरिकंदर णिवसइ॥

परिग्रहत्यागमें व कामखण्डनमें तपश्चरण—तप वहाँ होता है जहाँ परिग्रहका त्याग कर दिया जाता है। तप वहाँ होता है जहाँ काम खण्डित कर दिया जाता है। कामी पुरुष तपस्वी नहीं हो पाता। वह कितना ही धर्मसाधन करे, पर काम ऐसा भयंकर विकार है कि जिस कामभावके रहने पर धर्ममें प्रगति नहीं हो सकती। गृहस्थोंमें भी सुशील गृहस्थ पाये जाते हैं और वे कामके ऐसे विजयी होते हैं कि परस्त्रीत्यागका नियम लें तो स्वप्नमें भी परस्त्रीके प्रति खोटी वासना नहीं रहती। सुदर्शन सेटका दृष्टान्त बहुत प्रसिद्ध है। वह सेठ भी थे और बहुत सुन्दर रूपवान भी थे। रानीका चित्त चलित हो गया तो दासीको भेजा वह सुदर्शन सेठको रानीके पास ले आई। रानीने सभी चेष्टायें करलीं। नग्न किया, खुद नग्न हो गई, सारी विडम्बनायें कर लीं, पर अचरजमें हो गई रानी। सुदर्शनने कहा—माँ मैं तो नपुंसक हूं। जब रानीकी इच्छानुसार कार्य न हुआ तो उसे सुदर्शन सेठपर बड़ा क्रोध आया उसने यह मनमें ठाना कि इसके प्राण नष्ट कराना चाहिये। सो कपड़े खुद फाड़ कर बड़ी वेदनाके साथ राजासे बोली—महाराज इस सुदर्शनने आज मेरी इज्जत खराब करदी। राजाने शूलीका दण्ड सुना दिया। तो जो संतोषी होता है और साथ ही जिसके पुण्यका उदय होता

है तो बड़े मनुष्य अथवा देव उसके सहायक बन जाते हैं। देवोंने सहायता की, सूलीपर सिंहासन बनाया। सिंहासनपर बैठे हुए सुदर्शनको सब लोगों ने देखा। धर्मकी तब विशेष प्रभावना भी हुई।

अन्तर्बाह्य नग्नतामें तपश्चरण—इस जगतमें हम और आपका कोई शरण नहीं है। अपने ही स्वरूपको जानो जो परम आनन्दमय है। जो सहज शुद्ध पूर्ण विकासमय परमात्मा कहलाता है ऐसा यह मैं गुप्त चैतन्यस्वरूप ही मेरे लिये शरण हूं। इसकी दृष्टि बहुत काल तक बनी रहे। कुटुम्ब, परिवार, लोग, इज्जत, देश, ये सब मायारूप हैं। ये मेरी शरण नहीं हैं। अन्तरमें यथार्थ ज्ञानकी तपस्यामें तपो। तप वहाँ है जहां नग्नत्व दिखता है अहो किस गुणीके ये विचार हैं ? ये उनके विचार हैं जिन्होंने निज सहज स्वरूपका स्पर्श करके अमृतपान किया है, जहाँ विकार रंच भी नहीं रहता ऐसे केवल गुणोंपर दृष्टि रहती है। जो नग्नत्व को देखकर कुछ संकोच करते हैं उनकी चामपर दृष्टि है। गुणोंपर उनकी दृष्टि नहीं है। जो रत्नत्रयधारी साधुके सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र गुणोंके विकासकी दृष्टि करते हैं वे तो उन्हें देखकर हर्षविभोर हो जाते हैं। नग्न होना महान् तप है, न विकार आये, न लज्जा आये। बालक भी तो नग्न फिरते हैं, अब तो छोटे-छोटे बालकोंको भी नग्न देखना बुरा लगता है। ६ माहके बच्चेको भी एक फटी-सी सिली पुनतैया बनवा लेते हैं ताकि वे मूतें तो कपड़ा न भीगे। अभी ३०–४० वर्ष पहिले १० वर्षके बालक भी नग्न फिरा करते थे। जो पुराने लोग हैं वे जानते हैं यह नग्नत्व अविकार भावका सूचक है।

विविक्त शय्यासनमें तपश्चरण—तप वहां होता है जहां गिरि कंदराओंमें निवास हो। अभी आप देख लें, अकेलेमें मन नहीं लगता है। आपका भी मन नहीं लगता होगा। कोई बातें करनेको चाहिये, मित्र मिलें, कुटुम्ब मिलें, आफीसर मिलें, लोग मिलें, अकेले मन नहीं लगता। कोई बातें करनेको चाहिए, और इन साधु महाराजको गिरि कंदराओंमें, जंगल, गुफावोंमें बड़ा मन लगता है, वे सदा प्रसन्न रहा करते हैं। वे कैसे अकेले रह जाते हैं ? वे अकेले नहीं हैं। हम आपको मालूम पड़ता है कि वे अकेले रह जाते हैं ? वे अकेले नहीं हैं। कौन है वहाँ उनके साथ ? उनके साथ उनका प्रभु है। जैसे हम आपकी कभी ऐसी वृत्ति होती है कि मन तो पाप करनेका प्रोग्राम बनाता है और विवेक उन बातोंको काटता है, रोकता है, जैसे हममें दो तत्त्व बसे हुये हैं, एक अधर्ममें उतारू होता है तो दूसरा उसे रोकता है, इसी तरह वहाँ भी उपयोग और ज्ञानस्वरूप ये दो तत्त्व बसे हुए हैं। तो वहाँ उपयोग ज्ञानस्वरूप प्रभुसे ज्ञानमयी पद्धतिसे बात करता है। वे साधु जन उस ज्ञानस्वरूप प्रभुको देखकर, अनुभूत कर, लीन होकर तृप्त बने रहते हैं। साधु वहाँ अकेला नहीं है। परमशरण ज्ञायकस्वभाव

परमपिता परमात्मा [illegible]

अपरिचित लोगोंमें कुछ [illegible]

ही मानेंगे। अरे भाई [illegible]

नहीं है। वह जानता है कि मैं तो [illegible]

जायें तो वहाँ भी अपनेको [illegible]

है, सो वे वहां अपनेको अकेला अनुभव करते हैं। [illegible]

नहीं कर सकता है वह पंचेन्द्रियोंके [illegible]

संपदासे उपेक्षा करके स्वभावदृष्टिमें लगनेकी [illegible] तब तक न

हो सकता जब तक स्वभावका अनुभव न करलें। [illegible] अनुभवके बाद उसका स्म

रहता है, उसी ओर परिणाम रहा करता है, उस [illegible] निरोध सहज हो ज

है। यह संसारी जीव बालक है, इसे तो खिलौनेसे राग है। जिसने अपना आत्मिक खिल

नहीं देखा, वह बाह्य पदार्थ विषयरूपी खिलौनेसे कैसे चित्त हटा पावेगा? इसे तो खिल

चाहिये, चाहे स्वकीय मिले या परकीय। परकीय खिलौनेमें व्याकुलता ही व्याकुलत

स्वकीय खिलौनेमें सत्य शान्ति है। हम निजस्वभावको भूलकर जगत्में इतने भटके कि

लाख योनियोंमें नानारूप रखे, उनको यह जीव जब जान लेता है कि यह मोह स्वरूप

वह पुण्योदयसे संयुक्त सम्पत्तिमें कुछ भी हितबुद्धि नहीं करता। सम्पदाका संयोग आ

शान्तिकी करतूत नहीं, वह पुण्यके निमित्तपर उपस्थित है। सम्पदासे शान्ति नहीं।

करके अपनेको भोगोंमें लगाना, विषयोंमें फंसाना, अपने आपपर महान् अन्याय करन

सद्गृहस्थ बनकर यथाशक्ति तपका लाभ गृहमें भी पा सकते हैं।

विषयेच्छानिरोधसे मनुष्यभवकी आदर्शता—जो पर्याप्त सम्पत्ति होनेपर भी स

रहन-सहन रखता है और निरन्तर अविकारी स्वभावका ध्यान रखता है वह गृहमें

करता है। मनुष्य होनेका लाभ तपमें है, इच्छानिरोधमें है। मनुष्यके समान अन्य कोई

पर्याय नहीं है। इसको पाकर विषयेच्छाका दास होना अपने सुखका मार्ग रोक देना है

तीर्थंकर देव विरक्त होते हैं तब उन्हें वनमें ले जानेको इन्द्र अपनी पुरानी आदतके

पालकीमें बैठाकर उठाना चाहते हैं तो मनुष्य रोक देते हैं। भाई, तुम इस पालकीमें

लगावो। यहां तुम्हारा अधिकार नहीं है। इन्द्र बोला—मैंने गर्भमें रत्न वर्षाये, जन्म

मेरुपर अभिषेक किया, मुझे अधिकार कैसे नहीं? निर्णयके लिये एक वृद्धको बैठाया

उसने खूब सोच विचारकर यह निर्णय किया कि भाइयों, भगवान्की पालकी वह उठ

है जो भगवान्के साथ भगवान् जैसे संयमको धारण कर सके। यह बात सुनकर मनु

प्रसन्न हुए। तब इन्द्र बोला कि मनुष्यो! मेरी इन्द्रत्वकी सारी सम्पत्ति ले लो और इसके बदले मनुष्यत्व दे दो, परन्तु इसकी इस आशाकी पूर्ति वहां कैसे हो सकती थी? वह रोता ही रहा, मनुष्यभवको ललचाता ही रहा। ऐसे अमूल्य नर-रत्नको, क्षणिक पराधीन विषयास्वादमें गंवा देना महती मूर्खता है। जगत्के सभी पदार्थ स्वतन्त्र हैं। मैं भी स्वतन्त्र ध्रुव चैतन्यमय वस्तु हूं। मेरा विश्वके साथ मात्र ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध है, स्वस्वामी सम्बन्ध नहीं। जान लो, आगे मत बढ़ो, इस प्रकार बाह्यसे सर्वथा हटकर निज चैतन्यस्वभावमें बसना उत्तम तप है; यही सम्यग्ज्ञान है।

तं तउ जहिं उवसग्ग सहिज्जइ, तं तउ जहिं रायाइ जिणिज्जइ।
तं तउ जहिं भिक्खइ भुंजिज्जइ सावयगेह कालणिविसिज्जइ॥

तप वहाँ होता है जहाँ उपसर्ग सह लिये जाते हैं। तप वहाँ होता है जहाँ रागादिक जीत लिये जाते हैं। तप वहाँ होता है जहाँ श्रावकके घर भिक्षावृत्तिसे भोजन लिया जाता है। तप वहाँ होता है जहां यथाकाल ही यथास्थान निवास किया जाता है, जिसमें तपकी साधना हो, रागद्वेष हो, न हो, ज्ञायकस्वरूपकी उन्मुखता रह सके। अपने स्वभावके दर्शनकी इतनी अधिक रुचि बढ़ी हुई है भैया! इस ज्ञानीके कि इसपर बाहरी कुछ उपद्रव आ जायें, उपसर्ग भी आ जायें तो भी अपने भीतरकी धुनिमें इतना लीन है कि उन उपसर्गों और उपद्रवोंसे हटनेका विकल्प नहीं करता। तप वहाँ ही होता है जहां रागादिक भाव जीत लिये जाते हैं। जहाँ भिक्षा भोजन हो तप वहाँ ही होता है। भिक्षावृत्ति धारे बिना कोई मोक्ष नहीं जाता या यों कह लो कि अपना खाकर कोई मोक्ष नहीं जा सकता है। खुद कमाया अपना ही खाया यों अपना खाकर कोई मुक्त हुआ हो तो एक दृष्टान्त बतावो। या तो पर घरका खाकर मुक्ति गया या बाहुबलि जैसा कोई हो कि बिना भोजन किये मुक्ति गया हो। अपने घरके भोगोंमें स्वतन्त्रताकी बात नहीं है। अपने घरके भोगोंको भोगकर कोई निर्वाण नहीं प्राप्त कर सकता है। यह भिक्षा भोजन अमृत है और वही तप है। किन्तु इतना निर्मल परिणाम हो कि भक्ति सहित कोई निर्दोष भोजन देता है तो लो, अन्यथा भोजन न लो। इतनी निर्मलताके साथ भिक्षाभोजन किया जाता है वह भी एक तप है।

धर्मके बिना जिन्दगी क्या?— एक साधु महाराज एक श्रावकके घर आये, भोजनके बाद आंगनमें बैठ गये। कुछ धर्मकी बातें होने लगीं। सेठकी बहूने कहा महाराज, आप इतने सवेरे क्यों आ गये? कहा समयकी खबर न थी। अब देखो दोनों ही बातें अटपट हैं। १० बजे गये, धूप भी खूब खिल रही थी। जैसा प्रश्न तैसा उत्तर जरा सुनते जाइये। साधु पूछता है बेटी, तुम्हारी उम्र कितनी है? बहू बोलती है महाराज मेरी उम्र ४ सालकी है। ...और तुम्हारे पतिकी उम्र कितनी है?... महाराज ४ महीने।... और तुम्हारे स्वसुर की?

....महाराज स्वसुर तो अभी पैदा ही नहीं हुए।... अच्छा तुम ताजा खा रही हो या बासी ? बोली। महाराज बासी ही खाती हूं। साधु तो चला गया। सेठ बहूसे लड़ने लगा। तूने हमारे घरकी सब खो दी। कैसे पागलपनके प्रश्न उत्तर हुये ? बहू बोली, महाराज साधुके पास चलो वहाँ ही आपको पता लगेगा। सेठ और बहू महाराजके पास पहुंचे, पूछा तो पता लगा कि इतने सुबह क्यों आ गयेका यह अर्थ था कि साधु छोटी उम्रके थे। होंगे करीब २०-२५ वर्ष की उम्रके। इतनी अवस्थामें आप इस पदपर क्यों आ गये, यह पूछा था तो बताया कि मुझे समयकी खबर नहीं थी। मैंने सोचा कि पता नहीं कब मर जावें इसलिये हम सवेरे ही साधुपनेमें आ गये। बहूकी आयु चार वर्षकी कैसे ? कहा कि धर्मकी साधना करते हुये ४ वर्ष हो गये। पहिले जो ३०-३२ साल गुजर गये वे व्यर्थमें ही चले गये। जबसे हमारे धर्मसाधना जगी तब से ही हम अपनी जिन्दगी मानती हैं। धर्मके बिना जिन्दगी मानो तो अपनेको अनन्तकालका बुड्ढा कहना चाहिये, क्योंकि अनादिसे इसकी सत्ता है। पतिकी चार महीनेकी उम्रका कारण बताया कि पतिको खूब समझाया तब उनके चार माहसे धर्मकी साधना हुई है। स्वसुर बोले महाराज हमको कहती है कि अभी पैदा ही नहीं हुये, हम कितने बूढ़े हो गये, बाल सफेद हो गये और बताती है कि अभी स्वसुर साहब पैदा ही नहीं हुये। बहू बोली, देखिये महाराज अभी भी इनको समझमें नहीं आया। अब भी ये लड़ते हैं, और बासी खानेका क्या मतलब बताती है कि महाराज सेठ जी ने पूर्वभवमें पुण्य किया था जिसका फल अभी भोग रहे हैं। सो यह बासी ही तो है। ताजा नहीं खाया जा रहा है।

निज ज्ञानस्वभावके अनुभवसे ही संसारसे तरण—भैया ! अपनी-अपनी परख कर लो कि अभी हम पैदा हुए कि नहीं ? जब अपने ज्ञानस्वभावका अनुभव हो जाय कि केवल [illegible] मात्र यह मैं आत्मा हूं, ऐसा अनुभव कभी हो जाय तो समझो कि हाँ अब मेरा जीवन [illegible] भी आनन्द वातावरणमें कभी भी किसी भी समय अन्य सबको भूलकर, निर्मल [illegible] पर्यायविभावसे रह जानेका अंदाज तो करो कि अपने आप मैं क्या हूं ? अपने [illegible] अभीष्ट सिद्धि होगी। कोई बच्चा कहे कि मां मुझे तैरना आ जाय।... [illegible] आय, परन्तु मुझे पानीमें न उतरना पड़े।....बेटा यह तो नहीं [illegible] पानीमें घुसना पड़ेगा, दो चार घूटके खाना पड़ेगा तब जाकर तैरना आयेगा। [illegible] मिल जावें, मौज भी बनी रहे, और हम मोक्षमार्गको भी पा लें तो [illegible] है।

[illegible], न [illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible]

तप वहां है। देखकर चलना, प्रिय हितकारी बचन बोलना, किसी जीवकी हिंसा न करना, ऐसी प्रवृत्ति यदि है तो वही तप है। जहाँ गुप्तियोंका पालन है, जहाँ अपने और पराये स्वरूपका विचार है, जहां समस्त पर्यायोंके अहंकारका त्याग है, विवेक जागृत है, तप तो वही है। भैया! सच तो यह है कि हम पुरुषार्थ तो कुछ न करें और सिद्धि पा लें यह कैसे हो सकता है? आत्मज्ञान होना ही वास्तविक मंगल है। ऐसे ही समाधिरूप भावमें मरण होना मंगल है। भोगोंमें ही जिनका जीवनमरण है, वे संसारको ही बढ़ाते हैं। चैतन्यस्वभावका आलम्बन करते हुये जिनका जीवन चल रहा है अथवा आयुक्षय हो रहा है, वे आगे जन्म-मरणके पात्र नहीं होते। शेष अल्पभव भी निराकुलतासे व्यतीत हो जाते हैं, फिर शाश्वत आनन्दमय रहते हैं।

अन्तर्बाह्य परिग्रहके त्यागमें उत्तम तप—जगत् गोरखधन्धा है। इसकी चाहमें उलझन की बढ़वारी है व चाहसे दूर रह कर अपने स्वभावमें प्रतपन करनेसे अनन्त आनन्दका आविर्भाव है। इस सर्वसुखका मूल सम्यग्दर्शन है। जिस ज्ञानीके अन्तरंग बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रुचि हट गई उसके ये परिग्रह कब तक रुद रुकते हैं। अतः जहाँ शुद्ध आत्माके स्वभावकी रुचि पुरस्सर अन्तरंग १४ प्रकारके और बहिरंग १० प्रकारके परिग्रहोंका जहाँ अभाव हो जाता है उस परिणामको उत्तम तप कहते हैं। यह तप वहां ही प्रगट होता है जहाँ निर्ग्रन्थता है। उन परिग्रहोंसे त्रैकालिक चैतन्यस्वभावी निज आत्माका क्या सम्बन्ध है? यह कुछ न आपके साथ आया, न साथ जावेगा और जब तक है न आपकी परिणतिसे परिणमता है। सबसे अधिक ग्रन्थि देहमें होती है। वह देह भी क्या है? जड़ भिन्न, प्रवेश करने और गलने वाले अणुवोंका पुञ्ज है। यह आत्मा नहीं। अहो, जिसे अज्ञानी समझते हैं वह अन्तरंग आत्मा है, न बहिरंग आत्मा है। मैं सर्वदृष्ट अदृष्ट स्कन्धसे भिन्न हूँ, धन वैभव से न्यारा हूँ, परिवार आदि कहे जाने वाले सूरत शक्लसे पृथक् हूं, मेरे समानजाति वाले सभी अन्य चेतनसे पृथक् हूं। मैं किसी भी परवस्तुका परिणमन नहीं करता। मेरे करनेको बाह्यमें कुछ काम भी नहीं है। इस प्रकारके परिणामोंसे प्रेरित होकर परद्रव्यसे हट कर व सर्व विकल्पोंको समाप्त करके निज चैतन्यस्वभावमें स्थिर होना उत्तम तप है। इस उत्तम तपमें वर्तमान साधुवृन्द विकराल गुफाओंमें बसते हुये आनन्दमग्न हैं, अनेक उपसर्ग उनके शृङ्गार हैं, समिति गुप्ति उनका व्यापार है। सर्व आरम्भ परिग्रहसे वे अत्यन्त विरक्त हैं। भोजनका भी रंच आरम्भ उनके नहीं है व भिक्षावृत्तिसे पाणिपात्र आहारी हैं, परमविवेकशाली हैं।

अविकार चित्स्वभावकी उपासनामें उत्तम तप—अहा, इस उत्तम तप धर्ममें कषायों को स्थान नहीं मिलता, उसका फल केवल ज्ञान है, अविनाशी सुख है। इस धर्ममें भी देखो, सभी धर्मोंकी सहचारिता स्वयं ही सहज है। हे उत्तम तपधर्म! सदा जयवन्त रहो। तेरे ही

तपकी भावना व सेवाका आदेश—१२ प्रकारका तप उत्तम धर्म है, यह दुर्गतिका परिहार करने वाला है, दुर्गतिमें तो यह जीव अनादिसे ही घूमता चला आया है, आजकी इस मनुष्य गतिको हम सुगति कह सकते हैं। देखो अपने मनकी बात हम आपको बता देते हैं और आपके मनकी बात हम सुन लेते हैं। किन्तु पशु-पक्षी कीड़े-मकोड़े कोई भी बताओ जो भावोंका आदान-प्रदान करते हों? कोई भी तो ऐसे नहीं हैं। एक मनुष्य ही ऐसा है जो अपने भाव दूसरोंको बता सकता है और दूसरेके भावोंको जान सकता है। यदि उस मनुष्य भवको इन विषयोंकी धुनमें ही रहकर खो दिया तो बताओ कौनसा भव ऐसा है जहां हित का मार्ग मिल सकेगा? जैसे कोई खुजैला अंधा भिखारी किसी नगरमें जाना चाहता है, बता दिया लोगोंने कि यह नगरके किनारेकी भींत है सो हाथसे इस भींतको पकड़ते हुये चले जाओ और जब दरवाजा मिले तो उससे घुस जाना। सो वह उस भींतके सहारे चलता जाता है। खूब चला और जहां दरवाजा आया सो अपना सिर खुजलाने लगा और पैरोंसे चलना न बन्द किया, दरवाजा निकल गया, फिर चक्कर लगाये। इसी प्रकार कई योनियोंमें चक्कर लगाते हुये यह आज मनुष्य जीवनका दरवाजा आया है इसे विषयोंमें ही खो दिया, इन विषयोंकी ही खाज खुजलाने लगा तो यह मनुष्यभव चला जायगा व्यर्थ। इसलिये विवेक बनाओ, ज्ञानके लिए उद्यम करो इससे अपनी सफलता है। देखो ज्ञानसे बड़ा विलक्षण आनन्द आता है, [illegible] विषयोंका आनन्द जिनके नहीं रहा है इसीलिये वे बड़े पुरुष कहलाते हैं। तो उस ज्ञान [illegible] भावना करें और सभी तपोंमें उद्यमी रहें, ऐसी भावना भावो और प्रयोग करो।

इच्छानिरोधकी आनन्दरूपता—जीवकी दो परिस्थितियां होती हैं—(१) इच्छासहित और (२) इच्छारहित। इन दो परिस्थितियोंके अतिरिक्त आप और कौनसी परिस्थिति [illegible]? इन दोनों स्थितियोंके आधारमें देखो कि आत्माके सुखकी स्थिति कौन है? इच्छा-सहित वाली स्थितिमें आनन्द है या इच्छारहित वाली स्थितिमें आनन्द है? तो आप यही [illegible] कि आनन्द तो इच्छारहित स्थितिमें है। इच्छासहित स्थिति तो आत्माके लिए [illegible] है। आचार्योंने तो यहां तक कहा है—मोक्षेऽपि यस्य नाकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति। [illegible] आत्मा न क्वापि योजयेत्॥ अर्थात् जिसके मोक्षमें भी इच्छा है वह मोक्ष [illegible]। इस कारण हित चाहने वाला पुरुष कहीं भी इच्छा न करे। इसकी [illegible] की इच्छा होती है मोक्षके लिए। जब वह अभ्यस्त हो जाता है और [illegible] हो जाता है उस समय उसे कोई भी इच्छा नहीं रहती। [illegible] भान रहता है। ऐसे योगीको मोक्ष होता है। [illegible] है। सब इच्छाका नाम है अतप और इच्छारहितताका नाम है [illegible] करोगे? ...तप करोगे। [illegible]

कि तप में तो बड़ा क्लेश है, किन्तु तपमें क्लेश नहीं होता, कठिन चीज नहीं है तपश्चरण। तपश्चरणमें तो आनन्द रहता है। तपका अर्थ समझें तब ना। इच्छानिरोधः तप। जहाँ इच्छाओंका अभाव है उसे ही तप कहते हैं। अब तपकी जितनी भी परिभाषायें हैं या कितने भी तपके बाकी काम हैं उन सबमें इच्छानिरोध है तो वह तप है और इच्छा है तो वह तप नहीं है। तप बताये हैं १२ प्रकारके। अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन व कायक्लेश—ये तो हैं ६ बाह्य तप। तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व ध्यान ये ६ हैं अन्तरतप।

अनशन तपमें इच्छानिरोधका तथ्य— १—अनशन मायने भोजनका त्याग करना, आहार न करना, उपवास करना, तो उपवास कब होता है? सुनो—मेरे आत्माका स्वभाव अनशनका है याने भोजन न करनेका है, यह तो ज्ञानस्वरूप है, आनन्दमय है, ऐसे अनशन-स्वभावी आत्मतत्त्वका ध्यान रखते हुए जो आहारका त्याग हो रहा है उसमें इच्छाओंका अभाव है, ऐसा उपवास तप कहलाता है। इच्छाके अभावकी बात न हो तो ऐसे तपको तो लंघन बताया गया है। जहाँ कषायें, विषय और आहारका त्याग होता है उसे तप कहते हैं, और बाकी तो लंघन है। तो तपश्चरण करने वालेको यह बुद्धि रखनी चाहिए कि मेरे आत्मा का तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप है। इसमें तो आहारकी कोई बात ही नहीं जग रही है। यह तो एक अमूर्त ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानरूप वर्तता रहे यही इसका काम है, ऐसा ध्यानमें रहे तो देखो उपवासमें क्लेश भी न होगा, और उपवासका सही फल भी मिलेगा। इच्छाका अभाव हो जायगा। भीतरमें कषाय है, विकल्प है, इच्छा है तो वह तप नहीं है। एक साँप था और कटोरेमें दूध पी जाता था, बच्चा बैठा रहता था, बच्चा साँपको हाथसे पीटता रहता था पर वह साँप उस बच्चेकी मार सह करके भी रोज-रोज दूध पी लिया करता था। यों थोड़े दिनों में ही वह साँप बड़ा मोटा हो गया। उससे किसी दूसरे साँपने पूछा कि भाई तुम इतने मोटे कैसे हो गए? तो उसने बता दिया कि भाई मैं तो रोज-रोज एक बच्चेके लिए रखा जाने वाला दूध पी लिया करता हूं, इससे मोटा हो गया हूं। दूसरे साँपने कहा कि मुझे भी पिला दो···अरे भाई तुम न पी सकोगे।···क्यों?···देखो जब मैं दूध पीता हूं तो वह बच्चा मुझे पीटता रहता है, पर मैं बराबर उसकी मार सहता रहता हूं। तुम उसकी मार न सह सकोगे।···अच्छा भाई हम उस बच्चेके १०० थप्पड़ तक माफ कर देंगे। आखिर ऐसा हुआ कि जब वह दूध पीने गया तो बच्चेने थप्पड़ मारना शुरू किया, वह साँप मन ही मन गिनता रहा। पर १०१ थप्पड़ मारनेपर साँपने फुंकार मारी, बच्चा चिल्लाया, लोग जुड़े और सर्प मारा गया। कषायविकल्पका यह फल मिला उसे। ऐसे ही यदि उपवासमें चित्तमें ऐसी बात आवे कि आज तो हमारा अष्टमीका उपवास है, पर आने तो दो नवमीका दिन, फिर तो हम मन-

मानी चीजें खूब खायेंगे, तो [illegible] मन क्या मिला ? आगममें तो ज्ञान की बात सामने हो, स्वाध्याय करें, ज्ञानकी बात सोचें, आत्माकी बात सोचें, आत्माका ध्यान करें।

ऊनोदरादि तपोंमें इच्छानिरोधका तथ्य—दूसरा तप है—ऊनोदर तप। भूखसे कम खावें, अधपेट भोजन करें। इच्छाओंका निरोध करें, अपने मनपर कंट्रोल करें। लोग नास्ता करते हैं तो उसका नाम नास्ता यों रखा कि नास्ता शब्दका अर्थ है—ना सता, इसमें ये दो शब्द हैं ना सता। इन दोनोंका मिलकर नास्ता बना। याने थोड़ा भोजन सामने हो जिससे कि भूख मिटे नहीं वह तो है नास्ता। अब यह नास्ता कर लेना तो बात और है, क्योंकि वह घंटेभर बाद डटकर खायेगा, पर भूखसे कम खाना बात और है। यह भी एक बहुत बड़ा तप है। तीसरा तप है—वृत्तिपरसंख्यान—याने कुछ आखड़ी लेकर भोजन करना। कि ऐसा योग मिले तो आहार करना, यह तप तो योगियोसे बनता है पर किसी किसी स्थितिमें गृहस्थ भी इस तपको कर लेते हैं। चौथा तप है रसपरित्याग। आज भी बहुतसे गृहस्थ ऐसे मिलते हैं कि जिनके मनमें आया कि मुझे अमुक चीज खानी चाहिए तो वे झट उस चीजको उस दिन त्याग देते हैं। वे सोचते हैं कि मेरे मनमें क्यों उस चीजके खानेकी इच्छा हुई ? कोई अगर ऐसी डींग मारे कि हमारा तो उस चीजका आज त्याग है जो चौकेके अन्दर न होगी। तो क्या यह कोई त्याग है ? हाँ, सही ढंगसे ऐसा कोई त्याग करता है तो उससे भी लाभ है। करे तो कोई, मनमें उस वस्तुका ख्याल ही न लाये। पांचवां तप है विविक्तशय्यासन—एकांत स्थानमें उठना, बैठना। वास्तविक एकान्त तो अपने आत्माका स्वरूप है। यहाँ कोई गड़बड़ नहीं। जो अपने आत्माका स्वरूप है वह एकान्त है, वहाँ कोई प्रकारका हल्लागुल्ला नहीं। केवल एक ज्ञानस्वरूप है। ऐसे स्थानमें आत्माका ध्यान करके तृप्त रहना यह भी तपश्चरण है। छठवाँ तप है कायक्लेश। गर्मीमें तपश्चरण कर रहे, आप कहेंगे कि ऐसा तपश्चरण क्यों किया जाता है ? करके देख लो—बाहरमें कष्ट और भीतरमें आनन्द। ऐसी स्थितियाँ होती हैं तपश्चरणकी। जिसको धुन हो अपने ज्ञानस्वरूपकी, उसके लिए ये सब बातें विदित हो जाती हैं। तो तपश्चरण वही है जहाँपर इच्छा नहीं रहती।

प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य व स्वाध्यायमें इच्छानिरोधका तथ्य—अब अन्तरंग तपश्चरण देखो—पछतावा करना। कोई भूल हो जाय तो उसपर अन्दरमें पश्चाताप होता है। तो बहुतसे पाप वहाँ कट जाते हैं। पश्चातापमें बड़ी सामर्थ्य है। जो दोष करके भी पछतावा करनेका भाव मनमें नहीं रख पाता वह बड़ा दोष है। हो गया दोष, मगर उसका इतना बड़ा पछतावा ज्ञानी करता कि किया हुआ दोष भी बहुत कुछ दूर हो जाता है। तो जिसने प्रायश्चित कर लिया और उसके अनुकूल कर्म किया तो वह सफलता प्राप्त कर लेगा। दोषका

पछतावा आने दो । पछतावामें जो निर्मलता होती है वह बड़ी विलक्षण होती है । जैसे कि प्रतिक्रमण करनेका एक रिवाज हो गया कि मेरा पाप मिथ्या हो । तो इस तरहसे रिवाजमें नहीं, वह तो भीतरमें पछतावा है, तो वहाँ एक ऐसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता कि भव भवके बाँधे हुए अनेकों कर्म निकल आते हैं । दूसरा अन्तस्तप है विनय । इसमें मान कषायका बहुत अधिक मर्दन होता है । कोई कोई लोग तो ऐसे हैं कि जो भगवानके सामने भी सिर झुकानेमें संकोच सा करते हैं, बस जरा सा झुके और चल दिए । वह सोचता है कि देखने वाले लोग उसे क्या कहेंगे ? ये शायद यही कहेंगे कि यह तो बड़ा बेवकूफ है । गुणियोंसे प्रेम करना, अपने को नम्र बनाना यह सब तप कहलाता है । तीसरा अन्तस्तप है वैयावृत्य, दूसरोंकी सेवा करना, वैयावृत्ति करना, दूसरोंकी सेवा कोई ऐसी वाञ्छा रखकर करे कि मुझे तो इसके बदले में सुख प्राप्त होगा, धन वैभव की प्राप्ति होगी तो उसे उस वैयावृत्ति करने का लाभ क्या ? यद्यपि लाभ तो मिलेगा वैयावृत्ति करने से, पर उस लाभकी वाञ्छा रखकर वैयावृत्ति न करना चाहिए । चौथा अन्तस्तप है स्वाध्याय । स्वाध्याय करना परमतप है । जिसमें आत्माका ज्ञान होता हो वह स्वाध्याय है । स्वाध्यायमें इच्छाका निरोध बसा हुआ है । पर ऐसा स्वाध्याय न करें कि आये, दो लाइन देख ली, चल दिये । एक भक्तने एक पुस्तक खोली—मान लो प्रमेयकमल मार्तण्ड ग्रन्थ निकल आया तो एक दो लाइन पढ़कर देखा—सोचा कि अरे यह तो बहुत कठिन है सो उसे धर दिया, दूसरा ग्रन्थ उठाया, मानो अष्टसहस्री ग्रन्थ निकल आया, उसे भी एक दो लाइन देखकर कठिन समझकर धर दिया, फिर तीसरा ग्रन्थ उठाया—मानो राजवार्तिक निकल आया तो उसकी भी एक दो लाइन देखी और कठिन समझकर उसे धर दिया । तो झुंझलाकर कह उठा कि अरे इन ग्रन्थोंमें यही तो ऐब है कि समझमें नहीं आते । तभी तो बँधे हुए रखे रहते हैं । अरे भाई खुदकी गलती क्यों नहीं मानते ? जरा कुछ ज्ञानका अभ्यास करो तो यहाँ कौनसी कठिन बात है जो समझमें न आये । यदि अपने आत्माका उद्धार करना है तो एक दृढ़ संकल्प बनाओ कि मुझे तो मनचाही बात नहीं चाहना है, मुझे तो आत्महितकी बात चाहना है । मुझे तो अपने आत्माके अन्तःस्वरूप का दर्शन करके रहना है । मनपसंद बातोंसे आत्माका कल्याण नहीं होता । वह तो एक मन को खुश रखनेकी बात है । उससे तो और क्षोभ ही बढ़ेगा । अरे अपना ऐसा संकल्प बनाओ कि मुझे तो मनपसंद नहीं करना है, मुझे तो आत्मपसंद करना है, आत्मज्ञान करना है वास्तविक ज्ञान प्रकट करना है । जब आप अपनी इतनी बड़ी उम्रमें भी विद्यार्थियोंकी भाँति किताबें बगलमें दबाकर पढ़ने जायेंगे तो इतनेसे ही आपको बड़ा लाभ मिलेगा । उस समय आप अपनेको निष्पाप और निर्भार अनुभव करेंगे ।

व्युत्सर्ग व ध्यानमें इच्छानिरोधका तथ्य—पाँचवां अन्तस्तप है व्युत्सर्ग—इस कायसे

ममत्व त्याग दें। आप सब जानते हैं कि एक दिन यह शरीर जला दिया जायगा। शायद यह विश्वास तो सबको होगा। तो ऐसी बात आप सोचें मनमें कि यह शरीर है। जो कुछ आदमियोके द्वारा ले जाया जायगा, जला दिया जायगा। इस शरीरको छोड़कर जाना होगा। इतनी बात चित्तमें हो तो आपको शरीरसे ममता न आयगी। छठा अन्तस्तप है ध्यान। चित्त के एकाग्रनिरोधको ध्यान कहते हैं। चित्तको स्वस्थ एकाग्र बनाये विना शान्तिमार्गके पात्र नहीं बन सकोगे। चित्तको ऐसे तत्त्वकी ओर उपयुक्त रखो जिसके आश्रयसे विकल्पविपदा दूर हो सके। वह तत्त्व है आत्माका सहज अभेद ज्ञायकस्वभाव। इस अन्तस्तत्त्वकी चर्चासे, इस अन्तस्तत्त्वके उपयोगसे अपने आपको प्रसन्न बनाओ। ध्यान तप आत्माकी कलुषताओंको जला देगा, आत्माको पवित्र कर देगा। हमारा पौरुष अन्तस्तत्त्वकी ओर उपयोगको लगाये रखनेका होना चाहिये। यह अन्तस्तप है। इसके माध्यमसे जो चैतन्यमें अपने आपका प्रतपन होता है वह वास्तविक प्रतापको प्रकट करता हुआ आत्माको मंगलमय, परमानन्दमय बना देता है। [illegible] न सब तपोंमें इच्छाका निरोध बसा हुआ है इसलिए ये तप कहलाते हैं।

सर्वस्व न्यौछावर करके भी शीघ्र ब्रह्मप्रकाश पा लेनेका सन्देश—तप करनेके लिए, [illegible] ज्ञानसाधना करनेके लिए हमें जल्दी करना चाहिए। अपना जीवन व्यर्थ न गमावें। [illegible]— इस जीवनका जो समय गुजर गया वह पुनः लौटकर नहीं आता। आज तक जितनी उम्र बीत गई समझो उतना ही हम मरणके निकट होते गए। इसलिए ज्ञानसाधनाका कार्य [illegible], जिन्दगी बीती जा रही है। नहीं तो बादमें बस पछतावा ही हाथ लगेगा। यह मनुष्य अपने बचपनकी उम्रको तो यों ही खेल खिलौनोंमें रमकर गवाँ देता है, किशोर अवस्था [illegible] नाना तरहकी कलाओंमें उलझकर अपना सारा समय खो देता है। जवानीमें यह [illegible] धंधोंमें फंसकर अपनी जवानीका समय गंवा देता है और वृद्धावस्था तो [illegible] के समान है। बस अंधे उल्लू जैसे बनकर खाटमें पड़े पड़े अपनी उम्र व्यर्थ खो [illegible] बड़ी जिम्मेदारी है अपने आप पर। अपनेको ज्ञान और वैराग्यमें निरन्तर [illegible] लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस आत्मज्ञानके लिए तो जो कुछ भी करना [illegible] न, तन, वचन आदिक जो कुछ भी न्यौछावर करने पड़ें उनको न्यौछावर करके [illegible] प्राप्त होता है तो यह तो प्राप्त यों हो गया समझिये [illegible] करते हैं [illegible] प्राप्त करना। विशुद्ध ज्ञान करनेमें, इच्छा निरोधमें आनन्द है। [illegible] अनुभव करें। [illegible] तो आप अपने को सुखी मानते हैं। तो मानें [illegible] इच्छा नहीं रही उसका सुख है। मान लो किसी ने मकान बनवाया [illegible] सुखी मानता है तो वहाँ सुख उस मकानमें से निकलकर नहीं आया [illegible] नहीं रहा, इस बातका उसे सुख है। तो जहाँ [illegible]

...ता है, यही पद है। अब यह भी तो विचार करो कि मैं तो ज्ञानघन हूँ, ज्ञानसे ही ...हुआ हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, जो है सो ही है। इसमें कोई अनुराग नहीं। मेरे ...ने को क्या काम? जितने शब्द व्यवहारमें बोले जा रहे ये सब अज्ञानसे बोले जा रहे। सो ...करने को क्या पड़ा? कुछ काम है ही नहीं मेरे करने को। मैं ज्ञानघन हूँ, निरन्तर ज्ञान ...करता हूँ, ज्ञानको भोगता हूँ, यह ही मेरी बात है। इस ओर उपयोग रहे तो इसे शान्ति ...गी। जहाँ इच्छाओंका निरोध है वहाँ शान्ति अवश्य है। सो तपश्चरण किसका नाम ...? जहाँ कोई इच्छा नहीं, कोई क्षोभ नहीं।

शारीरिक, वाचनिक व मानसिक तपका निर्देश—गीतामें तीन प्रकारके तपोंमें तीन ...क दिए हैं—१. शारीरिक तप, २. वाचनिक तप और ३. मानसिक तप। शारीरिक तपमें ...ते हैं कि देवताकी साधुवोंकी गुरुवोंकी, बुद्धिमानोंकी पूजा करना, अर्चना रखना, सरलता ...ना, ब्रह्मचर्यसे रहना—ये सब शारीरिक तप कहलाते हैं। जो ज्ञान ब्रह्मके दर्शन करनेका ...यकारी बन सके। वाचनिक तपमें कहते हैं कि ऐसा वचन बोलो जिसमें उद्वेग न हो। ...ई अपने जीवनमें एक यह ही धारणा बना लो कि अपनी शेष जिन्दगीमें कोई ऐसे वचन न ...गे कि जो मर्मभेदी हों, अभिमान भरी बात न बोलें। अरे जगतमें कौन बड़ा बनकर रह ...ा? जिसे आप छोटा समझते हैं कहो वही कभी आपके काम आ जाये। भाई किसे समझते ...कि छोटा है? और अपनी बात जाने दो, आज जिसे कीड़ा मकोड़ा समझते कि यह छोटा ...—और यह मनुष्य बड़ा है। अरे मनुष्य मरकर बन जाय कीड़ा मकोड़ा और कीड़ा मरकर ... जाय आदमी तो फिर कौन बड़ा रहा और कौन छोटा? सब जीवोंका समान स्वरूप है। ...ामें मानसिक तपमें बताया है कि मनकी प्रसन्नता हो। मन प्रसन्न कैसे रहता है? जरा ...ो—बढ़िया भोजन मिले, बढ़िया रूप देखनेको मिले तो उस समय मन प्रसन्न ...ीं रहता। विषयोंके प्रसंगमें जीव मानता है कि मेरा मन खुश हो रहा, मगर ...ा समय पाँचों इन्द्रियोंके भोग भोगता उस समय मन क्षुब्ध है, आकुलित है। मनमें प्रस-...ा तो ज्ञानके बलपर आती है। मनमें प्रसन्नता होना, सौम्यता होना, अपने आपको दण्ड ...ा, सन्तोष करना, अपनेको वश करना, स्वाध्यायका अभ्यास करना, ये सब मानसिक तप ...लाते हैं।

उन्नति और अवनतिके निर्णयकी उपयोगिता—भैया! कमसे कम साल भरमें अपना लेखा-जोखा तो लगाना चाहिए। दिन भरमें आपने क्या काम किया, कितना अच्छा किया, कितना बुरा किया ऐसा लेखा रोज-रोज लगाना बताया है। रोज नहीं तो करीब १५ दिनमें हिसाब लगा लो, महीने भरमें लगा लो, महीने भरमें नहीं तो साल भरमें एक चिट्ठा तो अपने आत्माका बना लो, सालभरमें भी यदि आत्मचिट्ठा नहीं बनाते तो फिर यह आत्माकी फर्म

फेल हो जायगी । अगर ज्ञान और वैराग्यके मार्गमें कुछ प्रगति करना है, संसारके जन्म मरण से छुटकारा पाना है तो इस कामके लिए उत्साह बनाओ । जिन बातोंमें सबनेको अभय मान रहा है, मोह ममता रागद्वेष बना रहा है, वे तो भयपद हैं और जिन ज्ञान वैराग्यकी बातोंमें भय मान रहा है वह अभयपद है । तो भाव ही शरण बना सकते हो, सो उनमें से रागद्वेष मोह ममता आदि न बनकर उनसे विरक्त रहनेके भाव बनें । जब किसी बच्चेको गोदमें लिए हुए आप खिला रहे हों तो उस समय आप उसके प्रति ऐसा भाव भी तो बना सकते कि यह भी एक जीव है, इसके साथ भी कर्म लगे हैं । यह भी एक दिन मेरेसे बिछुड़ जायगा, इससे मेरा कोई नाता नहीं····। अब देखिये बच्चेको गोदमें खिलाते हुए भी आप धर्म पाल सकते हैं। मोह ममता रागद्वेष आदिका परिणाम जहाँ न रहे, जहाँ ज्ञानका शुद्ध स्वच्छ प्रतिभास है वह है धर्म । चाहे ऐसा धर्म पूर्ण रूपेण कर न सकें मगर श्रद्धामें हल्की बात मत लावें । श्रद्धा मुनियोंसे कम न रखें, नहीं तो इस संसारसे पार नहीं हो सकते । आप प्रेम करें तो भगवान से करें, गुणियोंसे करें, परन्तु श्रद्धा यह रहनी चाहिए कि रागकी, प्रेमकी प्रक्रिया भी पाप ही है । आप प्रेम विरोध मोहसे दूर रहें व जो ज्ञान और वैराग्यकी बात है उसके करनेमें प्रमादी न बनें । आप यदि चाहें कि हमें कुछ करना न पड़े, दूर दूर ही रहें और हमारा कल्याण हो जाय, तो यह बात हो कैसे सकेगी ? जैसे कोई बच्चा एक बार अपनी माँ से बोल उठा कि माँ जी मुझे तैरना सिखा दो । तो माँ बोली—हाँ बेटा सिखा देंगे ।····मगर माँ एक बात है कि इस तरहसे तैरना सिखाना कि मुझे पानीमें पैर न रखना पड़े ।···अब भला बतलाओ पानीमें बिना कूदे तैरना कैसे सीखा जा सकता है ? ठीक ऐसे ही समझिये कि बिना कुछ ज्ञानाभ्यास किए ज्ञान और वैराग्यकी बात कैसे प्राप्त हो सकेगी ? अपनी उन्नतिके लिए मुख्य काम दो हैं—विनय और त्याग ।

वास्तविक तपविधिमें आनन्दका प्रवाह—भैया ! तप करें मगर तात्त्विक तप करें । कुतप मत करें । कुतप क्या है ? अपने सत्कारकी इच्छासे, मानकी इच्छासे, पूजाकी इच्छासे, कपटसे तप करना सो कुतप है । जिसने भीतरमें अपने ज्ञानका प्रकाश पाया है वह दम्भकी बात कर ही नहीं सकता । लोगोंसे सत्कार मान आदिकके उद्देश्यसे वह तप कर नहीं सकता, वह तो बस गुप्त ही गुप्त रहकर अपना कल्याण कर जाता है । किसी जमानेमें ऐसे भी साधु हुए कि जिनको उस जमानेमें कोई जानने वाला न था, मगर वे मुक्त हुए, तो भले ही किसीने उनको नहीं जान पाया मगर उनका आनन्द क्या भगवान ऋषभदेवके आनन्दसे कम है ? जिसे कोई नहीं जानता वह भी अगर मुक्त हो जाय तो उसे भी उतना ही आनन्द प्राप्त होता है जितना कि लोक प्रसिद्ध भगवानको आनन्द है । तो दम्भ आदिकसे जो तपश्चरण होता है वह तो सब कुतप हैं । जो किसी भी प्रकारके फलकी आकांक्षाके बिना तप होता है वह वास्त-

विकल्प है। तपश्चरणके प्रसंग भरी है। इच्छानिरोधः तपः— इच्छाओंका निरोध करना तो तप है। जहाँ इच्छाका अभाव है वहाँ आनन्द ही आनन्द है। एक बार किसी पुरुषने अपने मित्रको एक चिट्ठी लिखी कि मैं अमुक तारीखको १० बजेकी ट्रेनसे अमुक जगह जाऊँगा सो आप स्टेशनपर आकर मुझसे मिल लेना। अब गया था, जब वह दिन आया तो सारे कार्य छोड़ी जल्दी-जल्दी करके और ठीक १० बजेके करीब उस स्टेशनपर पहुँच गया। स्टेशन मास्टरसे पूछा कि गाड़ी लेट तो नहीं है? ...हाँ आधा घंटा लेट है, वह मन ही मन बड़ा विकल्प ही रहा था अपने मित्रसे मिलनेके लिए। जब ट्रेन आयी तो सारे डिब्बोंमें दौड़-दौड़कर देखा, एक डिब्बेमें मिल गया वह मित्र। कुछ बात की, पर एक दो मिनट बाद ही वह खिड़कीसे झाँकने लगा कि कहीं गार्डने हरी झंडी तो नहीं दे दी, सीटी तो नहीं दे दी। ...अरे भाई उस मित्रसे मिलनेसे अगर तुम्हें सुख मिलता है तो बराबर मिलते ही रहो। क्यों खिड़कीसे बाहर झाँकते? आखिर तुम्हें सुख ही तो चाहिए। पर नहीं, वह वहाँसे शीघ्र ही उतरने लगता है। तो वास्तवमें बात वहाँ क्या थी कि उसे मित्रके मिलनेसे सुख नहीं मिला, बल्कि मित्रसे मिलनेका कार्य अब नहीं रहा, इससे सुख मिला।

निरीह चर्यामें ही कल्याणलाभ—एक कविने कहा है कि भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः। कालो न यातो वयमेव याताः, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥ अर्थात् मैंने इन भोगोंको नहीं भोगा, किन्तु मैं ही स्वयं इन भोगोंसे भुग गया, मैंने तपोंको नहीं तपा किन्तु मैं ही इन तपोंसे तप गया अर्थात् दुःखी हो गया (यहाँ कुतपकी बात कह रहे हैं।) यहाँ लोग शानमें आकर कह बैठते कि मेरा लड़का अब १७ सालका हो गया, पर भाई इसका अर्थ क्या यह नहीं है कि आपका पुत्र अब १७ वर्षका कम हो गया याने जितना उसका सारा जीवन था उसमें १७ वर्ष कम हो गए। तो यह जीवनका समय क्या गुजरता जाता है बल्कि खुद ही गुजरते जाते हैं। ज्ञानार्णवमें बताया है कि यावद्यावच्छरीराशा धनाशा वा विसर्पति। तावत्तावन्मनुष्याणां, मोहग्रन्थिर्दृढीभवेत्। जैसे-जैसे यह आशा बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे मोहकी गांठ बढ़ती जाती है, तो तपश्चरण करते बने तो करें, न करते बने तो उसकी महिमा समझें कि संसारसे पार होनेमें तपका कितना बड़ा माहात्म्य है? ज्ञानका ही माहात्म्य है, इच्छानिरोधका ही प्रताप है कि इस संसारके आवागमनसे छुटकारा प्राप्त होनेका मार्ग मिल सकता है। भागवतके पञ्चम स्कन्धमें वर्णन आया है कि जिन दिनों भोगभूमि खतम हो चुकी थी, कर्मभूमिका प्रारम्भ था उन दिनों सारी जनता भूखों रहने लगी थी। किसीको जीवन निर्वाह करनेकी कला ही न विदित थी, उस समय ऋषभदेवने सभीको सभी प्रकारकी कलाओंकी शिक्षा दी थी। सभीको कष्टोंसे बचाकर एक सुख शान्तिके मार्गमें लगा दिया था, इसीलिए भगवान ऋषभदेवको आदिम बाबा, आदि पुरुष या ब्रह्माके रूपमें

जानो कि यह मैं आत्मा अरहंत और सिद्धके समान केवल जाननहार हूँ। इससे आगे मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है। ऐसी दृष्टि होते ही सब संकट दूर हो जाते हैं। संकट क्या है? कुछ का कुछ मान रखा है वही संकट है। और इस विपरीत मान्यताको छोड़ दें सोई संकटोंका विनाश है।

त्याग बिना संसारसे पार होनेका अभाव—एक साधु महाराज थे। वे उपदेश दिया करते थे कि भाई त्यागसे तो संसारसमुद्र पार कर लिया जाता है। एक बार वह साधु किसी दूसरे गांवको जाने लगा तो रास्तेमें नदी पड़ती थी। नाविकसे कहा कि नदीसे हमें पार कर दो। नाविकने कहा कि महाराज दो आने लेंगे। साधुके पास पैसे कहांसे आये? सोचा उस पार नहीं पहुंचते तो इसी पार सही। वह बैठ गया। इतनेमें उनके भगत सेठ जी आये। बोले महाराज यहाँ कैसे बैठे हो? कहा भाई हमें उस पार जाना था, पर यह दो आने मांगता है। कहा हमें भी उस पार जाना है सो आप भी साथमें चलो। चार आने दिया और उस पार पहुंच गये। पार पहुंच जाने पर सेठ जी कहते हैं महाराज तुम तो कहा करते हो कि त्यागसे संसारसमुद्र भी पार कर लिया जाता है आप तो छोटी सी नदी भी नहीं पार कर पाये। साधु बोला कि नदी जो पार की गई है वह त्यागसे ही की गई है। यदि आप अंटीकी चवन्नीका त्याग न करते तो नदी कैसे पार करते? त्यागसे तो गुजारा चल सकता है पर मात्र ग्रहणसे गुजारा ही नहीं चल सकता है। अच्छा खूब पैसोंका संचय करो। संचय करके क्या पूरा पड़ेगा, शांति होगी, संतोष होगा, समता बनेगी? सो तो सोच लो, और देखो यहां त्यागसे तो बहुत बढ़िया गुजारा होता है। तीर्थंकरोंने त्यागा, चक्रवर्तियोंने त्यागा, अनेक महापुरुषोंने त्यागा तो वे सदाके लिये सुखी हो गये। तो त्यागसे तो पूरा पड़ जाता है पर ग्रहण से तो पूरा पड़ ही नहीं सकता। मिथ्यात्व मोहमें तो व्यर्थ ही अनेक की गुलामी करना पड़ती है और है क्या? बच्चोंके पुण्यका उदय बापसे अधिक है तभी तो बच्चोंका दास बन कर बाप उनकी सेवा किया करते हैं। जिन-जिनके भोगनेसे यह लक्ष्मी आयेगी उन सबके पुण्यके कारण आपके निमित्तसे कमाई बन जाती है। यह त्याग धर्म, धर्मका अंग है और अभंग तप गुण करके सहित है। ऐसे पवित्र त्याग धर्मको हे भव्य जीवो! भक्तिपूर्वक पालना चाहिये।

आन्तरिक त्याग और बाह्य त्यागकी आवश्यकता—उत्तम-त्याग सम्यग्दर्शन सहित अर्थात् आत्माके शुद्ध स्वभावकी प्रतीतिपूर्वक परवस्तुके सम्बन्धमें ग्रहण और त्याग दोनोंके विकल्पोंका त्याग किये रहनेके स्वभाव वाले ज्ञानकी विशुद्ध वृत्तिसे बर्तना उत्तम त्याग है। जगत्का कोई पदार्थ मेरा नहीं, मेरा स्वरूप ही मेरा है, परपदार्थ मुझसे भिन्न ही हैं। फिर मैं उन पदार्थोंको छोड़ूं क्या? वे तो अपने आप ही छूटे हुये हैं। हां, यह मेरा है, इस प्रकार

का विकल्प जो है उसको छोड़ता है और उसको [illegible] । [illegible] पदार्थ मेरे हैं" यह विकल्प नहीं रहता, [illegible] भिन्न ज्ञानमात्र [illegible] बुद्धि रहती है, ऐसे ज्ञानीके बाह्य पदार्थोंका त्याग स्वभावतः हो जाता है। मुनियोंको कमण्डल और पीछी ज्ञानी श्रावक देता है, परन्तु उन सामानोंमें उसका भी राग नहीं होता। [illegible] वाला श्रावक भी इस श्रद्धा से भरा होता है कि मैं मात्र [illegible] मेरा नहीं है, मैं आत्मा तो ज्ञानमय हूं, ज्ञानके अतिरिक्त और मेरा है ही क्या ? मैं [illegible] हूं ? ऐसी श्रद्धा वाला श्रावक तीर्थ (व्यवहार धर्म) की रक्षाके नाते उनके बाह्य साधनोंके लिये जो प्रयत्न करता है, जो बाह्य वस्तुका त्याग करता है, उसे भी उपचारसे त्याग कहते हैं। वस्तुतः तो जगत्का साक्षी रहना, मात्र ज्ञाताद्रष्टा बना रहना, उसे ही उत्तम त्याग कहते हैं। यह आत्मा तो सदैव किसी न किसी स्थितिमें रहेगा ही। ऐसी आत्मा विषयकषायोंके दुःख न उठाये, जो ऐसा चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे आत्मज्ञानपूर्वक आत्मस्वभावमें स्थिर होनेका प्रयत्न करें और क्योंकि उपयोग सदैव आत्मस्थ रहना असम्भव है, अतः बाह्यमें जब कार्यमें लगना ही पड़ता है तब उसे चाहिये कि वह चारों प्रकारके संघ, मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका, इनको आहार, औषधि, अभय व शास्त्र चारों प्रकारका दान दे।

दानसे धर्मप्रवृत्ति—गृहस्थको पूजा और दान दो चीज करना बताया। यदि यह भी नहीं निभते तो उसके गृहस्थ बने रहनेमें क्या रहा ? यह परलोक सुधारने वालोंके लिये आवश्यक बात है कि वे चारों प्रकारका दान दें। दान देना भी धर्मका अंग है, किन्तु जिसे किसी वस्तुका दान देना है, दान देनेमें जो विकल्प आता है कि 'मैं दान दे रहा हूं' वह रागरूप है और रागरूप होनेसे वह धर्मका भाव नहीं है। अतः दान देना वही उचित कहलाता है जहाँ मोहका भी त्याग हो। धनके त्यागका नाम भी उत्तम त्याग बताया यदि धनका त्याग करते समय उसके मोहका भी त्याग हो। पात्र-सुपात्रके लिये हमेशा ऐसा उत्तम त्याग करना चाहिये। उत्तम त्याग ऐसा है जो परभवमें सुखी होनेको पाथेय (कलेवा) है। गृहस्थ जनो ! धनकी रक्षा भी करो, किन्तु उसमें मोह तो न करो, सत्य प्रतीतिसे तो न चिगो। बाह्य अर्थका मोह न करो, बाह्य समागम तो कर्मका ठाठ है। इष्ट समागम पुण्यका विपाक है। पुण्यका जहाँ उदय नहीं है तो वह धन अपने हाथमें नहीं रह सकता। इसलिये त्यागधर्म का पालन करना चाहिये। देखो, लौकिक काम भी त्याग बिना नहीं होते। इसलिये यदि हम रागादिका त्याग करेंगे तो संसार-समुद्रसे पार हो जायेंगे। मनुष्य आया तो कुछ नहीं लाया, जायेगा तो कुछ साथ नहीं ले जायेगा, जो कुछ यहां पाया है वह यहीं रह जायगा। बीच ही में तो सब कुछ मिला था और बीच ही में नष्ट हो जायगा। अतः इसका जितना भी सदुपयोग हो सके, कर लेना चाहिये। इस सबसे निकलना तो है ही, सब कुछ छोड़कर जाना तो है

भी फिर ऐसा अवसर आया है कि हमारे पास चार पैसे हैं तो इसका उत्तम लाभ उठायें। क्यों नहीं इसको दानके उपयोगमें लावें, छोड़ना वैसे भी है। भैया, धनकी तो तीन ही गति बताई है—या तो खा पी लो या दान कर लो, नहीं तो नाश होगा ही। लौकिक-दृष्टिसे भी दान देनेकी शोभा, जायदादकी तरह है। सेठ हुकुमचन्द जी ने एक करोड़का दान दे दिया। इस दानसे तो यह देखा जा रहा है कि उनका यह दान उनकी जायदादमें ही शामिल हो गया। लोगोंमें यश है कि सेठ जी ने एक करोड़का दान किया तो ऐसी उक्तिका लक्ष्य बनना उनकी धन जायदादसे भी बड़ी जायदाद है। वह दान करना, मानो इसी भवमें अपनी जायदाद बनाना व यश बढ़ाना है और परलोकमें दानके फलसे उत्तम फल होगा ही। दानसे आत्मशत्रु भी पराजित हो जाते हैं। जो धनमें ममत्व था, राग था वह दान देनेसे नष्ट हो जाता है, यह बड़ा भारी लाभ है और देवगति या भोगभूमिका सुख मिलता है यह आनुषङ्गिक लाभ है।

दानप्रकृतिवाले महापुरुषोंको दान न दे सकनेकी परिस्थितिपर विषाद—एक गरीब उदार कवि था दाने दानेको मुहताज। उसकी ऐसी प्रकृति थी कि उसको जो मिल जाता उसे वह भिखारियोंको दे देता था। वह कवि था। उसकी पत्नीने कहा कि हम इतने दुःख पा रहे हैं। जाओ राजा भोजके दरबारमें एक कविता बनाकर ले जाओ, देखो वह कवियोंका बड़ा आदर करता है और कविता सुनाने वालोंको लाखों रुपया दान देता है। वह दरबारमें कविता ले गया और सुनाने लगा—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदंभोजखंडं, त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं, हतविधिलचितानां हि विचित्रो विपाकः॥

जिसका भावार्थ यह है कि कर्मका फल बड़ा विचित्र है। प्रभातकाल होते ही कमलिनियोंका वन तो शोभारहित हो गया है और कमलोंका वन शोभासहित हो गया। हे प्रभात! तेरे आते ही एकका नाश हो रहा है और दूसरेका उदय हो रहा है। सुबह होते ही उल्लूका हर्ष नष्ट हो गया और चकवा सुखी हो गया। प्रभात होते ही सूर्यका उदय हो रहा है और चन्द्रमा अस्तको प्राप्त हो रहा है। कर्मके प्रेरे हुये प्राणीका बड़ा विचित्र स्वभाव है। इस कवितापर प्रसन्न होकर राजाने उसको एक लाख रुपया दिया। राजदरबारसे चला तो भिखारियोंने उसे घेर लिया, क्योंकि वे जानते थे कि वह जो कुछ धन उसके पास होता है, दान दे देता है। आदत ही ऐसी होनेके कारण वह उन्हें दान देता गया और आगे बढ़ता गया और इस प्रकार बीचमें ही सब रुपया समाप्त कर दिया। जब वह घर पहुंचा तो उसके चित्तपर उदासी छा रही थी। स्त्रीने पूछा कि आप उदास क्यों हैं? राजाने इनाम नहीं दिया क्या? वह बोला कि इनाम तो मिला था, परन्तु मैं इसलिये दुखी हूं कि—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा ।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यते ॥

अर्थात् दरिद्रताका संताप तो मैंने आसानीसे नष्ट कर दिया और सन्तोष कर लिया, परन्तु याचक लोग आशा ले लेकर मेरे पास आते हैं और उसकी पूर्ति मैं नहीं कर सकता। उनकी आशाका इस प्रकार घात हो जानेसे मेरे मनमें आघात पैदा हो गया है, उसे कैसे शान्त करूँ, इसकी उदासी है ? इसी तरह बड़े-बड़े पुरुषोंको बाह्य परिग्रहोंसे मूर्च्छा नहीं होती और यही कारण है कि इतने तीर्थ और इतने मंदिर हमें दिखाई देते हैं, जिनकी उदात्त प्रकृति होती है वे जो भी बड़े-बड़े कार्य करते हैं आसानीसे कर सकते हैं। दान देनेका बड़ा उत्तम फल होता है। दान देकर विनय प्रकट करना चाहिये। दान दिया और लेने वालोंपर अकड़ गये तो सब फल मटियामेट हो जाता। किसीको खाना खिलाया और कह दिया कि तेरे बाप ने भी कभी ऐसा खाना खाया है, तो खाना खिलाना सब व्यर्थ हो गया। प्रेमपूर्वक शुभ वचनों से दान देना चाहिये। अभयदान बड़ा दान होता है। प्राणियोंको भय न रहे, वे निर्भयतामें आत्मस्वरूपके संभालका अवसर पा सकेंगे। यों अभयदान ज्ञानदानका सहयोगी होता है।

ज्ञानदानकी श्रेष्ठता—परपदार्थोंसे मोहभावको दूर करके आत्माके स्वरूपको पहिचान कर जो अनन्त संसारका विनाश कर देता है, उस ज्ञानदानके बराबर तो दान ही क्या है ? आजके युगमें ज्ञानदानकी प्रचुरता होनी चाहिए। नहीं तो वह समय शीघ्र आयेगा कि कल्याणार्थी आरामसे नहीं रह सकते। हम लोगोंको अपना साहित्य प्रचार करके दुनियाको दिखाना है कि आत्माका हित कैसे हो सकता है ? आज अन्य लोगोंने अपना भौतिक साहित्य प्रचार करके दुनियापर अपना रंग जमा रखा है। ऐसी हालतमें यदि कुछ भी नहीं कर सके तो बहुत दिनोंके बाद खतरनाक हालत हो सकती है। आज साहित्यप्रचार और शिक्षादानकी आवश्यकता है। आज समय यह है कि विदेशोंमें भी हमारा कुछ उत्तम साहित्यका प्रचार हो और वह साहित्य उनके समझमें आ जावे। एक बार सुनते ही वे झट श्रद्धालु हो जाते हैं। यही कारण है कि विलायत जैसी जगहोंमें सद्धर्मके केन्द्र बन गये, तत्त्वचिन्तन बन गये अंग्रेजो जर्मनोंमे भी स्याद्वादानुगामी हो गये। विदेशोंपर भी साहित्य प्रचारका प्रभाव है, जिससे सारा जगमात्र सुखी रह सकता है। ज्ञानदानमें ही शिक्षादान गर्भित है। धर्मशिक्षा बच्चों को पढ़ानेकी आवश्यकता है ताकि वे धर्मको जानने वाले बनें और सदा उसकी रक्षा कर सकें।

शान्तिके अर्थ ज्ञानविकासकी आवश्यकता—आजकल लोग अध्ययनका प्रयत्न नहीं करते और आचार्योंकी व्यवहारानभिज्ञता आदि बताते हैं, उन्हें विद्याका यत्न करना था। एक आदमी जो संस्कृत नहीं जानता था, शास्त्र भण्डारमें गया और शास्त्र निकालकर पढ़ने लगा, परन्तु पढ़ नहीं सका। दूसरा निकाला तो वह भी नहीं पढ़ सका। इस प्रकार जब व

कुछ भी नहीं पढ़ सका तो कहने लगा कि हमारा इसमें कोई दोष नहीं है, इन शास्त्रोंका ही ही दोष है, जो हमारे पढ़नेमें नहीं आते। अपना दोष नहीं बताया कि मुझे ही इनकी शिक्षा नहीं दी गई। इसी प्रकार आचार्योंने जो कुछ कहा है बिल्कुल सत्य कहा है, परन्तु हम लोग उसको जाननेका तो प्रयत्न करते नहीं और दोष मंढ़ते हैं आचार्योंके सिर कि उन्हें व्यवहार का ज्ञान ही नहीं था। तभी तो उन्होंने ऐसी-ऐसी कठिन बातें लिख दीं जो आजकल पालन भी नहीं हो सकतीं। यदि संसारके जीवोंके सन्तापको दूर करना है तो साहित्यप्रचार और शिक्षादान—इन दो बातोंपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। दानोंमें सर्वप्रधान दान ज्ञानदान है। जो सम्यग्दर्शन और रत्नत्रयकी आराधना कराये, अर्थात् उन्हें ग्रहण कराये और से ममत्वरहित होकर आत्मभाव प्राप्त कराये, वह उत्तम त्याग है।

ज्ञानदानका पात्रको तात्कालिक फल—सबसे बड़ा दान ज्ञानदान है, जहाँ कर्तृत्वबुद्धि लगी हुई है कि मैंने यह किया, मैं उसको सुखी करता हूं, मैंइसको दुःखी करता हूं, क्या उनको शान्ति है ? शान्ति कैसे मिलेगी ? कर्तृत्वबुद्धि मिटानेसे शान्ति मिलेगी। वस्तुके स्वतन्त्र स्वभावका अनुभव हो कि हर वस्तुका स्वतन्त्र परिणमन है, एक वस्तु दूसरेका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है, सब पदार्थ अपने ही परिणामसे परिणमन करते हैं, कोई भी रंचमात्र कुछ भी नहीं कर सकता। इस प्रकारके अनुभवसे शांति मिल सकती है और यह अनुभव ज्ञानकी ही देन है। सम्यग्ज्ञानके अभावमें ही करनेकी चिंता लग जाती है कि मैं यह कर रहा था, यह करूंगा।

चाए आवागमणउ हरइ, चाए णिम्मल कित्ति पवट्टइ।
चाए वयरिय पणमिइ पाये, चाए भोगभूमि सुह जाए॥

त्यागद्वारा वैरियोंपर सत्य विजय—त्याग धर्मसे अवगुणोंका समूह दूर हो जाता है। त्याग धर्मसे निर्मल कीर्ति विस्तृत हो जाती है। त्याग बिना यह जीव शांतिसे रह नहीं सकता। जिनके पास शरीर बल है वह शरीरसे उपकार करता है तो महनीय बनता है। जिसके पास धन है वह धनका त्याग न करे तो चाहे बड़ा भी धनिक हो जाय पर लोककी दृष्टिमें उसकी कुछ महत्ता नहीं रहती, और जिसकी लोकदृष्टिमें भी महत्ता नहीं रहती उसे सुख ही क्या है। त्याग बिना शांति आ नहीं सकती है। किसी भी प्रकार त्याग हो वह निष्फल नहीं जाता। इस त्यागसे वैरीजन भी चरणोंमें सिर नवाते हैं। एक राजा दूसरे राजा पर चढ़ाई करने जा रहा था। दूसरा शत्रु भी चढ़ आया। रास्तेमें उस राजाको एक साधुके दर्शन हुये। राजा साधुके पास बैठ गया, कुछ उपदेश सुना। इतनेमें कुछ शत्रुसेनाकी आवाज कानोंमें आने लगी तो राजा जरा सावधानीसे तनकर बैठ गया। साधु कहता है राजन्! यह क्या करते हो ? राजा बोला—ज्यों-ज्यों शत्रु मेरे निकट आता जा रहा है त्यों त्यों मुझे क्रोध बढ़ रहा है। उस शत्रुको भस्म करनेके लिये भीतरसे प्रेरणा जग रही है। साधु बोला राजन्!

तुम अच्छा कर रहे हो। यही करना चाहिए। [illegible] कर देनेका, उखाड़ देनेका यत्न करना चाहिये, पर जो शत्रु तुम्हारे [illegible] बैठा है, तुममें ही आ गया है उस शत्रुका नाश तो पहिले कर देना चाहिये। राजा बोला—वह कौनसा शत्रु है जो मेरे बिल्कुल ही निकट आ गया है? मुनि बोले—दूसरेको शत्रु माननेकी जो कल्पना है वह कल्पना तुम्हारेमें छुपी हुई है। यह तेरी कल्पना शत्रु है। उस वैरीको दूर करो। कुछ ध्यान राजाने लगाया, समझमें आया। अरे जगतमें मेरा वैरी कौन है? कोई इस जगतमें मेरा शत्रु नहीं। मैं ही कल्पना कर लेता हूं, चेष्टाएं कर डालता हूं। शत्रुका भान छोड़ा, वैराग्य जाग और वहीं साधु दीक्षा ले ली। शत्रु आता है, सेना आती है, राजाको शांत और वैराग्य मुद्रामें देखकर सब शत्रु चरणोंमें गिर जाते हैं और वापिस चले जाते हैं। राजा अपने आत्म-ध्यानमें लग गया। उत्तम त्याग होनेसे वैरी जन भी चरणोंमें प्रणाम करते हैं। उत्तम त्याग के कारण भोगभूमिके सुख उत्पन्न होते हैं।

ज्ञानविकासकी सदाचारसे सफलता—भैया! बाहर छाता है क्या? यह आत्मा कर क्या पाता है सिवाय भाव बनानेके? यह आत्मा आकाशवत् अमूर्त है, ज्ञानानन्दभाव मात्र है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपको ही कर पाते हैं चाहे जिस रूप परिणमे। किसी पदार्थक कर्तृत्व किसी अन्य पदार्थमें नहीं हो सकता। यदि हो जाता तो कभीका यह संसार मिट जाता सो बाहरी कोई चीज मेरेमें है ही नहीं। अब तुम सत्य ज्ञान करके उन विकल्पोंको त्यागं और दुर्लभ मनुष्यजीवनको न्यायसे बिताकर सदाचारसे रहकर इसे सफल करो। एक लकड़ हारा ऐसी ही शास्त्रसभामें कहीं पहुंच गया। वहाँ व्याख्यानमें ५ पापोंका वर्णन चल रह था। इनसे बड़ा अहित होता है। इनका त्याग करना चाहिये। उसकी समझमें आया त सोचा कि मैं हिंसा और कुछ तो नहीं करता, गीली हरी लकड़ी काट डालता हूं, सो अब नह काटूंगा, और झूठ तो मैं और कुछ बोलता नहीं था कभी-कभी लकड़ीका गट्ठा ठहरानेमें द चार आनेका हेर फेर कर डालता था सो अब यह भी हेर-फेर नहीं बोलूंगा। बिल्कुल सत बात कहूंगा। चुंगीकी कभी-कभी चोरी करता हूं सो वह भी नहीं करूंगा। ब्रह्मचर्यमें परस को तो स्वप्नमें भी मैं कुदृष्टिसे नहीं देखता, पर आजसे अपनी स्त्रीसे भी ब्रह्मचर्यघातका त्य है। मैं पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करूंगा। परिग्रहमें मैं ८ आने रोज कमाता हूं, सो २ आने ध में खर्च करूंगा, चार आनेसे गुजारा करेंगे और २ आने जोड़ता रहूंगा, सो अवसर पड़ने काम आयेंगे। एक दिन वह लकड़हारा सेठकी हवेलीके पाससे होकर गुजरा तो एक सेठ रसोइयाके लकड़ी न थी, सो लकड़ी लेनेके लिये उस लकड़हारेको बुलाया। कहा भाई लक हारे! लकड़ी बेचोगे। हाँ हाँ लकड़ी बेचनेको तो आए ही हैं। कितनेमें बेचोगे? ८ आनेमें ५ आने लोगे? नहीं। ६ आने लोगे? नहीं। ७ आने लोगे? नहीं। अब चल दिया।

थोड़ी दूर चला गया। इतनेमें खरीदैया कहता है अच्छा लौट आवो, लौट आवो। वह लौट आया तो कहता है कि ७॥ आने लोगे? तो वह लकड़हारा कहता है अबे, तू किस बेईमान का नौकर है? अब यह बात सेठने सुन ली। बात तो यह कहा है नौकरको और बेईमान हमें बनाता है। लकड़हारेको बुलाया सेठने और पूछा कि हमें बेईमान क्यों बनाता है? तू किस बेईमानका नौकर है ऐसा क्यों कहता है? अब लकड़हारेने कहा सेठ जी! सुनो, तुम जाते हो रोज शास्त्रसभामें। हम तो एक दिन शास्त्रसभामें पहुंचे। वहांपर ५ पापोंके त्यागका व्याख्यान सुनकर यों त्याग कर बैठा। सब सुना दिया। हमने बेईमान इसलिये कहा कि हम जानते हैं कि जैसा मालिक होगा, जैसा बर्ताव करता होगा वैसा ही बर्ताव नौकर भी करेगा। तो जब इसने बुलाया अच्छा लौट आवो उसका अर्थ यह है कि हम जितनेमें बेचना चाहते हैं उतनेमें ही लेगा। फिर यह क्यों अन्य बात कहता है? हमने तो सत्यव्रतका नियम लिया है। आठ आनेकी ही लकड़ी हम तो बेचेंगे। फिर शुरुसे अन्त तक बोल दिया कि हमने ऐसा नियम लिया है। सेठने उसका खूब सत्कार किया और उसे कुछ दूर तक पहुंचाने गया। उसका जीवन धन्य है जो इस तरह पापोंसे विरक्त रहता है। जीवनमें सार क्या है सो बतलावो? गप्पें करनेसे क्या लाभ मिलेगा? यहाँ वहाँका आरंभ बढ़ानेमें कौनसा तत्त्व मिलेगा? अथवा मन संयत न कर लेनेसे इस आत्माको क्या फायदा होगा? यह तो अब भी अकेला है, आगे भी अकेला रहेगा। इसके पास तो जैसा ज्ञान होगा उसके अनुकूल ही सुख और दुःख चलेंगे।

चारों दानोंकी उपयोगिता—शास्त्रदान भी ज्ञानदान है। शास्त्र प्रदान करना, उनमें वृद्धि बढ़ाना, उनकी वृद्धि करना, उनको पढ़ाना, पढ़नेको साहित्य देना, उनको प्रकाशित करना, सब शास्त्रदानमें शामिल हैं। आजका युग यह कहता है कि धार्मिक विषयोंकी पाठशालायें बढ़ाई जायें और साहित्यका प्रचार खूब किया जाये। ज्ञानदान देनेसे आगे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। तीसरा दान औषधदान है। यह दान रोगका विनाश करने वाला है। चौथा दान आहारदान है। इस दानके देनेसे चारों दानोंका फल प्राप्त हो जाता है। आहारदान तो दिया ही जाता है। इस दानके देनेसे जिसको भूखका जो रोग लगा हुआ था, जिससे कि उसके उदरमें पीड़ा हो रही थी, वह शान्त हो जाती है इस प्रकार यह औषधदान भी हो गया। आहार लेनेसे उनका शरीर स्वस्थ हो गया, और चित्त पढ़नेमें लग गया, इसलिये ज्ञानदान भी हो गया। आहार देनेसे प्राणीको भूखसे मुक्ति मिलनेके कारण प्राणोंको सुदृढ़ता मिली, इसलिये यह अभयदान हो गया। इस प्रकार एक आहारदान देनेसे सब दान एक साथ प्रगट हो गए।

चाउवि किज्जउ रिगच्चजि विरगये सुहवयरगे भासेप्पिरगु पराये ।
अभयदारगु दिज्जइ पहिलारउ जिमि रगासइ परभवदुहयारउ ॥

विनयवचनमें भी त्यागरूपता—कहते हैं विनयपूर्वक, प्रेम सहित वचन बोलकर सदा नियमपूर्वक त्याग करना चाहिये । अभी खर्च तो कर दें कितना ही दूसरोंकी सेवामें और वचन बोल दें अहंकारके तो वह सब किया कराया बेकार हो गया । दान दो, त्याग करो, पर विनयसहित वचन बोलकर त्याग करो । विनय और प्रेमके वचनोंका बड़ा महत्त्व है । ऐसे वचन बोलनेवाला स्वयं सुखी रहेगा और जिसके लिये बोलेंगे वह भी सुखी रहेगा तथा जो सुविधायें प्रेमपूर्वक वचन बोलनेसे दूसरोंके द्वारा प्राप्त हो सकती हैं, सो खोटे वचन बोलनेसे प्राप्त नहीं हो सकती हैं । एक मनुष्य हरिद्वार गया, वहाँ बीमार पड़ गया । दस्त लगने लगे । एक बुढ़िया थी झोंपड़ीमें, उसने दया करके कहा कि आरामसे कहीं भी ठहरो तुम्हारे भोजनके लिये हम खिचड़ी रोज बना दिया करेंगी, सो खा जाया करो और यात्राका काम किया करो । खिचड़ी बन रही और वे देहाती महाराज पास बैठे । सो अकेले बैठे हुयेमें मन नहीं लगता, दूसरा कोई गप्पें करने वाला तो चाहिये । वह पूछता है बुढ़िया माँ तुम अकेली हो ?....हाँ बेटा !....तो तुम्हारा ब्याह करा दें क्या ? इतनी बात सुनते ही वह बोली कि मैं तो तेरी सेवा करती हूं और तू अंटसंट बकता है ।.... तो बुढ़िया माँ तुम्हें खर्च कौन देता ?....भैया हमारा बेटा परदेशमें रहता है सो वह जो कुछ भेजता है उससे गुजारा होता है । अरे माँ अगर वह बेटा मर गया तो । अरे वह तो सेवा कर रही है और यह खोटे वचन बोलता जा रहा है । उसने कहा हट जावो हमारी देहरी परसे । यहाँ पैर नहीं रखना । किसीसे खोटे वचन बोलकर सुख पाया जा सकता है क्या ? जीवनमें यही तो सब गुण हैं वचन प्रेमपूर्वक बोलना और जहां तक आपसे हो सके तनसे, मनसे, धनसे जितनी आप दूसरोंकी भलाई कर सकते हैं करना । उसमें मत चूकें । ये सब चीजें विनाशीक हैं । इनका मोह रखना ठीक नहीं है ।

वैभवकी पुण्यानुसारिता—भैया ! आप धन कमाने वाले नहीं हैं । धन तो जब तक आपके पुण्यका उदय है तब तक आता है और जब पापका उदय आता है तब समाप्त हो जाता है । नारियलके पेड़में फल लगते हैं । बतावो उस नारियलके अंदर पानी कहांसे आ जाता है ? कहीं बाहरसे आता है क्या ? नहीं । आ जाता है । इसी तरह पुण्योदयसे धन आ जाता है, पर कहांसे धन आ जाता है ? यह स्पष्ट नहीं बता सकते । जैसे कैथ होता है, हाथी उसे खा जाता है पर वैसे वैसाका वैसा ही निकल आता है । उसके अन्दरका जो रस होता है वह निकल जाता है । कैथ पोकला हो जाता है । वह जरा भी फूटता नहीं । अरे रस कहांसे खतम हो जाता है ? इसी तरह जब पापका उदय आता है तो धन अपने आप नष्ट हो जाता है । पता नहीं पड़ता

कि कैसे चला गया ? तो इस मायाचारमें मोह करके यहाँ ही आकर्षित रहना यह तो अपने दुर्लभ मनुष्यजीवनको पाकर गंवा देनेकी बात है। चार प्रकारके दान कहे गये हैं—आहार-दान, अभयदान, शास्त्रदान और औषधिदान, इनमें प्रेम रखो।

अभयदानकी महिमा—अभयदानका ही प्रताप देखिये—पूर्वभवमें विशल्या चक्रवर्तीकी पुत्री थी। वह इतनी सुन्दर थी कि कहीं कोई लेकर भग जाय, कहींसे कोई भगा ले जाय। एक राजा उसे लिये जा रहा था। उसका रक्षकों ने पीछा किया। भयभीत होकर उसने पुत्रीको जंगलमें छोड़ दिया। पुत्रीने वहीं व्रत किया, तप किया, उपवास किया। कुछ हजार वर्षों पुरानी कथा है। उस जंगलमें एक अजगरने उस पुत्रीको अपने मुखमें रख लिया। उसका पिता जंगलमें ढूंढ़ते ढूंढ़ते पहुंचा, देखा कि आधा अंग अजगरने अपने मुखमें रख लिया है। उसने सोचा तलवारसे आधा अंग काटकर उसे निकाल लें। चक्रीकी पुत्री संकेत करती है कि इसे मारो मत। वह समता परिणामसे मरी, देवगतिमें गई, फिर अभय दानके भावके प्रतापसे वह एक राजाके विशल्या नामकी पुत्री हुई। तपस्याके प्रतापसे विशल्याके भवमें इतना अतिशय था कि उसके नहानेके छींट कोई प्राप्त करले तो उसके रोग दूर हो जाते थे। अभयदानका भी बड़ा महत्त्व है। जैसे धर्मशाला बनवाना, ठहरनेकी व्यवस्था करना, कोई संकट आ जाय तो साहस देने वाले बचनोंसे उसके संकट दूर करना, आदिक यही अभयदान कहलाता है, अभयदानसे परभव संबन्धी समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। विशल्याने अभयदान पूर्वभवमें अजगरको दिया था, जिसके फलसे उसके शरीरके जलसे छूते ही किसी रोगीका भयंकर रोग भी दूर हो जाता था और सारा दुःख मिट जाता था। जो अभयदान देता है उसको ऐसा ही फल मिलता है। चारों प्रकारके दान देना उपचारसे उत्तम त्याग धर्म कहलाता है। जिसके मोह रहता है उसके उत्तम त्याग नहीं होता है। वह निरन्तर भयभीत रहता है। वह अपने खुदके ही प्राण नहीं बचा सकता। जब मोही अपने प्राणोंके बचानेका उपाय ही नहीं जानता तो अपने ज्ञानधनको बचानेका उपाय कैसे जान सकता है ? मोही प्राणी मोह करते जाते हैं, दुःखी होते जाते हैं और दुःखसे मुक्त होनेकी चिन्ता भी करते जाते हैं, परन्तु मुक्तिका उपाय नहीं करते।

मोहके त्यागसे संकटका विनाश—एक बादशाह पशुओंकी बोली जानता था। एक दिन वह छतपर खड़ा हुआ था। जहाँ घोड़े और बैल बँधा करते थे उधर देख रहा था। घोड़े बैलोंसे कह रहे थे—क्यों रे भोले मूर्खों, तुम्हें जरा भी अक्ल नहीं। तुम्हारे ऊपर राजा इतना सारा बोझ लदवाता है और तुम ले आते हो। बैल बोले कि लाना ही पड़ता है। आप उपाय बताओ जिससे न लाना पड़े। घोड़ेने बताया कि जब तुम्हें जोतनेके वास्ते राजाके

नौकर आयें तो तुम मरेके समान पड़ जाना। राजा जानवरोंकी बोली जानता ही था, उसने यह बात सुन ली। जब नौकर बैलोंको जोतनेके वास्ते गये तो वे घोड़ोंकी सलाहके अनुसार पड़ गये। नौकरोंने राजासे यह बात कही। राजाने आज्ञा दी कि घोड़ोंको जोत ले जाओ। घोड़े जोते गये, परन्तु घोड़े तो रईस पशु हैं, वे बैलोंके समान इतना बोझा लादकर नहीं ला सकते। बड़ी मुश्किलसे किसी तरह लाये। फिर राजा छतपर आया तो घोड़ोंको बैलोंसे कहते सुना कि भाई बैलों, तुम आज मरेसे पड़े रहे सो ठीक है, परन्तु राजाकी आज्ञा हुई है कि अब यदि बैल बीमार पड़ें तो उनकी इतनी पिटाई कीजिये कि वे याद रखें, इनकी मृत्यु ही हो जाये। राजाने सोचा कि ये घोड़े तो बड़े बदमाश हैं। जब राजा रानीके महलोंमें गये तो उन्हें हंसी आ गई। रानीने पूछा कि आप हंसे क्यों? राजाने बहुत मना किया कि देखो, मत पूछो, परन्तु रानी न मानी। तब राजा बोलने लगे कि मुझे पशुओंकी बोली समझमें आती है, मैंने घोड़ोंकी बात सुनी, वे बड़े ही बदमाश हैं। राजाने घोड़ों और बैलोंकी बात रानीको बता दी। तब रानी जिद करने लगी कि मुझे यह पशुओंकी बोली सिखाओ। तब राजाने मना किया कि जिन्होंने मुझे यह बोली सिखाई है उन्होंने यह कहा है कि यदि यह बोली तुम किसी अन्य व्यक्तिको सिखाओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। अतः यदि मैं तुम्हें यह सिखाऊंगा तो मैं मर जाऊंगा। रानी फिर भी नहीं मानी और बहुत जिद की। तब राजाको वायदा कर लेना पड़ा। अब राजा बहुत दुःखी थे। जब सब जानवरोंको यह बात मालूम हुई तो सबको शोक पैदा हो गया। वे कहने लगे कि आज राजा रानीको जानवरोंकी बोली सिखायेंगे और उनकी मृत्यु हो जायेगी। सारेके सारे जानवर इससे दुःखी थे। राजा एक स्थानपर जाकर चिन्ताग्रस्त हो गया। वह क्या देखता है कि सारे जानवर तो दुःखी थे, परन्तु एक स्थानपर एक मुर्गा और मुर्गी खेल रहे थे और बड़े हंस रहे थे। दूसरे जानवरोंने उनसे कहा कि अरे कृतघ्नी तुम बड़े दुष्ट हो। राजा मर जायेगा, सब पशु तो दुःखी हैं और तुम सुख मना रहे हो। तब उन्होंने उत्तर दिया कि हम राजाकी मृत्युपर नहीं हंस रहे, जो मूर्खता वह अपने आप करने जा रहा है उसपर हँस रहे हैं। रानी हठ करती है तो उसके एक तमाचा इधर लगावे और एक तमाचा उधर लगावे, फिर कोई कैसे हठ करता है? राजा अपने आप प्राण दे रहा है और दुःखी हो रहा है। राजाकी यह बात समझमें आ गई और उसने सोचा कि क्यों अपने प्राणोंका घात करूं? उसने कह दिया कि मैं तुम्हें बोली नहीं सिखाता, जो कुछ तुम्हें करना हो, कर लो। क्योंकि वह राजा स्वयं ही अपने प्राण नष्ट करने वाला था।

ज्ञानीके बाह्यसंबन्धके त्यागमें शंकाका अभाव—भैया! कहा जाता है कि प्राणोंकी ही रक्षा नहीं कर पाता, तो फिर वह अपने अन्तरङ्गमें रहने वाले ज्ञा

रक्षा करे ? आत्माके जो शत्रु हैं, वे हैं मोह, राग, द्वेष आदि भाव। बाहरमें कहीं कोई उसका शत्रु नहीं। ज्ञाता द्रष्टाकी अपनी दृष्टि बनाये तो यह शान्तिका मार्ग है और यही उत्तम त्याग है। ऐसे ज्ञानी जीवोंके बाह्य परिग्रहसे कोई सम्बन्ध भी हो तो भी अन्तरङ्गमें उनके प्रति मूर्छा न होनेके कारण उनका त्याग ही होता है। इसलिये वह भी उत्तम त्याग है। एक माँने अपने लड़केसे पूछा कि बता तुझे धनका एक बड़ा पहाड़ मिल जाये तो तू उसे कितने दिनोंमें दान कर देगा ? उसने उत्तर दिया कि मैं तो उसे एक क्षणमें ही दान कर दूंगा, पर उठाने वालोंकी गारंटी मैं नहीं करता कि वे कितने दिनोंमें उसे उठायें, उठाने वालों का ठेका मैं नहीं लेता। यह है उत्तम त्यागकी बात। सारे बाह्य पदार्थोंको छोड़कर आत्माके स्वरूपपर दृष्टि करो। जहाँ परका प्रवेश नहीं, एकाकी ज्ञानमय चैतन्य मूर्तिपर दृष्टि हो तो सब चीजोंका त्याग हो गया। श्रद्धा ही से तो त्याग होगा। बाह्यमें भी इनके आगे पड़े रहने से इनका त्याग ही तो रहता है, क्योंकि ये कुछ हमारी आत्मामें चिपक थोड़े ही रहे हैं। सब पापोंसे रहित रागद्वेषरहित अपने ज्ञानस्वभावको पहिचानो, उसमें स्थिर रहो, जगत्का बाह्य पदार्थ कोई भी साथ नहीं देगा।

उत्तम त्यागमें दुर्विकल्पोंका परिहार—आहारदान देनेसे धन, ऋद्धि आदिकी वृद्धि होती है। उत्तम त्याग दुष्ट विकल्पोंका त्याग कहलाता है। एक आदमी श्मशान भूमिमें बैठा अपनी आत्मबुद्धिमें लगा हुआ था। एक राजा वहां गया और कहा कि तुम इतना कष्ट क्यों पाते हो ? बताओ तुम्हें क्या चाहिये, मैं तुम्हें दूंगा। उसने कहा कि मुझे तीन चीज चाहियें। ऐसा तो मुझे जीना दो जिसके बाद मरना नहीं हो। ऐसी मुझे खुशी दो जिसके बाद रञ्ज नहीं हो। ऐसी मुझे जवानी दो जिसके बाद बुढ़ापा न आये। इस पर राजा लज्जित होकर चला गया। इन बाह्य पदार्थोंमें क्या-क्या विकल्प फंसा रखे हैं ? इनका समागम सदा नहीं रहता। हमें बाह्य वस्तुओंमें बखेड़ा करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। अपने ज्ञानस्वभावको देखो। इन दुष्ट विकल्पोंका त्याग करनेसे ही उत्तम त्याग प्रगट होता है।

समाजके अग्रगण्योंका उत्तरदायित्व—आज धर्मकी इतनी अवनति क्यों है ? इस लिये कि बड़े-बड़े भाई त्यागधर्ममें, भक्तिधर्ममें आगे नहीं आते। उनकी देखादेखी छोटे-छोटे भी यही सोचकर कि यहाँ सुख नहीं होगा, आगे नहीं आते। बड़े-बड़े जो करते हैं उन्हींका तो अनुसरण प्रायः लोग करते हैं। लोगोंका यह सोचना प्राकृतिक है कि जो बड़े करते हैं उन ही बातोंमें ही लगे रहो, वहीं सुख होगा, वे केवल यही समझते हैं। इसलिये बड़े-बड़े लोगों, पहले स्वयंको आगे आना चाहिये। यदि बड़े लोग आगे नहीं आते हैं तो उनकी देखा-देखी बच्चे भी उसी मार्गपर जाते हैं, जिस मार्गपर बड़े जाते हैं। इस प्रकार उनको कितना पाप लग रहा है ? धर्मके मार्गपर उनके आगे न आनेके कारण ही धर्म आज अवनतिकी ओर

ग्रग्रसर हो रहा है। धर्मके मार्गपर लगनेपर ही शान्ति मिलेगी। सम्पदामें रहनेसे शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति मिलेगी तो सम्यग्ज्ञानमें मिलेगी। ज्ञानस्वभावकी वृद्धिमें ही लग जाना यही उत्तम त्यागका मार्ग है।

उत्तमत्याग व दानके फलमें शान्ति सुख लाभ—भैया! हमें इससे यह शिक्षा लेनी है कि संसारमें जो दुःखी जीव हैं उनको दान दें, जो ज्ञानी पुरुष हैं उनका विशेष सत्कार करें, सर्व जीवोंपर आदर और श्रद्धाका भाव हो और चारों प्रकारके दान दें। इन बाह्य क्रियाओंके अतिरिक्त सबसे प्रधान बात तो यह ही है कि निज आत्माका निःसङ्गस्वरूप पहिचानकर शाश्वत अहेतुक असाधारण ज्ञानस्वभावमय निजका लक्ष्य रखें, इस लक्ष्यसे उत्तम त्याग सिद्ध हो जाता है। पुराणोंमें और इतिहासोंमें देखा होगा कि कैसे-कैसे उदार और त्यागशील पुरु होते हैं? उदार रहें तो, अनुदार रहें तो, जिन्दगी तो सबकी व्यतीत होती है, किन्तु उदा पुरुष इस भवमें शांत रहते हैं परभवमें भी जो पुण्यबन्ध होता है उससे सुख होता है।

सत्थदाणु बीजो पुण किज्जइ णिम्मलणाण जेण पाविज्जइ।
ओसह दिज्जइ रोयविणासणु कहविण पिल्थइ वाहिपयासणु॥

दानसे पापप्रक्षय—दूसरा दान शास्त्रदान है, उस शास्त्रदानसे निर्मल ज्ञानकी प्रा होती है और एक औषधिदान है। इस औषधिदानसे रोगोंका विनाश होता है। इस प्रक अभयदान, शास्त्रदान और औषधिदानका यहाँ तक वर्णन हुआ इस गाथामें। आगे अब आह दानके सम्बन्धमें कहते हैं। श्रावकोंके सब कर्तव्योंमें दो कर्तव्य प्रधान बताये हैं—(१) द और (२) पूजा। आरंभसे और अन्य उपायोसे जो धन कमाया जाता है तो उस धनकी का में जो पाप होते हैं उन पापोंको धोनेका, निर्मल बन सकनेका उपाय है तो वह त्याग है, द है, सेवा है, परोपकार है। धन तो रहेगा नहीं, यह तो जायगा, चाहे हम उसका वर्ताव ही कर लें।

विनाशीक धनका दान करके अतुल आत्मवैभवका लाभ लेनेमें विवेक—एक र दरबारमें सब लोग बैठे थे। राजा मंत्रीसे पूछता है मंत्री जी! क्या बात है कि मेरे हा हथेलीमें रोम नहीं है? तो मंत्रीने कहा—महाराज आपके हाथोंसे इतना दान हुआ कि देते-देते रोम घिस गये, इसी कारण रोम नहीं। वैसे तो हथेलीमें रोम होते ही नहीं हैं। [illegible] मंत्रीकी चतुराईकी बात है। राजा बोला—मंत्री जी तुम्हारे हाथमें भी रोम क्यों नहीं [illegible] महाराज तुम्हारी हथेलीके रोम दान देते-देते घिस गये और हमारी हथेलीके रोम [illegible] लेते-लेते घिस गए। राजाने पूछा दरबारमें और जितने लोग हैं उन सबके भी हथेलीमें [illegible] मंत्री बोला, हाँ महाराज! आपने दिया, हमने लिया और ये सब हाथ [illegible] रहे, [illegible] मलते-मलते रोम घिस गये उन सबके। तो अपने पास धन नहीं [illegible]

है चाहे दान करते जायें, दान करते जायें और चाहे यों ही हाथ मलते रहें । सो भैया ! जो कुछ भी है वह सब बिछुड़ जायगा । पर विवेकी पुरुष वह है जो प्राप्त हुई सम्पदाका विवेक पूर्वक उपयोग करे । सो यदि अपने त्यागके बाद आकिञ्चन्य लिया तो आकिञ्चन्य जो आत्मतत्त्व है उसकी दृष्टि बनाई । आकिञ्चन्य भावना अपूर्व है, जीवको पार कर देने वाली भावना है । सो जगतमें मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसा निर्णय करके अपने ज्ञानानन्दस्वरूपकी उपासना करो और पदार्थ जो मिले हैं उनमें मुग्ध न होओ ।

आहारे धणरिद्धि पवित्तइ, चउविह चाउजि एहु पवित्तइ ।
अहवा दुक्खियपहि न्हाए चाउजि गहु मुणहु समवाये ॥

आहारदानके लाभ—आहारदानसे धन और ऋद्धिकी प्राप्ति होती है । साधुजनोंको भक्तिपूर्वक आहार दें, उनके ज्ञानकी साधनामें सहयोग दें, उनके धर्मकी सिद्धिमें सहयोग दें और उनके गुणोंमें अनुराग करें । इससे जो पुण्यबंध होता है उसकी तो कोई तुलना ही नहीं है । आहारदान धन और ऋद्धियोंकी वृद्धिका कारण है । ये चार प्रकारके दान हैं जो अनादि संतानसे चले आ रहे हैं । भावपूर्वक उदारताके साथ दिया गया थोड़ा भी दान अगणित फल को देता है । और जो झूठमूठकी गप्पोंका दान है उसका तो कोई महत्त्व ही नहीं है ।

दानमें छल करनेका फल—एक बड़ा शहर था वहांके मंदिरमें आरती बोली जा रही थी, एक देहाती भी पहुंचा, सब सुन रहा था, देख रहा था । पहिली आरती बोली गई तो कोई लगाये १ मन घी और कोई लगाये २ मन । दो मन घीके मायने २ छटांक घी याने १ रुपया । कोई ४ मन घी बोले तो उसके मायने दो रुपया दे दो । तो जो अधिक बोले उसको ही मिले । बोलीमें कोई ४ मन बोले, कोई ५ मन । वह देहाती सोचता है अरे ये कितने दानी हैं ? बड़ा दान करते हैं । वह तिलकी गाड़ी ले गया था । उसने भी लगाया, हमारी १ गाड़ी तिली । अब जब समाप्त हो गया, लोग जाने लगे तो उसने मन्दिरके आगे गाड़ी खड़ी कर दी । कहा हमारी गाड़ीके तिल ले लो । लोगोंने कहा अरे तू बड़ा बेवकूफ है । जो घी बोला जाता है वह दिया नहीं जाता है । जितने मन घी बोला जाता है उसके आधे रुपये दिये जाते हैं । उस देहातीने कहा यह तो नहीं होगा । हमने एक गाड़ी तिल बोल दिया तो ये तुम्हें लेने ही पड़ेंगे । ले लिया और पंचोंने बाजारमें बेचकर रुपया कर लिया । अब उस देहातीने सोचा कि मंदिरमें ये लोग रोज झूठ बोलते हैं । इनकी अक्ल ठिकाने करना चाहिए । सबसे कह दिया कि भाइयो कल १२ बजे दिनका हमारे यहां सबका निमंत्रण है । चूल्हेका निमंत्रण है । अगर कोई अतिथि आ जाय तो उसका भी निमंत्रण है । सो अब उसने एक मैदानमें चारों तरफ कनात लगा दिया और यहां वहांसे बहुतसी गीली लकड़ियाँ जला दीं । खूब धुवां हो रहा है । सब गांव वाले यह सोचते कि खूब पूड़ियां बन रही हैं । उनको

तो ठीक ११॥ बजे ही सब पहुंच गए। सब चौकामें बैठ गये। पानी भी परोस दी। पानी परोसनेके बादमें और कुछ तो परोसा नहीं और कहा सब लोग करिये भोजन। किसीने कहा अरे क्या भोजन करें? अभी तो आपने कुछ परोसा ही नहीं। उसने कहा कि जैसी आपकी आरती है वैसा ही यह निमंत्रण समझ लो। सोना यह ढंग होता है। झूठ बोलनेसे क्या प्रयोजन? अगर १ रुपया देना है तो बोल दिया दो मन घी और अगर २ रु० देना है तो बोल दिया चार मन घी। यह क्या है?

दानयोग्य वर्तमान जीवनको पाकर दानमें प्रमादी न होनेका अनुरोध—भैया! इस जीवनको बहुत सम्हालकर रखना है। सत्य बोलना चाहिए। जो प्रामाणिक बात हो उसे ही बोलना चाहिए। इस व्रतको अपनी शक्तिभर निभानेका यत्न किया जाय। सबसे मूल बात तो यह है कि जब तक स्वपरविषयक भ्रमविष जगता है तब तक धर्ममें कोई अक्ल नहीं आ पाती है। चार प्रकारके ये दान अनादि परम्परासे चले आ रहे हैं। अमेरिकामें क्या औषधिदान, आहारदान, शास्त्रदान आदि नहीं दिये जाते? वहाँ भी ये दान दिये जाते हैं। पशुवोंमें दान नहीं चलता। कोई गाय भूखी हो तो उसे दूसरा पशु अपने मुखसे क्या भोजन दे सकता है? नहीं। मनुष्यभव ही ऐसा है कि जिसमें दान किया जा सकता है, त्याग किया जा सकता है। यदि इस भवमें भी कुछ न कर सके अपने कल्याणके लिये तो जैसे और भव बिताये वैसे ही यह भी एक भव बीत जायगा। गुप्त विकल्पोंका त्याग करना त्यागधर्म कहलाता है। रागद्वेष अनुराग ये विकल्प ही तो हैं। रागोंका विकट बन्धन होता है। जिसके प्रति राग हो वही चित्तमें हो और उसकी ही सुविधा, प्रसन्नताके लिये नाना यत्न किए जाना हो, इनसे मिलता क्या है? कुछ भी तो नहीं मिलता। उल्टे प्राणोंका बंध ही होता है। यों ही भैया! हम आप तो अपने आपपर स्वयं ही संकट बना लेते हैं। कहीं भाईसे राग किया, कहीं स्त्री पुत्रोंसे राग किया, इस प्रकारसे उनसे स्नेह करके हम और आप जाल बढ़ा लेते हैं और अपने मन माफिक कार्य नहीं होता है सो दुःखी रहते हैं। अपने प्रयोजनसे प्रयोजन रहे क्योंकि गृहस्थीमें थोड़ी आजीविका चाहिये, एक तो यह काम है। ज्यादा धनसे कोई मतलब नहीं। गुजारेके लिये केवल थोड़ीसी आजीविका चाहिये। बतावो संकट हम आपपर क्या है? संकट तो बनावटी रहते हैं। पहिले तो संकट बनावटी रहते हैं, फिर वे बादमें मिटाये नहीं मिटते हैं। दूसरा काम आत्मोद्धारका है जो कि सर्वप्रमुख है।

दुवियहि दिज्जइ दाण, किज्जइ माणु जि गुणियणहिं।
दयभावी य जभंग, दंसण चिंतिज्जइ मणहि ॥

त्याग एवं दानकी भावना व आज्ञाका उपसंहार—इसमें दो बातें खास कही जा रही हैं। दान देनेकी दो पद्धतियां हैं—(१) दुःखी जनोंपर दया करके दान देना और (२) दुःखी

जनोंको मानकर दान देना। बड़े पुरुषोंका मान करना भी दान है, त्याग है, और देखो यह धनका त्याग करना दान है, अपनी प्रवृत्ति विनयपूर्वक परिणामोंसे जितना अपनेसे बन सके दूसरोंका उपकार करनेकी हो तथा आत्मदृष्टि करके अन्तःप्रसन्नता रहे, विकारोंका परिहार हो। ऐसा व्यतीत हो यही गृहस्थोंका उत्तम त्याग है। उत्तम त्यागका उत्कृष्ट पालन सकल संन्यासस्वरूप निज चित्प्रकाशकी अभीक्ष्ण उपासना करने वाले साधु संतोंके होता है। हम सबका कर्तव्य है कि अन्तरसे विकारका परिहार करनेका ज्ञानयोग बनाकर शान्तिके पात्र बनें।

त्यागका प्रयोजन स्वपरोपकार—आज उत्तम त्यागके सम्बंधमें कुछ अपने-अपने विचार बनाने हैं। त्याग क्या है ? अपने और दूसरोंके उपकारके लिए अपने धन आदिका उत्सर्ग करना, परिहार करना उसको कहते हैं उत्तम त्याग। जैसे दान किया जाता है तो उसमें प्रयोजन है अपना उपकार और दूसरोंका उपकार। जो यह समझते हैं कि हम दूसरोंके उपकारके लिए धन दे रहे हैं, त्याग कर रहे हैं तो उन्हें यह समझना चाहिए कि इसमें तो हम अपना भी उपकार कर रहे हैं। जैसे कोई पुरुष मान लो, अकेला हो, बड़ा धनिक हो, जिन्दगीमें कभी त्याग भी न किया हो, मरते समय वह क्या सोचता है कि आखिर यह सब धन तो मेरेसे छूट ही जायगा, चलो इसे किसी अच्छे काममें (धर्मके काममें) लगा दें, तो देखिये उसके इस कार्यसे दूसरोंका भी भला होगा, पर साथ ही जो उसके मनमें एक यह भाव बना कि यह ध्यान व्यर्थ न जाये तो ऐसा जो एक मनमें उद्वेग बना उसकी शान्तिके लिए वह प्रयत्न कर रहा है। प्रत्येक त्यागमें यही बात है। जो दान करता है वह अपनी शांतिके लिए करता है। यदि आप किसी भिखारीको दो रोटियाँ भी दे देते हैं तो यह नहीं है कि आपने सिर्फ उस भिखारीका ही उपकार किया। अरे आपके अन्दर उस भिखारीके प्रति जो उद्वेग जगा, उसको ही शान्त करनेका प्रयास आपने किया। तो वास्तवमें उस जगह आपने अपना ही उपकार किया। तो त्यागमें दोनों ही बातें शामिल हैं, अपना भी उपकार है और दूसरोंका भी उपकार है। जहाँ उत्तम दाता हो और उत्तम पात्र हो वहाँके दानकी महिमाको कौन कह सकता है ? उत्तम पात्र कौन ? जो निष्परिग्रही हो, संसारकी जो वाञ्छा न रखता हो और उत्तम दाता वह जो तत्त्वज्ञानी पुरुष हो, जो यह समझता हो कि मुझे जो भी समागम मिले हैं वे सब विनाशीक चीजें हैं, ये मेरी वस्तु ही नहीं हैं। जहाँ त्यागका अहंकार ही उत्पन्न न हो कि यह मेरी चीज है और इसे मैं देने वाला हूं, अरे ये तो बाह्य वस्तुवें हैं, पुण्योदयसे मुझे ये समागम प्राप्त हुए हैं, इनका सदुपयोग कर लेना चाहिए। कोई एक नवाब साहब थे, वे जब दान किया करते थे तो उनकी दृष्टि नीचेको रहा करती थी। एक बार कोई पूछ बैठा कि "सीखी कहाँ नवाब जू देनी ऐसी देन। ज्यों ज्यों कर ऊंचा करो त्यों त्यों नीचे नैन ॥" आप

जब दान करते हैं तो अपनी दृष्टि नीचेको क्यों कर लेते हैं ? तो उन्होंने कहा कि—"देने वाला और है देता रहत दिन रैन। लोगोंको भ्रम है मेरा, यातें नीचे नैन।" अरे भाई देने वाला तो और है, पर लोग समझते हैं कि ये दे रहे हैं इसलिए शर्मिन्दा होकर मैं अपनी दृष्टि नीचेकी ओर कर लेता हूं। तो भाई दान, त्याग वही श्रेष्ठ है जहां नम्रता है, निरहंकारता है।

चतुर्विध दानकी उपयोगिता—चार तरहके दान बताये गए हैं—(१) ज्ञानदान, (२) आहारदान, (३) औषधिदान और (४) अभयदान। आजकल तो लोग ज्ञानदानको सबसे हल्का मानते हैं, पर अभी उन्होंने इस ज्ञानदानकी महिमाको नहीं समझा। अरे इन चार प्रकारके दानोंमें सबसे उत्तम दान है ज्ञानदान। किसी जीवको ज्ञान दिया और उसे ऐसा आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाय कि उसके सारे दुःख समाप्त हो जायें, आत्मामें होने वाले ये राग-द्वेषादिक विकार भाव खत्म हो जायें, अनादिकालके बद्ध कर्मोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाय, अनन्त-ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दका चतुष्टय प्राप्त हो जाय तो बताइये इस ज्ञानदानकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है ? इससे बढ़कर भी कोई चीज होती है क्या ? आहारदान है पात्रको भक्तिपूर्वक आहार देना, दयासे किसी भूखेको भोजन दे देना। औषधिदान है किसी बीमार रोगीको औषधि दे देना, अभयदान है किसीको भयसे हटाकर आराममें बैठा देना। तो ये सभी दान स्वपरके उपकारके लिए हैं। मोहका विनाश हो, अच्छी जगह बुद्धि जगे तो यह उसका उपकार है। तो दानका नाम त्याग भी है। दान शब्द तो ऐसा बन गया है कि दान शब्दको सुनकर अहंकारकी गुंजाइश है, अगर दानकी जगह त्याग नाम रखा जाता तो शायद दान करने जैसा अहंकारका भाव न आता। लेकिन उसमें भी क्या पता ? त्याग शब्दका भी प्रयोग होवे तो वह भी एक रूढ़ि बन जायगी। विभावोंका, रागद्वेषादिका त्याग हो।

त्यागीकी वृत्तिमें समता देवताके दर्शन—त्यागकी वृत्ति कैसी होती है, इसका चित्रण गीताके १४वें अध्यायमें किया है। वास्तविक त्याग वह है जो दुःख सुखमें समान हो। सुख हो तो क्या है, दुःख हो तो क्या है ? ये दोनों सुख और दुःख आत्माके स्वभावसे भिन्न चीजें हैं, ये भिन्न चीजें हैं, ये विकार हैं। दुःख भी विकार, सुख भी विकार। लोग सोचते नहीं हैं, मानते हैं कि दुःखमें बिगाड़ होता और सुखमें सुधार होता, पर जरा गम्भीरतासे विचार करो तो सुखमें बिगाड़ होता, दुःखमें सुधार होता। सुखमें तो आकुलता बसी है और दुःखमें आनंद बसा है। देखो तत्त्वज्ञानसे सम्बंधित बात कह रहे हैं। जब आप भोगविषय करते हैं पञ्चेन्द्रिय का, स्वादिष्ट भोजन करना, रूप देखना आदिक तो उस प्रक्रियामें आप अन्दरमें कितना क्षुब्ध रहते हैं, आकुलित रहते हैं, और कोई दुःख आ जाता है, मान लो कोई अनिष्ट बात सामने

आ गई तो आप अपने भीतर ऐसा बल बनाते हैं कि उस समय आपके दुःख बहुत हल्के हो जाते हैं, उस समय अपने आपके ज्ञानस्वभावकी झलक भी होती है। तो सुख दुःखमें सुखको अच्छा मानना और दुःखको बुरा मानना यह अज्ञानकी बात है। तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सुख दुःखमें समानता रखते हैं। जिसको ज्ञानका प्रकाश आ जाता है और यह विदित हो जाता कि दोनोंमें सार केवल एक ब्रह्म ही है, उसे दुनियाकी कोई परवाह नहीं, वह लोककीर्तिको नहीं चाहता, उसके लिए यश अपयशमें समता बुद्धि है। वह इन बाह्य चीजोंको अत्यन्त असार समझता है। इन बाह्य चीजोंकी आकांक्षा तत्त्वज्ञानी पुरुषको नहीं रहती। तत्त्वज्ञानी पुरुषको तो ऐसा विचित्र आनन्द है अपने ज्ञानकी उपासनाका कि जिस आनन्दमें वह तृप्त रहता है। कुछ परवाह ही नहीं करता। जो धीर वीर विवेकी निन्दा और प्रशंसामें समताकी बुद्धि रखता है वह वास्तविक त्यागी पुरुष है। जो मान अभिमानमें, शत्रु मित्रमें समान बुद्धि रखता है, जो सर्व आरम्भ परिग्रहोंका त्यागी है वही वास्तविक त्यागी है। केवल त्याग ही त्याग नहीं, जिसने रागद्वेषका त्याग किया उसने शुद्ध ज्ञानका ग्रहण भी किया। तो जिसको शुद्ध ज्ञानप्रकाशका उपादान है उसका ही वास्तविक त्याग निभता है।

त्यागमें अनुपम आराम—एक शेर था, उसे एक रोटी कहींसे मिल गई, उस रोटीको लिए हुए वह जंगलमें जा रहा था, उसे देखकर उस रोटीको छीननेके लिए कई शेर उसपर टूट पड़े। वह शेर बड़ा दुःखी होने लगा। अब उसे क्या उपाय सूझा कि उस रोटीको फेंक दिया और १०-२० हाथ दूर जाकर आरामसे बैठ गया। लो उसके सारे दुःख खतम, और बाकी सभी शेर आपसमें लड़ने लगे। तो देखिये उस शेरने शान्ति पायी त्यागसे। वहाँ एक विवेकी पुरुष पहुंचा और उस शान्त बैठे हुए शेरके समक्ष बोला—ऐ वनराज! तुम मुझे बहुत बड़ी शिक्षा दे रहे हो—क्या कि बस त्यागसे ही शान्ति है। त्यागके बिना तो यहाँ भी किसीका काम ही नहीं चल सकता। अभी कोई भोजन करे, तो पेट भर जानेपर झक मारकर भोजन त्यागना पड़ता है। त्यागे बिना गुजारा नहीं। खूब रातभर बहुत बढ़िया चीज देखा, सनीमा, नाटक आदि देखा तो आखिर उसे आराम तभी मिलेगा जब उसे छोड़ेगा। आराम मिलेगा त्यागसे। खूब गाना सुनते जावो, रात्रिके १२ बज गए तो कहने लगते कि भाई बस करो। अरे त्याग किए बिना किसीका गुजारा नहीं चल सकता। झक मारकर त्याग करना पड़ेगा। चाहे स्वेच्छासे त्याग करो, चाहे विवश होकर। त्याग उत्तम फलदायक वही होता है जो विवेकपूर्वक किया जाय। सद्बुद्धि उसके ही जग सकती है जो अपना जीवन न्याय नीतिसे बिताये। अन्यायसे, पापसे कमाया हुआ धन पापमें ही जाता है। जीवनमें एक ऐसा निर्णय करें कि जब मरनेपर हम कुछ साथ नहीं ले जाते, ये परिजन, मित्रजन आदि सब अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते, तब फिर उनके पीछे अन्यायसे, पापकार्योंसे भरा हुआ जीवन बितानेसे

जब दान करते हैं तो अगली दृष्टि नीचेको क्यों कर लेते हैं ? तो उन्होंने कहा कि--"देने वाला और है देता रहत दिन रैन। लोगोंको भ्रम है मेरा, तातैं नीचे नैन।" अरे भाई देने वाला तो और है, पर लोग समझते हैं कि ये दे रहे हैं इसलिए शर्मिन्दा होकर मैं अपनी दृष्टि नीचेकी ओर कर लेता हूं। तो भाई दान, त्याग वही श्रेष्ठ है जहाँ नम्रता है, निरहंकारता है।

चतुर्विध दानकी उपयोगिता—चार तरहके दान बताये गए हैं—(१) ज्ञानदान, (२) आहारदान, (३) औषधिदान और (४) अभयदान। आजकल तो लोग ज्ञानदानको सबसे हल्का मानते हैं, पर अभी उन्होंने इस ज्ञानदानकी महिमाको नहीं समझा। अरे इन चार प्रकारके दानोंमें सबसे उत्तम दान है ज्ञानदान। किसी जीवको ज्ञान दिया और उसे ऐसा आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाय कि उसके सारे दुःख खतम हो जायें, आत्मामें होने वाले ये राग-द्वेषादिक विकार भाव खत्म हो जायें, अनादिकालके बद्ध कर्मोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाय, अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दका चतुष्टय प्राप्त हो जाय तो बताइये इस ज्ञानदानकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है ? इससे बढ़कर भी कोई चीज होती है क्या ? आहारदान है पात्रको भक्तिपूर्वक आहार देना, दयासे किसी भूखेको भोजन दे देना। औषधिदान है किसी बीमार रोगीको औषधि दे देना, अभयदान है किसीको भयसे हटाकर आरामसे बैठा देना। तो ये सभी दान स्वपरके उपकारके लिए हैं। मोहका विनाश हो, अच्छी जगह बुद्धि जगे तो यह उसका उपकार है। तो दानका नाम त्याग भी है। दान शब्द तो ऐसा बन गया है कि दान शब्दको सुनकर अहंकारको गुंजाइश है, अगर दानकी जगह त्याग नाम रखा जाता तो शायद दान करने जैसा अहंकारका भाव न आता। लेकिन उसमें भी क्या पता ? त्याग शब्दका भी प्रयोग होवे तो वह भी एक रूढ़ि बन जायगी। विभावोंका, रागद्वेषादिका त्याग हो।

त्यागीकी वृत्तिमें समता देवताके दर्शन—त्यागकी वृत्ति कैसी होती है, इसका चित्रण गीताके १४वें अध्यायमें किया है। वास्तविक त्याग वह है जो दुःख सुखमें समान हो। सुख हो तो क्या है, दुःख हो तो क्या है ? ये दोनों सुख और दुःख आत्माके स्वभावसे भिन्न चीजें हैं, ये भिन्न चीजें हैं, ये विकार हैं। दुःख भी विकार, सुख भी विकार। लोग सोचते नहीं हैं, मानते हैं कि दुःखमें बिगाड़ होता और सुखमें सुधार होता, पर जरा गम्भीरतासे विचार करो तो सुखमें बिगाड़ होता, दुःखमें सुधार होता। सुखमें तो आकुलता बसी है और दुःखमें आनंद बसा है। देखो तत्त्वज्ञानसे सम्बंधित बात कह रहे हैं। जब आप भोगविषय करते हैं पञ्चेन्द्रिय का, स्वादिष्ट भोजन करना, रूप देखना आदिक तो उस प्रक्रियामें आप अन्दरमें कितना क्षुब्ध रहते हैं, आकुलित रहते हैं, और कोई दुःख आ जाता है, मान लो कोई अनिष्ट बात सामने

ा गई तो आप अपने भीतर ऐसा बल बनाते हैं कि उस समय आपके दुःख बहुत हल्के हो जाते हैं, उस समय अपने आपके ज्ञानस्वभावकी झलक भी होती है। तो सुख दुःखमें सुखको अच्छा मानना और दुःखको बुरा मानना यह अज्ञानकी बात है। तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सुख दुःखमें समानता रखते हैं। जिसको ज्ञानका प्रकाश आ जाता है और यह विदित हो जाता कि ...नोंमें सार केवल एक ब्रह्म ही है, उसे दुनियाकी कोई परवाह नहीं, वह लोककीर्तिको नहीं चाहता, उसके लिए यश अपयशमें समता बुद्धि है। वह इन बाह्य चीजोंको अत्यन्त असार समझता है। इन बाह्य चीजोंकी आकांक्षा तत्त्वज्ञानी पुरुषको नहीं रहती। तत्त्वज्ञानी पुरुषको ...ऐसा विचित्र आनन्द है अपने ज्ञानकी उपासनाका कि जिस आनन्दमें वह तृप्त रहता है। ...छ परवाह ही नहीं करता। जो धीर वीर विवेकी निन्दा और प्रशंसामें समताकी बुद्धि रखता है वह वास्तविक त्यागी पुरुष है। जो मान अभिमानमें, शत्रु मित्रमें समान बुद्धि रखता है, जो सर्व आरम्भ परिग्रहोंका त्यागी है वही वास्तविक त्यागी है। केवल त्याग ही त्याग नहीं, जिसने रागद्वेषका त्याग किया उसने शुद्ध ज्ञानका ग्रहण भी किया। तो जिसको शुद्ध ज्ञानप्रकाशका उपादान है उसका ही वास्तविक त्याग निभता है।

त्यागमें अनुपम आराम—एक शेर था, उसे एक रोटी कहींसे मिल गई, उस रोटी को लिए हुए वह जंगलमें जा रहा था, उसे देखकर उस रोटीको छीननेके लिए कई शेर उसपर टूट पड़े। वह शेर बड़ा दुःखी होने लगा। अब उसे क्या उपाय सूझा कि उस रोटीको फेंक दिया और १०-२० हाथ दूर जाकर आरामसे बैठ गया। लो उसके सारे दुःख खतम, और बाकी सभी शेर आपसमें लड़ने लगे। तो देखिये उस शेरने शान्ति पायी त्यागसे। वहाँ एक विवेकी पुरुष पहुंचा और उस शान्त बैठे हुए शेरके समक्ष बोला—हे वनराज! तुम मुझे बहुत बड़ी शिक्षा दे रहे हो—क्या कि बस त्यागसे ही शान्ति है। त्यागके बिना तो यहाँ भी किसी का काम ही नहीं चल सकता। अभी कोई भोजन करे, तो पेट भर जानेपर झक मारकर भोजन त्यागना पड़ता है। त्यागे बिना गुजारा नहीं। खूब रातभर बहुत बढ़िया चीज देखा, सनीमा, नाटक आदि देखा तो आखिर उसे आराम तभी मिलेगा जब उसे छोड़ेगा। आराम मिलेगा त्यागसे। खूब गाना सुनते जावो, रात्रिके १२ बज गए तो कहने लगते कि भाई बस करो। अरे त्याग किए बिना किसीका गुजारा नहीं चल सकता। झक मारकर त्याग करना पड़ेगा। चाहे स्वेच्छासे त्याग करो, चाहे विवश होकर। त्याग उत्तम फलदायक वही होता है जो विवेकपूर्वक किया जाय। सद्बुद्धि उसके ही जग सकती है जो अपना जीवन न्याय नीतिसे बिताये। अन्यायसे, पापसे कमाया हुआ धन पापमें ही जाता है। जीवनमें एक ऐसा निर्णय करें कि जब मरनेपर हम कुछ साथ नहीं ले जाते, ये परिजन, मित्रजन आदि सब अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते ...

तो सभी लोग जानते हैं। तो इस परिग्रहसे विरक्त होना ही एक उत्तम त्याग है। इस परिग्रहसे ममता छूटे, शुद्ध ज्ञानसे बढ़कर और क्या हो सकता है ? सहज ज्ञान होना, मेरा मात्र मैं हूं, मेरे सिवाय मेरा कहीं कुछ नहीं, मेरा वैराग्य, मेरा ज्ञान, मेरा शुद्ध आनंद शक्ति आदिक जो मेरा गुण है, मेरी शक्ति, मेरा परिवार, मेरी रमणी सब कुछ यही मैं हूं, यह ही मैं अपना माता-पिता हूं, यही मैं अपना गुरु हूं। प्रभुकी उपासना और किसलिए है ? इसीलिए तो कि प्रभुका जैसा स्वरूप अपना समझें वैसा अपना शुद्ध ज्ञान रहे, बाह्य वस्तुओंका ममत्व न रहे। त्याग विशुद्ध ज्ञानीसे निभता है। भाई अपना कल्याण करना चाहते हो इस ममताका परिहार करना ही होगा। किसीसे कुछ प्रत्युपकारकी चाह करके दान मत करो। वह तो एक व्यापार जैसी बात हो गयी। त्यागकी बात तो यह है कि जिससे ममता हटे, परिग्रहके प्रति ममत्व भाव न रहे इसीको त्याग कहते हैं। इस त्यागकी महिमा बड़ी विचित्र है। जहाँ ज्ञान-प्रकाश हो, शुद्ध बोध हो वहाँ त्यागका माहात्म्य है। सही ज्ञानके बिना सही त्याग हो नहीं सकता।

कषायोपशममें त्यागकी पुष्टि—थोड़ी देरको एक बात कहते हैं कि कोई बड़े-बड़े त्याग न कर सके और मानो कोई कहे कि हमारे पास तो पैसा ही नहीं है तो हम क्या त्याग करें ? तो एक त्यागकी बात वह जीवनमें लावे। दूसरे लोग यदि मेरी बुराई करते हों, निन्दा करते हों, कुछ भी कहें तो भी हम उनको दुःखी न करें। उसका प्रतिकार उन्हीं जैसा बर्ताव करके न करें। यह त्याग कोई पैसा तो नहीं खर्च कराता। ज्ञानार्णवमें बताया है कि "परपरितोषनिमित्तं त्यजन्ति केचिद्धनं शरीरं वा। दुर्वचनबन्धनाद्यैर्वयं रुषन्तो न लज्जामः ॥" अरे अनेक लोग तो दूसरोंको खुश करनेके लिए, प्रसन्न करनेके लिए, सुखी करनेके लिए धन भी देते हैं और कोई दुर्वचन बोलता है, गाली देता है तो उसके प्रति हम रोष करें। उसे सुख न दे सकें, सन्तुष्ट न कर सकें तो यह हमारे लिए लज्जाकी बात है। अगर कोई गाली देकर खुश होता है तो वह अपनेको खुश रखो। यह सोच लो कि कितना अच्छा हुआ जो हम किसीको खुश होनेके काम तो आये। तो भाई त्याग तो वास्तवमें भावसे त्याग है। सबके प्रति सुखी होनेकी जिसकी भावना है, किसीको दुःखी होनेका मनमें संकल्प नहीं रखता उसके तो सदा त्यागवृत्ति चलती है। त्याग ही एक ऐसा पवित्र धर्म है कि जिसके प्रतापसे जीव संसारसे मुक्त हो जाता है। बड़े-बड़े तीर्थंकर, बड़े-बड़े महापुरुष, उन्होंने क्या किया, संन्यास किया, त्याग किया, अपने ज्ञानब्रह्ममें रमण किया, अपनेमें सन्तोष हुआ, उनका निर्वाण हुआ। यहाँ जितना जो कोई सुख पा रहा है उसमें त्यागका बहुत कुछ हाथ है। न त्याग करे, न धन खर्च करे तो कहाँसे भलाई मिल पायगी ? त्याग बिना तो लोकमें भी सुख नहीं है। परलोककी बात तो सही ही है कि त्याग बिना सुख हो ही नहीं सकता। तो त्याग क्या करना ?

उत्तम आकिञ्चन्य धर्म

आकिंचणु भावहु अप्पा झावहु देहभिण्णउ णाणमऊ।
णिरुवम गयवण्णउ सुहसंपण्णउ परम अतींदिय विगयमऊ॥

आकिञ्चन्य धर्मकी उपासना—आज आकिञ्चन्य भावनाका दिवस है। मेरा अन्यत्र कहीं कुछ नहीं है—इस प्रकारका भाव हो सो आकिञ्चन्य है। इस जीवसे बाहर कोई पदार्थ इस जीवको शरण नहीं है। एक अपने आकिञ्चन्य स्वरूपका दर्शन पाया तो सब कुछ पाया। इस आत्मामें ज्ञान आनन्द आदि भावोंके अतिरिक्त और कुछ भी पिंडरूप चीज नहीं पाई जाती। यह सबसे पृथक् स्वतंत्र चैतन्य तत्त्व है। उसकी उपासनासे सब कुछ मिलता है और बाहरकी उपासनामें सब कुछ गवां दिया जाता है। वीतराग प्रभुकी उपासनामें भी स्वतन्त्र चैतन्य तत्त्वकी उपासना बनती है। देखो, जिस प्रभुकी मूर्ति बनाकर हम पूजते हैं वह अकिञ्चन है। उनके पास कुछ नहीं है। है तो किसीके पास कुछ नहीं, पर यहाँ तो कल्पना में मानते हैं कि यह मेरा घर है, यह मेरी दूकान है, मेरे लाखोंका वैभव है, स्त्री है, पुत्र हैं पर प्रभुके पास क्या है? और चलो आगे तो प्रभुके पास क्या है? शरीर तक भी तो उस प्रभुके पास नहीं है, पर ऐसे आकिञ्चन्य प्रभुकी जो उपासना करता है उसकी सर्वसिद्धि होती

है और जो सकिञ्चन वहाँके मोही जनोंकी उपासना करता है उसे कुछ नहीं मिलता। केवल क्लेश ही भोगता है। जैसे समुद्रमें पानी भरा होता है, पर समुद्रसे नदी निकलते कभी सुना गया है? नहीं। पर्वतोंपर पानी एक बूंद भी नहीं दिखता मगर उन पर्वतोंसे बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं। इसी प्रकार जो अकिञ्चन हैं उनकी उपासनासे आशावोंकी सिद्धि होती है और जो सकिञ्चन हैं परिग्रही हैं उनकी उपासनासे कुछ सिद्धि नहीं होती। ये इष्ट समागम मिल गये यह तो सिद्धि नहीं है, यह तो अंधेर है। इनसे आत्माका पूरा नहीं पड़ता, दुःख दूर हो सकते हैं तो अपने प्रभुके स्वरूपके दर्शनसे ही दूर हो सकते हैं।

परिग्रहलालसाकी विडम्बनाका चित्रण—एक बार गुड़ भगवानके पास फरियाद करने गया। वे मोहियोंके भगवान होंगे जिनके पास गया। गुड़ने कहा भगवान हमारी रक्षा करो। क्या हो गया गुड़ साहब? महाराज! लोगोंने हम पर बड़ा उपद्रव ढा रखा है। मैं जब खेतमें खड़ा था तो लोग मुझे तोड़ तोड़कर खाते थे, कोल्हूमें हमें पेला, लोगोंने हमें पिया। वहाँसे बचे तो हमें सताकर गुड़ बना लिया। मैं जब सड़ गया तो मुझे तम्बाकूमें कूट कूटकर खाया। मुझपर बड़ा अन्याय हो रहा है। उस भगवानने कहा तुम्हारी कथा सुनकर हमारे मुंहमें पानी आ गया है। तुम यहाँसे जल्दी भाग जावो। नहीं तो तुम यहां बच नहीं सकते। सो भैया! इन बाह्य समागमोंसे सुखकी आशा न करो, यह निराट व्यामोह है। भावना करो प्रसन्न आपकी जो देहसे विविक्त है, ज्ञानमय है, ज्ञान ही जिसका स्वरूप है, उपमारहित है, इसके वर्ण नहीं, रूप रस आदिक नहीं। गुणोंसे परिपूर्ण है, उत्कृष्ट है, इन्द्रियरहित है, उस ज्ञानस्वरूपको देखो। इस स्वरूपमें भव नहीं, संसार नहीं, क्लेश नहीं। जो होना है वह हो जाता है, उपाधिका निमित्त पाकर हो जाता है यह परिणमन, किन्तु इस ज्ञानदेवमें विकार नहीं, इसके सहज अस्तित्वके कारण इसमें कोई फंद नहीं है। ऐसे मायारहित विभाव रहित आत्माका ध्यान करो वही आकिञ्चन्य धर्म है। भैया! परिग्रहकी लालसा और परिग्रहका सम्बन्ध केवल अपने क्लेशोंके लिए ही होता है। और इसके खातिर महापुरुषों तक पर भी संदेह कर लिया जाता है। आजकलके हिसाबोंमें तो जैसे बैंकमें आपने ५० हजार रुपया जमा कर दिया, थोड़ा ख्याल होने लगता कि कहीं यह बैंक फेल न हो जाय। जैसे अभी दो साल पहिले पंजाब बैंकके प्रति ऐसी खबर सुनाई दी तो लोगोंने अपने-अपने रुपये बैंकसे निकालना शुरू कर दिया था। इससे बैंकको बहुत फायदा हुआ था। जब बैंकसे सम्बन्ध न था तब तो बैंकपर कोई दया या शंका न थी, पर जब परिग्रहका सम्बन्ध हो गया तो उसमें भी संदेह होने लगा।

उत्तम आकिञ्चन्य धर्म

आकिंचणु भावहु अप्पा झावहु देहभिण्णउ णाणमउ ।
णिरुवम गयवण्णउ सुहसंपण्णउ परम अतींदिय विगयमउ ॥

आकिञ्चन्य धर्मकी उपासना—आज आकिञ्चन्य भावनाका दिवस है। मे
अन्यत्र कहीं कुछ नहीं है—इस प्रकारका भाव हो सो आकिञ्चन्य है। इस जीवसे बाहर क
पदार्थ इस जीवको शरण नहीं है। एक अपने आकिञ्चन्य स्वरूपका दर्शन पाया तो सब
पाया। इस आत्मामें ज्ञान आनन्द आदि भावोंके अतिरिक्त और कुछ भी पिंडरूप चीज
पाई जाती। यह सबसे पृथक् स्वतंत्र चैतन्य तत्त्व है। उसकी उपासनासे सब कुछ मिलत
और बाहरकी उपासनामें सब कुछ गवां दिया जाता है। वीतराग प्रभुकी उपासनामें भी
तन्त्र चैतन्य तत्त्वकी उपासना बनती है। देखो, जिस प्रभुकी मूर्ति बनाकर हम पूजते हैं
अकिञ्चन है। उनके पास कुछ नहीं है। है तो किसीके पास कुछ नहीं, पर यहाँ तो क
में मानते हैं कि यह मेरा घर है, यह मेरी दूकान है, मेरे लाखोंका वैभव है, स्त्री है, पु
पर प्रभुके पास क्या है? और चलो आगे तो प्रभुके पास क्या है? शरीर तक भी तो
प्रभुके पास नहीं है, पर ऐसे आकिञ्चन्य प्रभुकी जो उपासना करता है उसकी सर्वसिद्धि

[illegible] कुछ नहीं मिलता। केवल [illegible] पर मछली नदी निकलने [illegible] [illegible] बड़ी-बड़ी [illegible] भी नहीं [illegible] भावनाओंकी सिद्धि [illegible] इसी प्रकार जो परिग्रह [illegible] सिद्धि नहीं होती। ये [illegible] [illegible] सिद्धि नहीं होती। [illegible] आत्माका कुछ नहीं पड़ता, [illegible] सिद्धि नहीं है, यह तो [illegible] है। [illegible] हैं।

[illegible] हो सकते हैं तो [illegible] भगवानके पास फरियाद करने

परिग्रहलालसाकी विडम्बनाका चित्रण—एक बार कुछ [illegible] भगवान हमारी रक्षा करो। [illegible] भगवान [illegible] पास गया। [illegible] भगवान हमारी रक्षा करो। [illegible] हो गया है। मैं जब खेतमें [illegible] लोगोंने हम पर बड़ा [illegible] लोगोंने हमें पिया। वहांसे [illegible] कोल्हूमें हमें पेला, लोगोंने हमें [illegible] लाया। [illegible] मैं जब [illegible] गया तो मुझे तम्बाकूमें कूट कूट कर खाया। [illegible] उन भगवानने कहा तुम्हारी कथा सुनकर हमारे मुंहमें [illegible] हो रहा है। [illegible] तो तुम यहां बच नहीं सकते। सो [illegible] तुम यहांसे जल्दी भाग जाओ। नहीं तो तुम यहां बच नहीं सकते। यह निराट व्यामोह है। भावना करो भैया! इन बाह्य समागमोंकी कुछभी आशा न करो, यह निराट व्यामोह है। भावना करो [illegible] ज्ञान ही [illegible] स्वरूप है, उपमारहित है, [illegible] निर्विकल्प है, ज्ञानमय है, [illegible] परिपूर्ण है, उत्कृष्ट है, इन्द्रियरहित है, इसके वर्ण नहीं, गन्ध रस आदिक नहीं। इसके परिपूर्ण है, उत्कृष्ट है, इन्द्रियरहित है, इसके वर्ण नहीं, गन्ध रस आदिक नहीं। [illegible] संसार नहीं, क्लेश नहीं। जो होना है वह इस ज्ञानस्वरूपको देखो। इस स्वरूपमें भय नहीं, संसार नहीं, क्लेश नहीं। जो होना है वह हो जाता है, उपाधिका निमित्त पाकर हो जाता है वह परिणमन, किन्तु इस ज्ञानदेवमें विकार नहीं, इसके सहज अस्तित्वके कारण इसमें कोई फंद नहीं है। ऐसे मायारहित विभाव रहित आत्माका ध्यान करो यही आकिञ्चन्य धर्म है। भैया! परिग्रहकी लालसा और परिग्रहका सम्बन्ध केवल अपने क्लेशोंके लिए ही होता है। और इसके खातिर महापुरुषों तक पर भी संदेह कर लिया जाता है। आजकलके हिसावोंमें तो जैसे बैंकमें आपने ५० हजार रुपया जमा कर दिया, थोड़ा ख्याल होने लगता कि कहीं यह बैंक फेल न हो जाय। जैसे अभी १ साल पहिले पंजाब बैंकके प्रति ऐसी खबर सुनाई दी तो लोगोंने अपने-अपने रुपये बैंकसे निकालना शुरू कर दिया था। इससे बैंकको बहुत फायदा हुआ था। जब बैंकसे सम्बन्ध न था तब तो बैंकपर कोई दया या शंका न थी, पर जब परिग्रहका सम्बन्ध हो गया तो उसमें भी संदेह होने लगा।

परिग्रहसञ्चयके कारण गुरुजनोंपर संदेह करनेका पाप करनेकी नौबत—[illegible] [illegible] साधुने किसी नगरके बाहर चातुर्मास किया। एक सेठने [illegible] कथा आई

त्याग किया जाता है, वहाँ ही आकिंचन्य धर्म प्रगट होता है। इसी आकिंचन्य भावनाके प्रभाव से तीर्थंकर मोक्ष गये।

दस धर्मोंके नामक्रममें स्वभावविकासके आविष्कारकी पद्धतिका दर्शन—ये दस धर्म क्या हैं? पहले क्रोधका त्याग कराया, फिर मान, माया, लोभका त्याग कराया, फिर सत्य, संयम, तप, त्याग और आकिंचन्य बताये उससे क्या किया? ब्रह्मचर्य पाया, आत्माकी स्थिति पाई, आत्माका मर्म पाया, आत्माका शुद्धरूप पाया। यह कैसे हुआ? एक प्रयोग करो। एक आतशी शीशेका कांच लाओ। यदि इससे रुई जलानी हो तो सूर्यके सामने कांचको इस तरह रखो कि सूर्यकी किरणें उसपर केन्द्रित हो जावें, इसे ही संयम कहते हैं। संयम इस शीशेमें आये तो शीशेसे ताप पैदा होता है। उस तापकी गर्मीसे यह असर होता है कि उस रुईमें जो मलिनता है उसका त्याग होने लगा। त्यागसे आकिंचन्य आया, अब रुईमें मलिनता कुछ भी नहीं रही, यह तो उसका ब्रह्मचर्य है। अपने इस प्रयोगको अपनेमें घटाओ। क्रोध, मान, माया, लोभके त्यागसे सत्य अपनाओ और ज्ञानको केन्द्रमें केन्द्रित करो। इस प्रकार संयम पैदा होगा, उस संयमसे चैतन्य प्रतपन पैदा हो गया। उस तपसे रागादि, द्वेष आदि आत्ममैलों का त्याग हो गया। इसके त्याग होनेसे आकिंचन्य रह जायेगा अर्थात् केवल आत्मस्वभाव रह जायेगा और कुछ भी उसके पास नहीं रहेगा। ऐसे आकिंचन्य होनेके बाद ब्रह्मचर्यमें अपने आपकी शुद्ध स्वभावरूप उसकी स्थिति हो गई। इस प्रकार ब्रह्मचर्यमय धर्म आकिंचन्यसे प्रगट हो जाता है। अतः आकिंचन्य धर्मका सदा आदर करना चाहिये। अर्थात् मैं दूसरोंका नहीं हूं, दूसरे मेरे नहीं हैं, मैं एक ज्ञानमात्र हूं, ऐसा सदैव ध्यान करना चाहिये।

जह छंडिजइ संकप्प दुट्ठ भोयण वंछिज्जइ जह अणिट्ठ।
आकिंचण धम्मजि एम होइ तं भाइज्जइ णरु इत्थुलोइ ॥

संकल्पमात्रके त्यागमें आकिञ्चन्य धर्म—जहां पर सदाके लिये दुष्ट संकल्पोंका त्याग किया जाता है वहां आकिंचन्यव्रत है। जहां रुचिकर भोजनका त्याग है वहां पर आकिञ्चन्य व्रत है। सर्व दुःख अज्ञानसे हो जाते हैं। कमाना, काम करना, कितनी-कितनी तरहकी परेशानियां हैं पर २४ घंटेमें लगभग १५ मिनटके लिये ऐसा आत्मस्वरूपका चिन्तन करो कि सबको भूल जावो, यह समझो कि ये भिन्न चीजें हैं, असार हैं। इतना ज्ञान हो जाये तो सारी परेशानियां समाप्त हैं। आपका घर वही है, वैभव वही है, सब बातें वही हैं। सब कुछ करते हुये भी कभी १५ मिनट तो सबको भूलकर अपने आप उस प्रभुताके दर्शन करो। इतना साहस बना लो तो क्या बिगड़ता है?

एहुविजयहावे सद्धमहावे णिरथेमर मिवगयपरिणया।
ने पुण णिमिम्मण सयल वियारा वंदणिज्ज एनेण सया ॥

इस आकिंचन्य धर्मके प्रभावसे तीर्थंकर मोक्षरूपी नगरीको प्राप्त हुए हैं। ऋषिजन सदा इस आकिंचन्य प्रभुस्वरूपकी आराधना करते हैं। इसी कारण प्रभु और ऋषिजन सब मेरे वंदनीय हैं।

दुःखमें सभारताके अनुभवका बोझ—दुःखी होते हुए मनुष्य अपने में अन्दरसे कुछ बोझसा अनुभव करते हैं, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। किसी तरहसे दुःख आया हो उसमें भीतरसे महसूस यही किया जाता है कि मेरे पर तो बड़ा बोझ है। चाहे इष्टवियोगका दुःख हो, चाहे अनिष्टसंयोगका दुःख हो, चाहे वेदनाका दुःख हो, समस्त क्लेशोंमें यह जीव अपने को भारयुक्त अनुभव करता है। घरमें और दुःख किस बातका ? आप अपने को ऐसा बोझ वाला अनुभव करते हैं कि मेरे पर इतने लोग लदे हैं। प्रयोजन यह है कि सब दुखोंमें बोझकी बात जरूर आती है। अब जरा अपने आपमें यह निर्णय करना है कि बोझ यह मिथ्या है या सचमुचका है ? मैं क्या हूं—यह निर्णय किये बिना हम शान्तिका मार्ग नहीं प्राप्त कर सकेंगे और न समस्याका सही हल कर सकेंगे। मैं क्या हूं—इसे यदि परखना है तो सभी पदार्थोंके स्वरूप परखनेकी जो विधि है वह विधि यहाँ भी लगावो। देखिये—चौकीका असली रूप क्या है ? इसे आप इस तरह समझिये कि अपने आपमें जो कुछ हो, न उसपर रंग हो, न कोई उसपर आवरण हो और अपने आपमें जो कुछ हो बस वही चौकीका असली रूप है, ऐसे ही आत्माकी भी बात देखिये—आत्मामें अपने आप स्वयं अपने ही सत्त्वसे जो कुछ हो वही मेरा स्वरूप है। क्या है वह स्वरूप ? केवल एक ज्ञानज्योति, एक ज्ञानप्रकाश। इस देह देवालयमें विराजमान जो परमब्रह्म है वह एक ज्योतिर्मय है, ज्ञानस्वरूप है, प्रतिभासमात्र है। जानना जिसका कार्य है बस वही मैं आत्मतत्त्व हूं।

गृह, परिजन, देह, कर्म, कर्मफलके भारसे रहित अन्तस्तत्त्वकी भावना—मुझपर घर का बोझ नहीं, घर तो ईंट पत्थरका है, वह मेरा नहीं। मुझपर परिजनोंका बोझ नहीं, अंदर से सोचो—परिजन दूसरे जीव हैं, अपने-अपने कर्म लिए हुए हैं, अपने उदयसे उनका कार्य होता है। तेरी तो पहिचान ही नहीं उनसे। तूने मोहमें मान रखा है कि मेरा इनसे परिचय है। जैसे जगतके अन्य जीवोंसे आपका कोई परिचय नहीं है ऐसे ही घरमें बसने वाले जीवोंका आपको कुछ परिचय नहीं है। आपने तो जैसा मनमें आया वैसा सोच रखा है। इन परिजनों का भी भार इस आत्मतत्त्वपर नहीं है। शरीरमें बँधे हैं आप, मगर थोड़ी देरको इस शरीरको भूलकर केवल एक विश्राममें बैठ जाये खुदमें, शरीरका जब पता ही न हो कि मेरे कोई शरीर लगा है, उस समय अनुभव करके देखो कि इस आत्मस्वरूपपर शरीरका भी बोझ नहीं है। अपने परमब्रह्म अंतस्तत्त्वकी बात कही जा रही है जो सबके अंदर मौजूद है और जिसके दर्शन बिना धर्मके नामपर कितने ही हाथ पैर पटक लो, पर धर्म न होगा, कर्म न कटेंगे, कल्याण-

त्याग किया जाता है, वहाँ ही आकिञ्चन्य धर्म प्रगट होता है। इसी आकिंचन्य भावनाके प्रभाव से तीर्थंकर मोक्ष गये।

दस धर्मोंके नामक्रममें स्वभावविकासके आविष्कारकी पद्धतिका दर्शन—ये दस धर्म क्या हैं? पहले क्रोधका त्याग कराया, फिर मान, माया, लोभका त्याग कराया, फिर सत्य, संयम, तप, त्याग और आकिंचन्य बताये उससे क्या किया? ब्रह्मचर्य पाया, आत्माकी स्थिति पाई, आत्माका मर्म पाया, आत्माका शुद्धरूप पाया। यह कैसे हुआ? एक प्रयोग करो। एक आतशी शीशेका कांच लाओ। यदि इससे रुई जलानी हो तो सूर्यके सामने कांचको इस तरह रक्खो कि सूर्यकी किरणें उसपर केन्द्रित हो जावें, इसे ही संयम कहते हैं। संयम इस शीशेमें आये तो शीशेसे ताप पैदा होता है। उस तापकी गर्मीसे यह असर होता है कि उस रुईमें जो मलिनता है उसका त्याग होने लगा। त्यागमें आकिंचन्य आया, अब रुईमें मलिनता कुछ भी नहीं रही, यह तो उसका ब्रह्मचर्य है। अपने इस प्रयोगको अपनेमें घटाओ। क्रोध, मान,

छोड़कर इस शरीरमें आ जावो तो इसमें आपको क्या कष्ट ? मरणमें क्या नुकसान ? लेकिन जो २४ घंटे रात दिन रागद्वेष मोह करके अपने प्रभुको मलिन कर रहा है वह मरण बरबादी का कारण है। तो जब तक अपने अकिंचनस्वरूप निःसंगस्वरूप सर्वभावोंसे रहित केवल ज्ञानज्योतिमात्र अपने आपके स्वरूपका निर्णय न होगा तब तक धर्मकी बाह्य बातें कपोलवाद हैं। अनुभव करें अपने आपको कि मैं कृतार्थ हूं, आनन्दस्वरूप हूं, मेरेको कोई काम नहीं पड़ा, मेरेमें कोई क्लेशकी बात नहीं। हिम्मत बनाओ कैसी भी समस्या आये, कैसी भी विपत्ति आये तो उसका स्वागत करें। आती है विपत्ति तो आने दो, परीषह होते हैं तो होने दो। कदाचित् मरण भी हो जाये तो उससे क्या नुकसान है ? कुछ भी नहीं, उसे देखकर एक मुस्कान लें। हो रहा कर्मका विपाक है, उससे मेरा क्या नुकसान ? जब तक ऐसा भाव चित्तमें न आये कि मेरा बाहर कहीं कुछ नहीं है और बाहरी रूप यह मैं कुछ नहीं हूं, इस प्रकारकी श्रद्धा जब तक न आये तब तक शान्ति नहीं मिलती।

निःसंगतामें ही आत्महित—परिग्रह तो दुःखका हेतुभूत है। केवल एक मोहवश ऐसा मान रखा है कि परिग्रहसे बड़ी इज्जत है। अरे कुछ मायियों द्वारा प्रशंसाके शब्द गा दिए गए तो उससे क्या लाभ ? वे कोई काम न देंगे, किन्तु एक अकिंचन निःसंग आत्मतत्त्वकी उपासनामें यह इज्जत बनेगी कि तीन लोकका अधिपति हो जायगा। तो चित्तमें लाना चाहिए कि परमाणु मात्र भी मेरा कुछ नहीं है। घर-घरमें दुःख है, मेरेको कम मिला, इनको अधिक मिला, मेरेको कम अच्छे कपड़े मिले, इनको खूब अच्छे कपड़े मिले। अरे ये सब स्वप्नकी बातें हैं। इनसे कुछ भी लाभ न मिलेगा। लाभ मिलेगा धर्म करनेसे, तत्त्वज्ञान करनेसे, इसमें शोभा है, बाहरी बातोंसे क्या शोभा ? तो ये सब परिग्रह बुद्धिके ही तो नुकसान हैं। अब आजकल तो कुछ स्त्रियां बाजारोंमें गालोंपर पोडर (पाउडर लगाकर) और ओठोंमें खून पोतकर (लाली लगाकर) घूमती हैं। जब कोई उन्हें देख लेते हैं तो उन्हें बड़ा भद्दा लगता होगा। अन्य [illegible] ये [illegible] क्यों लिए जा रहे हैं ? क्या दूसरोंको [illegible] करनेके लिए ? परिग्रहमें, शरीरमें जब तक ममताबुद्धि लगी है तब तक [illegible] ? [illegible] —अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी। णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि। मैं एक हूं, अकेला हूं, सबसे निराला हूं, ज्ञानदर्शनमय हूं, मेरा तो परमाणुमात्र भी कुछ नहीं, मुझको कोई [illegible] नहीं। [illegible]

[illegible]

मय परमशिव अंतस्तत्त्वकी बात कही जा रही है। इसपर शरीरका भी बोझ नहीं है पर देखते हैं तो एक बड़ा बोझ मालूम देता है। जब हम इनमें विशेष ममता रखते हैं तो और बोझ लगने लगता। हमारा उपयोग जब शरीरमें आता है तो उससे बोझ मालूम होता है। इस अमूर्त गगनवत् निर्लेप अंतस्तत्त्वपर बोझ किस बातका? इसपर कर्मका भी बोझ नहीं है, बन्धन हैं, निमित्तनैमित्तिक भाव है। कर्मके फलमें जब कुछ अपना उपयोग लगाते हैं तो बोझ कर्मका होता ही है। हम कर्मके फलको न चाहें तो मुझपर कर्मका बोझ अब भी नहीं है और रहा सहा जो बोझ है वह सब मिट जायगा। हम बोझल बनते हैं अपने विकल्पों द्वारा। जैसे एक दोहा है ना—"हाले फूले वे फिरें, होत हमारो व्याव। तुलसी गाय बजायके देत काठमें पाव॥" याने अपने आप अपनेमें विपत्ति ले लेना–यह बात अन्दर अन्दर चल रही है। हम कर्मके फलमें रुचि बनाते हैं, लो कर्मका बोझ लद जाता है। एक जगह लिखा है कि लोगोंको कर्म फल देते हैं, क्या फल है कर्मका? जीवन न रहे या धन वैभव न रहे। दोनों बातोंसे लोग डरते हैं। मेरा जीवन मिट न जाय। मेरे धन वैभवमें कहीं घाटा न आ जाय, दो बातोंसे डरते हैं, और यदि एक ऐसा ज्ञानामृतका पान हो जाय, ज्ञानप्रकाशमें आ जाय, ... तो डर किस बात

[illegible] शरीरमें आ जावे तो इसमें आपका क्या कष्ट ? मरणमें क्या नुकसान ? लेकिन [illegible] रागद्वेष मोह करके अपने प्रभुको मलिन कर रहा है वह मरण [illegible] है । सो जब तक अपने अविनाशस्वरूप निर्भयस्वरूप सर्वभावोंसे रहित [illegible] ज्ञान-[illegible] अपने आपको [illegible] निर्णय न होगा तब तक कर्मोंका [illegible] है । [illegible] अपने आपको कि मैं कृतार्थ हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ, मेरेको कोई काम नहीं पड़ा, मेरेमें [illegible] काम नहीं । [illegible] भी [illegible] आवे, [illegible] भी विपत्ति आवे तो [illegible] स्वागत करे । आती है विपत्ति तो आने दो, परीषह होते हैं तो होने दो । [illegible] भी हो जावे तो उसमें क्या नुकसान है ? कुछ भी नहीं, [illegible] । [illegible] क्या नुकसान ? जब तक [illegible] नहीं [illegible] शान्ति नहीं मिलती ।

[illegible]

मर्मभरी बात चिल्लानेसे हृदयसे नहीं निकलती, गंभीरबुद्धिसे निहार—अकिंचनोऽहमित्यास्स्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः । योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥ मैं अकिंचन हूं । यह बाहरी सब मेरा स्वरूप नहीं, मुझमें बाहरी चीज कुछ मेरी नहीं है, कुछ भी मेरा नहीं, ऐसा जानकर तू विश्रामसे एक क्षणको बैठ तो जा, देख तू तीन लोकका अधिपति हो जायगा । जैसे किसी को बड़ा ज्ञानी बनना हो, बड़ा ज्ञानी कौन कहलाता जो तीन लोक तीन कालकी सब बातों को जानता है । अगर आपको सबसे बड़ा ज्ञानी बनना है । मानो सर्वज्ञ बनना है तो आप विद्यायें सीख-सीखकर, ज्ञान अर्जन कर करके सर्वज्ञ नहीं बन सकते हैं । अभी इसे जाना, फिर इसे जाना ऐसा धीरे-धीरे पढ़ लिखकर सर्वज्ञ बन जाय सो नहीं बना जा सकता । तो कैसे बना जा सकता है ? सर्वज्ञ सारा ज्ञान छोड़ दो, यह बाहरी सब चीजोंकी बात भूल जावो, केवल अपने आपमें विश्रामसे बैट जावो, ऐसा कर्ममलका विनाश होगा कि स्वयं यह सर्वज्ञ बन जायेगा । तो जैसे सर्वज्ञता बननेका उपाय थोड़ी-थोड़ी बातोंका सीखना नहीं है । इसी तरह तीनलोक का अधिपति बनना वैभवका रखना जोड़ना नहीं है, किन्तु सब वैभवोंको तिलाञ्जलि देकर अपने आपको अकिंचन निर्भार अनुभव करें, यही अधिपति होनेका उपाय है । भागवतमें एक निःसंगताका वर्णन है । द्वितीय स्कंधके ७ वें अध्यायके १० वें छन्दमें वहाँ बताते हैं कि नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्दृढ़बोधचर्याम् । यत्पार-महंस्यमृषयः पदमामनन्ति, स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥ ऋषभदेव, सुदेवी, मरुदेवी के सुतः, नाभिनन्दन जो निःसंग हो, स्वस्थ हो, इन्द्रियाँ जिसकी प्रशान्त हैं, जिनके परमहंसमय पदको ऋषिजन प्रणाम किया करते हैं वे इस तरहकी दृढ़चर्यामें आचरण कर रहे कि सर्व पदार्थोंमें समान दृष्टि रखें । बड़े-बड़े पुरुषोंने सब कुछ पाकर छोड़कर निःसंग होकर, अपरिग्रही होकर अपने आपमें अपनी सुविधाका अनुभव किया और यहाँके सुभट उसकी खबर भी नहीं करते ।

भ्रमकी मार—ये संसार सुभट बाह्य परिग्रहोंकी ओर ऐसा दौड़ लगाये है कि जैसे बहकाया हुआ लड़का भागता फिरता है । किसी ने बहका दिया कि रे बेटे तेरा कान कौवा ले गया तो वह बालक दौड़ता है और चिल्लाता है, अरे मेरा कान कौवा ले गया । अरे भाई कहाँ भगे जा रहे हो ?···अरे मत बोलो—मेरा कान कौवा ले गया ।···अरे जरा टटोल कर देख तो सही, कहाँ तेरा कान कौवा ले गया ? तेरा कान तो तेरे ही पास है ? जब टटोलकर देखा तो कहा—अरे है तो सही मेरा कान मेरे ही पास । बस उसका रोना बन्द हो गया । ठीक ऐसे ही ये संसारी प्राणी बाह्य पदार्थोंके पीछे दौड़ लगा रहे हैं, उन्हें यह पता नहीं कि मेरा सारा वैभव तो मेरे ही पास है । इस अपने वैभवका पता न होनेसे यह बाह्य पदार्थोंके पीछे दौड़ लगाता फिरता है और दुःखी होता है । कोई भी परपदार्थ इसके लिए बोझ नहीं

ढनता, पर यह ही उन परपदार्थोंके प्रति नाना प्रकारकी कल्पनायें करके अपने पर बड़ा बोझ मानता है। जैसे किसी सेठका कोई नौकर ऐसी कल्पना कर ले कि मेरे ऊपर तो इस सेठकी सारी जायदादका बोझ है तो वह घबड़ाता फिरता है, पर उसकी इस घबड़ाहटको देखकर लोग उसकी मजाक करते हैं। कहते हैं कि देखो इसका है कहीं कुछ नहीं, है तो सब सेठ सेठानीका, पर कैसा यह सारी जायदादको अपनी मानकर उसका बोझा मानता है। ठीक यही हाल तो आप सबका है। घरकें जिन दो चार जीवोंके लिए आप रात दिन बड़ा श्रम कर रहे हैं उनकी आप नौकरी ही तो कर रहे हैं। तभी तो आपको रात दिन इतना अधिक श्रम करना पड़ता है। जब उनके पुण्यका उदय है तब आपको उनकी नौकरी तो बजानी ही पड़ेगी। पर आप अपनी कल्पनायें बनाकर उनके पालन-पोषण करने वाले बनते हैं और अपने ऊपर उनका बहुत बड़ा बोझ अनुभव करते हैं। आप कभी अपनेको निर्भार नहीं अनुभव कर पाते। तो यह परिग्रहका ही तो संग है। परिग्रहका संग हम आपके लिए बहुत बुरा है। जब तक अपने आपको निःसंग नहीं अनुभव किया जायगा तब तक तो लोकव्यवहार में भी चैन नहीं मिल सकता।

अकिञ्चन, परविविक्त, ज्ञानदर्शनमय अन्तस्तत्त्वकी भावना—भैया! आत्मस्वरूप ही निःसंग है, अकेला है, इसपर दृष्टि देते हुए समयसारमें कहा है कि मेरा यहाँ परमाणुमात्र भी नहीं है। मैं एक हूं, शुद्ध हूं, ज्ञानमात्र हूं। मेरा स्वरूप क्या? ज्ञानप्रतिभास स्वरूप। आत्माका कोई काला, पीला, नीला, लाल आदिक वर्ण नही होते; खट्टा, मीठा, कड़वा आदिक रस नहीं होते, आत्मामें कोई गंध नहीं होते। वह तो आकाशवत् अमूर्त है। आकाशमें और मुझ आत्मामें फर्क यह है कि मैं आत्मा जानता देखता हूं और यह आकाश कुछ जानता देखता नहीं। जैसे यह खम्भा पड़ा है तो यह भी कुछ जानता देखता नहीं, न इसमें कोई रागद्वेषादिक विकार ही होते हैं, पर ऐसे ही इस आत्मामें भी स्वभावसे कोई रागद्वेषादिक विकार विषय कषाय आदिकके भाव नहीं होते। ज्ञानी पुरुष जानता है कि आत्मामें होने वाले ये विकारभाव इस मुझ आत्माके नहीं, हैं आत्मा तो इन सबसे निराला ज्ञानमात्र एक सत्त्व है, इस प्रकारके ब्रह्मस्वरूपकी जब तक दृष्टि नहीं बनती तब तक आत्मा कल्याणका पात्र नहीं है। बाह्यमें जहाँ जो होता हो, हो, उनसे मेरा कुछ वास्ता नहीं। जो इस तरहसे बाहरी परिणतियोंकी अनसुनी कर देगा वह सुखी रहेगा, शान्त रहेगा। मात्र ज्ञाताद्रष्टा रहो। एक जगह लिखा है कि जो स्वयं द्रष्टा है उसे देखो, जो आप स्वयं हैं उसके दर्शन करें। मान लो आप यहाँ मेरठमें न पैदा होते, मान लो इंगलैण्ड वगैरह किसी दूसरे देशमें पैदा होते तो फिर यहाँकी कुछ भी चीज आपके लिए क्या थी? यहाँके ये परिचित लोग फिर आपके लिए कौन क्या थे? क्या इनमें फिर आप अपनी प्रशंसाकी चाह करते? तो इस थोड़े

वह वीरतासे युद्ध करता रहा। अवसरकी बात है कि युद्धमें उस राजाके लड़केका सिर कट गया। फिर भी उसके हाथकी तलवारने बहादुरीसे १०-११ मुगलोंको मार दिया। मुगलोंके राजमंत्रीने सोचा कि यह कितना बहादुर है, फिर वह तो और भी अधिक बहादुर होगा, जिसकी यह संतान है। जिस संतानने मर जाने पर भी १०–११ सैनिकोंको समाप्त कर दिया। यह बात जाकर उसने मुगल बादशाहसे कही। बादशाहने कहा कि उस राजाको हमारे राज्यमें लाओ ताकि हम उसका विवाह अच्छी लड़कीसे कर देंगे, जिससे ऐसी ही बहादुर संतान हमारे राज्यमें भी हो। वह मंत्री उस राजाके पास गया और बोला कि महाराज हमारे बादशाहने बुलाया है। राजाने पूछा कि बुलाया क्यों है? तो उसने कारण नहीं बताया। राजा उसके साथ हो लिया। रास्तेमें राजाने बहुत जिद्द की कि हमें कारण बताओ तो मंत्री बोला कि महाराज, आपके पुत्रके बलकी प्रशंसा सुनकर हमारे राजाने आपको अपने राज्यमें बुलाया कि आपकी शादी राजघरानेकी किसी भी लड़कीसे वहाँ कर देंगे ताकि आप उनके राज्यमें रहकर वैसी ही बलवान संतान पैदा करें। तब राजा बोला कि अच्छा भाई, वहाँ हमारे लायक कोई लड़की भी मिलेगी? तो मुगल मंत्री बोला कि अच्छीसे अच्छी लड़कियाँ, सुन्दर सुन्दर हमारे राज्यमें हैं। तब राजा बोला कि मुझे सुन्दर लड़की नहीं चाहिये। मुझे ऐसी ही लड़की चाहिये जैसी कि मेरी रानी थी। तब मंत्री बोला कि महाराज आपकी रानी कैसी थी?

अब राजाने अपनी रानीका चरित्र सुनाना प्रारम्भ किया कि जो राजपुत्र लड़ाईमें मारा गया, जब वह केवल ६ मासका था और पालनेमें सो रहा था तो मैं रानीके कमरेमें गया और कुछ रागभरी बात रानीसे कहने लगा। तब रानीने टोका कि इस बच्चेके सामने रागमिश्रित बात मत बोलो। यह परपुरुष है। तब मैंने कहा कि इतने छोटेसे बच्चेके रहनेसे क्या होता है? ऐसी हम बातें कर ही रहे थे कि उस बच्चेने शर्मसे अपना मुंह ढांक लिया। यह बात रानीने देखली और वह बोली कि देखो आप इसके सामने रागभरी बात करते थे, इसलिये इसको भी शर्म आ गई और इसने अपना मुंह चादरसे ढांक लिया। यह कहकर अपनी जीभ निकालकर, उसे दाँतोंके बीच चबाकर मर गई। यह उसके शीलकी थोड़ी-सी कहानी है। सारी चर्याका तो कहना ही क्या? अतः यदि तुम्हारे राज्यमें ऐसी ही शीलवती लड़की हो तो मैं उससे विवाह कर सकता हूं, तब ही ऐसी बलवान सन्तान पैदा हो सकती है। मंत्री अपना सा मुंह लेकर चला गया। इससे क्या निष्कर्ष निकला? संतानमें सुबुद्धिका आना, बलका आना, ज्ञानका बढ़ना, योग्यताका आना, माता पिताके शील-स्वभावपर निर्भर है। इसलिये बच्चोंके आगे व्यर्थ मजाक न करो और असमयमें भी व्यर्थ मजाक न करो। धर्मसे रहो तो संतान और पति पत्नी सबपर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

सम्यग्ज्ञानीके ब्रह्मचर्यकी सुगमता—ब्रह्मचर्य आत्मामें लीन रहनेका उपदेश करता है। इस समाधिभावकी प्राप्तिके लिये कुशीलके त्याग करना पूर्ण आवश्यक है। सन्तोष धारण करने वाले गृहस्थजनोंको सदा शीलका पालन करना चाहिये इससे आत्मशील प्राप्त होता है। आज दसलाक्षणीका अन्तिम दिन है। दसलाक्षणीका अन्तिम धर्म है ब्रह्मचर्य व्रत। आत्माके ज्ञानस्वरूपमें लीन हो जाना सो ब्रह्मचर्य है, और इस लोकव्यवहारमें कुशील अवस्थाका त्याग कर देना सो ब्रह्मचर्य है। यह ब्रह्मचर्य विषयाशाका त्याग कर देनेसे सुगम सिद्ध होता है। विषयोंसे जीवका हित नहीं है। जैसे कोई अविनयी पुरुष डाकुवोंके गुंडोंके गिरोहमें फंस जाय तो वह बहुत लुट पिटकर पीछे पछतावा करता है। इसी प्रकार विषयोंमें आसक्त पुरुष विषयोंमें रमकर अपने तन मन वचन सब कुछ खोकर पछतावा करता है। जब जिन्दगी चली जाती है, तब याद आती है कि इस जीवनको यदि हमने धर्ममें लगाया होता तो आज कुछ हमारे हाथ रहता। यह शील, ब्रह्मचर्य यद्यपि दुर्धरव्रत है, पर ब्रह्मचर्यसे कठिन तो कुशीलकी प्रवृत्ति है। कितनी बातें सहते, व्यभिचारी जन, कितने ही कष्ट सहते, कितने ही अपमान सहते, कितनी आशा प्रतीक्षाका संक्लेश सहा करते, किन्तु ब्रह्मचर्यमें अपनी आत्मदृष्टि है, निजतत्त्वमें रमण है। यह जीव स्त्रीसुखमें लीन होकर मनरूपी हाथीसे भी कठिन मदोन्मत्त हो रहा है। हे भव्य जीवो! इस ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करो।

जिन भूमि सगगुवि उप्पज्जइ तेण जु पीडउ करइ अकज्जइ।
तियहँ सरीरइँ णिंदइँ सेवइ णियपरणारि ण मूढउ वेयइ॥

कामविकारकी व्यर्थ अनर्थ माया—इस कामका नाम है मनोज। यह कोई रोग नहीं

कठिन चीजपर अपना वश हो जाये तो वह प्राणी सदाके लिये सुखका मार्ग पा लेगा। इन विषयोंकी आशाको दूर करके इस दुर्धर धर्मको अच्छी तरहसे पालना चाहिये। अपनी स्त्रीके अतिरिक्त सबको माता, बहिन, पुत्री समझो। स्त्रियां भी अपने पतिके अतिरिक्त सभी पुरुषों को पिता, पुत्र और भाईके समान समझें। ऐसी समझनेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यदि उनमें उपयोग ही न जाये। ऐसे दुर्धर ब्रह्मचर्य धर्मको धारण करना चाहिये जिससे कि विषयों की आशा ही पैदा न हो सके। विषयोंके आसक्त सप्तम नरकके नारकीसे भी पतित हैं। वे तो सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं, परन्तु भोगासक्तको सम्यक्त्वकी गन्ध (आभास) भी नहीं हो सकती है।

ब्रह्मचर्यसिद्धिके लिये असत्संगति और अभक्ष्यके त्यागकी परमावश्यकता—एक कवि ने एक वेश्यागामीका ऐसा चित्र खींचा है—वेश्याकी नाचने गानेकी सभा लग रही है, मंजीरे भी बज रहे हैं, मृदङ्ग भी बज रहे हैं, वेश्या नाच रही हैं, जितने आदमी उस सभामें बैठे हैं वे अपना सिर भी हिला रहे हैं। तो वह कवि कह रहा है कि····मृदङ्ग कहे धिक् है, धिक् है, मंजीरे कहें—किनको-किनको। तब वेश्या हाथ पसार कहे, इनको, इनको, इनको, इनको। जितने भी व्यक्ति उस वेश्याकी सभामें बैठे थे, उनकी उपमा दी गई कि मृदङ्ग तो कहता है धिक्कार है, मंजीरे कहते हैं कि किनको धिक्कार है ? तब वेश्या उन बैठे हुये लोगोंकी तरफ हाथ पसारकर कहती है कि इनको धिक्कार है जो यहाँ अपना समय नष्ट कर रहे हैं। वेश्याओंके यहाँ जाने वालोंका यही हाल है। यही सिनेमा देखनेकी बात है। लोग कहते हैं कि क्या होता है सिनेमा देखनेमें ? आजकलके सिनेमा कहते हैं कि हमको शिक्षाका प्रसार करनेके लिये ईश्वरने भेजा है, परन्तु अच्छेसे अच्छा सिनेमा होगा तो वहाँ भी खोटी बात अवश्य मिलेगी। धार्मिक सिनेमा भी कोई इन कम्पनियोंमें बनता है तो उसमें भी बीच बीचमें ऐसी बात आ जाती है कि लोगोंको पापकी ओरकी रुचि उनमें मिल सके। जिनको अपने ब्रह्मचर्यको स्थिर रखना है, उन्हें सिनेमाको त्यागना चाहिये। अच्छी-अच्छी रीलें यदि बनाई जायें तो उनमें अश्लील बातें नहीं आनी चाहियें। ब्रह्मचर्यार्थीको बाजारकी अभक्ष्य चीजके खानेका त्याग हो। कितनों ही में यह प्रथा चल गई कि अण्डे और माँस खाये बिना चैन ही नहीं पड़ता, परन्तु यह नहीं सोचा कि ये अण्डे और मांस हैं क्या ? अण्डे जब गर्भमें आते हैं तो जीव आ जाता है। पहले तो रज-वीर्यमें ही बहुतसे जीव रहते हैं, फिर अन्य जीवके आनेके कारण उसमें कठोरता आती है। पहले तो मांस जैसे ढीले ढालेसे रहते हैं फिर कठोर हो जाते हैं। वह पंचेन्द्रिय जीव अण्डे हैं। मांस—उसमें भी जीव हैं और पकते हुयेमें भी जीव पैदा होते रहते हैं। उसमें तो हर समय जीव पैदा होते रहते हैं। इन अभक्ष्य चीजोंका त्याग ब्रह्मचर्य धारण करनेके लिये आवश्यक है। अनुचित आहार-विहारसे मैथुन

तथा कामभाव बढ़ता है। मैथुनप्रसङ्ग शरीरका राजा जो वीर्य है उसको समाप्त कर देता है। इसलिये अधिकसे अधिक ब्रह्मचर्य धारण करो। महीनेमें २५ दिन, २६ दिन, २८ दिन लगातार तीन महीने, ६ महीने जितने दिन अधिकाधिक हो सके, पूर्णतया ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।

कुशीलकी कुशीलता जानकर कुशीलके त्यागका आदेश—मेरठमें एक ३०–४० वर्ष की आयुका युवक था। पहले उसका कैसा चरित्र था, यह हम नहीं कह सकते। यही समझ लो कि हर एक काममें परफैक्ट था। जबसे धर्ममें लगन लगी तो वह मुझे कहता था कि २–३ वर्षसे आपके समागम कभी कभी प्राप्त होते रहनेके कारण हमारे जीवनमें बहुत परिवर्तन हुआ। ऐसे जीवने आजीवन महीनेमें २९ दिनका ब्रह्मचर्य रखा और उस मर्यादामें एक दिन भी उस कमरेमें नहीं सोया जहां उसकी स्त्री सोती थी। जमीनपर भी सो जाता, कायक्लेश भी सहना और स्त्रीकाम केवल एक दिन रखा, सो उस दिन भी ब्रह्मचर्यका पूर्ण ध्यान रखता था। उसे अनुभवमें आ गया कि कुशील बहुत गन्दी चीज है। इससे दूर रहकर जो रह सकता है वह अपनी आत्माका उत्थान करेगा। यह ब्रह्मचर्यव्रत वास्तवमें तो ज्ञानी धारण करते हैं। अनादि, अनन्त, अहेतुक, ज्ञानस्वभावको जानकर किसी प्रकारके विषय-कषायमें विषयबुद्धि नहीं करना, यही ब्रह्मचर्य है। आध्यात्मिक दृष्टिसे ब्रह्मचर्य यही है। इस दृष्टिसे विषयकषायोंमें रत रहने वाला व्यभिचारी कहा जाता है। सबसे बड़ी बात विषयभोग के त्यागकी होती है। इसके त्याग वालेको अन्य विषयोंके त्याग अति सरल हैं।

कामविकारकी विडम्बना—यह कामका रोग और किसी तरह कुछ नहीं पैदा होता, मनका विकल्प होनेसे ब्रह्मचर्यका घात होता है। यह काम मनोज है। पुरुष स्त्रियोंके अत्यन्त निन्द्य शरीरका सेवन करता है और स्त्री भी पुरुषोंके अत्यन्त निन्द्य शरीरका सेवन करती है। कामवासनाके वशीभूत होकर कितने ही पापी निजस्त्री और परस्त्रीमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं करते, खोटेसे खोटा काम कर देते हैं। एक बार राजा भोजके सामने एक वेश्या अमरफल लाई। उस अमरफलकी कथा यह है कि राजा कहींसे आ रहा था तो रास्तेमें किसीने वह अमरफल उसे भेंट किया था। उसने सोचा कि मेरी स्त्री मुझे सबसे प्यारी है इसलिये इस अमरफलको मैं उसे दूंगा। तब उसने महलोंमें आकर उसे रानीको दे दिया और कह दिया कि इसे तुम खा जाओ, तुम अमर हो जाओगी और मैं सुखी हो सकूंगा। रानीका कोतवालसे प्रेम था, इसलिये उसने स्वयं न खाकर वह फल कोतवालको दे दिया, परन्तु कोत-वालका प्रेम एक वेश्यासे था। अतः उसने वह फल वेश्याको दे दिया। उसी अमरफलको वह वेश्या राजा को भेंट कर देती है। तब राजा विचार करता है और सब कुछ तुरन्त समझ

जाता है। तब वह कहता है कि—

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता, साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या, धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥"

अर्थात् जिस स्त्रीका मैं विचार करता हूं वह मुझसे विरक्त है, वह स्त्री जिसका विचार करती है (कोतवाल), वह स्त्रीसे विरक्त है और वह कोतवाल जिस वेश्यासे प्रेम करता है वह वेश्या कोतवालसे विरक्त है। ऐसे कामियोंका यही स्वरूप है। यह मनुष्य कामके वशमें होकर अपना जीवन खो देता है। धिक्कार है उस स्त्रीको, उस पुरुषको, इस कामको और इस वेश्याको और मुझे भी। व्यभिचार 'मनके हारे हार है' की कहानी मात्र है।

कामीकी तुच्छताका उदाहरण—एक सिपाही एक वेश्यासे प्रेम करता था। उसके चक्करमें उसने अपना साराका सारा धन उसे लुटा दिया। बहुत दिनोंके बाद जब वह सिपाही बुड्ढा हो गया तो वेश्याने उसे उत्तर दे दिया और अपने यहाँ नहीं आने दिया। तब वह सिपाही वेश्याके सामने जो वृक्ष था उसके नीचे बैठा रहने लगा। किसीने उससे पूछा कि तुम यहाँ बैठकर क्या लेते हो? तब वह उत्तर देता है कि मैं यहाँ इसलिये बैठा रहता हूं कि मेरा इस वेश्यासे प्रेम है, यह मुझे अपने यहाँ तो आने नहीं देती, कदाचित् किसी समय किसी कामसे छतपर चढ़े तो उसके दर्शन ही हो जाया करेंगे। वह इसी तरह वहां तपस्या करता हुआ बैठा रहता। ऐसे कुकर्मी लोग इसी तरहकी पीड़ा सहते हुए बुरी मौत मरते हैं। खोटा भाव तो विना शिक्षा दिये भी ग्रहणमें शीघ्र आ जाता है।

कामभावके उपसर्गसे बचनेकी सावधानी की आवश्यकता—आजका समय बड़ा नाजुक हो गया। ऐसे समयमें माता पिता आदिको चाहिये कि जब बच्चा अपनी जवानीके सन्मुख हो तब उसपर पूर्ण निगाह रखनी चाहिये, नहीं तो वह लावारिश सा हो जाता है और बुरी संगतिमें पड़ जाता है। कोई बच्चा कहीं भ्रष्ट हो जाता है और कोई कहीं। इस लिये उन पर पूरी निगाह रखनेकी आवश्यकता है, जिससे किसी प्रकारका उनके दिलमें कुभाव पैदा न हो सके। २० वर्ष तकका जीवन इस प्रकार व्यतीत करले तो इनके संतान भी होगी तो ऐसी, जो अपनी धर्मनिष्ठा चारित्रशक्तिके द्वारा हर प्रकारके मनुष्योंकी रक्षा करने में समर्थ होगी। जितना आज मनुष्य परोपकार कर जाये व अपने आपको सम्यग्ज्ञान से जितना निर्मल बनाले वही ठीक है। ये सब चीजें यहाँकी यहाँ ही नष्ट हो जायेंगी। ऐसा सुना जाता है कि इस कामवासनाके वशमें होकर मनुष्य कहीं कुछ भेदभाव नहीं रखता। बड़े होकर भी कितने ही लोग तो गृह कुटुम्बके परिवारजनोंमें अपनी कुबुद्धि लगाते हैं, यह कहाँ तक उचित है? ऐसी बात शोभा नहीं देती। पहिले तो एक कथा पुराणकी सुनी जाती थी, अब कोई कहता है कि किसी-किसी घराने में भी होने लगा। धिक्कार है कामभावको।

आप माता हैं और वे पिताजी हैं हमको बीचमें बोलनेका अधिकार नहीं है, परन्तु हमें भूखे तो नहीं रखना चाहिये। दूसरा लड़का आया तो उससे भी उसी प्रकार माँ ने कहा और उसने वैसा ही उत्तर दिया। तीसरे ने भी उसी प्रकारका उत्तर दे दिया। अब चौथा लड़का आया जो आंख खुलनेके बाद पैदा हुआ था। स्त्री ने उससे भी वही बात कहदी तो उसने उत्तर दिया कि माँ तुम रोटियाँ बनाओ, मैं बाप-फापको अभी देखता हूं कि वह तुम्हें कैसे मारता है? सबकी बातें स्त्रीने अपने पतिसे कहीं। तब पतिने पूछा कि यह बताओ कि जब चौथा लड़का गर्भमें था तब तुम्हारे मनमें क्या विकार आया था? तब स्त्रीने उत्तर दिया कि मेरे मनमें कोई बुरा विकार तो नहीं आया, परन्तु एक दिन मैं छतपर खड़ी थी, नीचे दृष्टि पड़ी तो एक पहलवान जा रहा था। तब हमारे मनमें यह विचार अवश्य आया कि पहलवान कैसा हृष्ट-पुष्ट शरीरवाला है? इसके अतिरिक्त हमारे मनमें कोई अन्य भाव नहीं आया। तब पतिने कहा कि बच्चेमें तुम्हारे इस विचारका ही प्रभाव आया है, तभी वह यह बोलनेको तैयार हो गया कि मैं बाप-फापको देखता हूँ, अम्मा तुम रोटी बनाओ। इसीलिये मैंने तुमसे कहा था कि तुम अपनी आँखें मत खुलवाओ, परन्तु तुम न मानी और यह बच्चे का ख्याल पैदा हो गया।

परिवारके हितमें गृहस्थका ब्रह्मचर्यविषयक जुम्मेदारी—तात्पर्य यह है कि संसारमें गृहस्थोंकी बड़ी जुम्मेदारी है। यदि पूर्ण ब्रह्मचर्यसे भी न रह सको तो कुछ ऐसी कोशिश करो कि भारत भूमिपर ऐसे लड़के तो नहीं पैदा हों जो भारस्वरूप हो जावें। इसलिये देश और आत्माको उठानेके लिये ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेकी बड़ी आवश्यकता है। गृहस्थोंमें ऐसे नियम बना लेने चाहियें कि एक मासमें इतने दिन ब्रह्मचर्य रखूंगा। स्त्रीसे पूछ लेना और जो सलाह बैठे सो कर लेना। गर्भमें बच्चा आवे तबसे लेकर दो साल तक भोग नहीं करना चाहिये। गर्भस्थ स्त्रीसे भोग नहीं करना और बच्चा पैदा हो उसके बाद भी दो वर्ष पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना। यदि ऐसा नहीं किया गया तो सन्तानपर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जिसको अपने शुद्ध स्वभावका ज्ञान होगा, उसके मनमें कभी क्षुब्ध पैदा नहीं होगा। मन गन्दी ओर गया कि पीड़ा होने लगी और जहाँ बुरे परिणामोंकी ओर दृष्टि नहीं होगी वहाँ पीड़ा किससे जागेगी ही कैसे? ब्रह्मचर्य [illegible] तभी निभेगा जब कि बुरे भावोंकी ओर दृष्टि नहीं होगी।

अतएव जीवनमें ब्रह्मचर्यव्रतकी संभाल करके भव पार होनेके उपाय बना लेनेका अनुरोध—ब्रह्मचर्यव्रतमें मनुष्य संसार-समुद्रसे पार होता है। कुशील, परस्त्रीगमन, काम-सेवन, व्यभिचार आदिसे न कोई कभी [illegible] नहीं कर सकता और न मोक्षमार्गका पालन कर सकता है। इस ब्रह्मचर्यके बिना तपश्चरण आदि करना व्यर्थ है। [illegible]

का, कुछ मुखमें कुछ गोद। विषय सुखनके राजमें, मूरख माने मोद॥" अर्थात् यह जगत् कालका चवेना है। कोई तो कालके मुखमें है, कोई कालकी गोदमें है और कोई हाथमें है। ये जगत्के प्राणी बहुत देर तक तो रह नहीं सकते, जीवन और यह समागम सब क्षणभंगुर हैं, फिर किसके लिये ये खोटे काम किये जायें? आजन्म ब्रह्मचर्य लोग यही सोच कर पालते हैं। ब्रह्मचर्यपालनमें सन्देह क्या, जब मन ही में कोई बात नहीं आती। भूखकी व्यथा तो कठिन है, पर व्यभिचारकी व्याधि कठिन नहीं। मनका विकल्प दूर हो तो ब्रह्मचर्यका पालन हो जायेगा। इसके पालनमें बड़ीसे बड़ी स्थिरता रहनी चाहिये।

स्वात्मानन्दपद प्रवेशरूप ब्रह्मचर्यसे सर्वसिद्धि—हे भव्यजीव! इस बाह्यस्पर्शन इन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो। उससे आत्माको बचाओ। ब्रह्मचर्यका आनन्द तो ज्ञानस्वभाव निज आत्मामें शान्तिसे स्थिर हो जाने में है। वहां ब्रह्मचर्यका परम माहात्म्य मालूम होता है। 'वैराग्य शतक' जो भर्तृहरिका बनाया हुआ है उसमें लिखा है कि—

> किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
> स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।
> मुक्त्वैकं भवदुःखभाररचनाविध्वंसकालानलं,
> स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वाणिग्वृत्तयः॥

अर्थात् वेदों और शास्त्रोंके पढ़नेसे और घन्टों कर्म कार्यके करनेसे क्या? आत्मामें राग द्वेष दुःखकी ज्वाला, जो जल रही है, उसको नष्ट करनेमें समर्थ यह ज्ञानदृष्टि ही है। इसके अतिरिक्त आत्मा किसी भी तरह शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। बाह्यमें ये जो विषय-पदार्थ होते हैं, जिनकी प्रवृत्तिमात्रसे कोई शान्ति और सुख चाहे तो नहीं हो सकता। शांति तो एक ज्ञानभावकी भावनासे ही मिल सकती है। बाह्यस्पर्शन इन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो और अपनी आत्मामें ही परम ब्रह्मचर्यव्रतको देखो। इसका स्वरूप ज्ञानस्वभाव यह निज आत्मतत्त्व, घट-घटमें विराजमान है। क्यों उसपर दृष्टि नहीं पहुंचती? इसलिये कि हम बाह्य पदार्थोंका लक्ष्य कर करके आध्यात्मिक विचार भुला रहे हैं।

कामविजयी प्रभुकी आराधनामें उत्कर्ष—इन बाह्य पदार्थोंसे दृष्टि हटाई जाये तो आध्यात्मिक वैभव आ जाता है। एक स्थानपर ध्यानमें मग्न जिनेशके प्रति कामदेव-रति बातें करते जा रहे थे—

> कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी, हुं हुं प्रतापी प्रिये,
> हुं हुं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियां।
> मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयं,
> इत्येवं रतिकामजल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः॥

[illegible] ... लगे है, भक्त मन ही है, पूजा और भक्तिके बिना कोई नहीं रहता । कोई रुपैयाका पुजारी है, कोई कुटुम्बका पुजारी है, कोई देहका पुजारी है, तो कोई विषयोंका भगवानका पुजारी है, और कोई अपने निज ज्ञानस्वरूपका भक्त है । जिसके मिथ्यात्वका उदय होता है उसकी भक्ति मोहके विषयोंमें पहुंचती है और जिसके सम्यक्त्वका विकास होता है, उसकी भक्ति निज आत्मा स्वरूप और परमात्मामें रहती है । मैं समस्त बाह्यपदार्थोंसे भिन्न निज ज्ञानस्वभावी चैतन्यस्वरूप आत्मा, वही मैं हूं, इसीमें लीन होना सो उत्तम ब्रह्मचर्य कहलाता है । ज्ञानस्वभावकी दृष्टि स्थिर करना यह उत्तम ब्रह्मचर्यके पालनका मुख्य साधन है । जो अपनी आत्मामें ही लीन है उसको यह ब्रह्मचर्यव्रत प्राप्त होगा । अपनी ओर दृष्टि रखना, अन्य विकल्पोंमें न पड़ना ब्रह्मचर्य पालनका उत्तम उपाय है । ब्रह्मानुभवसे बढ़कर आनन्द है कहां ?

णिवडइ णिरइ महादुह भुंजइ, जो हीणु वि बंभव्वउ भंजइ ।
इय जाणेप्पिणु मण-वय-काएं, बंभचेरु पालहु अणुराएं ॥

ब्रह्मचर्य भंगका फल दुर्गति जानकर ब्रह्मचर्यके पालन करनेका आदेश—जो हीन पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतका भंग करता है वह नरकोंके महान् दुःखोंको भोगता है याने दुर्गतिको प्राप्त होता है । ऐसा जानकर हे भव्यजीवो ! मन वचन और कायसे अनुरागपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करो । समता मार्ग सीधा सादा है । वस्तुस्वरूपका सम्यग्ज्ञान करो और अपने आत्मा के दर्शन करके प्रसन्न रहो । अपने पर कुछ बोझ मत मानो । हम आपने स्वयं बोझ मान लिया है, नहीं तो कोई बोझ नहीं है । स्त्री है तो उसका भाग्य, बच्चे हैं तो उनका भाग्य, जो अन्य जन हैं उनका अपना भाग्य । किसके बोझ लदा है ? ऐसा निर्णय मनमें रखो । जो सहज होता है होने दो, पर अपनेमें विकल्प मत लावो । किसीका बोझ मुझ पर नहीं लदा है ।

[illegible]

व्यभिचार कहते हैं। उसका कारण यह है कि यह कामवासना एक बड़ा भयंकर पाप है। इस कामवासनाके रहते हुए मन बड़ा क्षुब्ध रहता है, भीतर ही भीतर खौलता रहता है। उसे ब्रह्मस्वरूपके दर्शन करना बहुत दूर हो जाता है। इस कामवासनाके पापमें बड़ी बेहोशी रहती है। इसके समान अन्य पापमें बेहोशी नहीं होती, इसी कारण इस कामवासनाके पापको व्यभिचार शब्दसे कहा गया है।

ब्रह्मचर्यसाधनाका एक सुगम उपाय गुणवृद्धसेवा—जिन्हें ब्रह्मचर्यकी साधना करनी हो उनका कर्तव्य यह है कि वे गुणवृद्धोंकी संगति करें, खोटे अभिप्राय वाले लोगोंकी संगति का त्याग करें। यहाँ वृद्ध शब्दका अर्थ बूढ़ेसे न लेना किन्तु गुणोंमें वृद्धसे लेना। ज्ञानार्णवमें वृद्धसेवाकी बड़ी महिमा बतायी है। एक स्थलपर लिखा है—तपः कुर्वन्तु वा मा वा चेद्वृद्धान् समुपासते। तीर्त्वा व्यसनकान्तारं; यान्ति पुण्यां गतिं नराः॥ कहते हैं कि यदि वृद्धोंकी सेवा की जा रही हो—गुणोंमें वृद्ध, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र क्षमा नम्रता आदिकमें बढ़े हुए लोगोंकी सेवामें यदि बहुत रहा जाय तो वह तपश्चरण करे अथवा न करे, वह समस्त विपत्तियोंके वनसे तिरकर पवित्र गतिमें प्राप्त हो जायगा। सत्संगका इतना महत्त्व है। रूढ़ि भी तो है, अगर प्रवचनसभा होती है तो कहते हैं कि भाई सत्संग हो रहा, वहाँ चलो। तो सत्संग का क्या मतलब ? सुनने वाले भी अच्छे हैं, बोलने वाला भी अच्छा है। वहाँ चर्चा आत्मगुणोंकी है, इसलिए वह सत्संग कहलाता है। जहाँ प्रवचन सुनने वाले भी सज्जन समझदार, बोलने वाला भी सुलझी हुई बुद्धिका, ऐसे लोगोंका जमाव हो तो उसका नाम है सत्संग। वहाँ कथा प्रवचन हो तो वह सत्संग कहलाता है। सत्संगमें बहुत प्रभाव है। असत्संग मत करें। चाहे पापके उदय कितने ही आयें, चाहे कष्ट कितने ही आयें मगर असत्संग मत हो। असत्संगसे बड़ी विपदा होती है।

मनका ऊधम मनोजता—आजका विषय है ब्रह्मचर्य। आत्माकी पवित्रता ब्रह्मचर्यसे है। ब्रह्मचारी सदा शुचिः। साधु जन स्नान नहीं करते, मगर वे ब्रह्मचर्यके स्नानसे अत्यन्त पवित्र हैं, अनादिसे अब तक काम, क्रोध, मान, माया, लोभमें समय बिताया, लेकिन यह मोही प्राणी अफरा नहीं। अफरा कहते हैं—पेट भर जाय, सन्तुष्ट हो जाय, और इन सबमें भी काम रोग इतना गंदा रोग है कि जिसकी कुछ जड़ भी नहीं। किसीको यदि भूख लगी है और वह तड़फ रहा है—भाई दया करना चाहिए, तो वह बता तो सकता है, फोड़ा हुआ है, रोग हुआ है, बुखार हुआ है, सिरदर्द है। हाँ भाई बेचारा दुःखी है। मगर कामवासनाकी बात देखो—वहाँ तो कोई बात ही नहीं है। केवल एक मनका ऊधम है। मनका ऊधम तो स्वयं अपवित्रता है। इसके लिए क्या करें ? अपनेको अच्छे कामोंमें बहुत-बहुत लगाये रहें सामायिक, पूजन, विधान, वन्दना, धन कमाने आदिमें। धन कमाना भ

गृहस्थोंके लिये अच्छा काम है, कोई बुरा नहीं है यदि न्यायसे कमाये, क्योंकि धर्मकी भावना है, यहाँ करना पड़ रहा है, चित्तको ठाली न रखो, उसको किसी न किसी काममें लगाये रहो। यदि यह मन ठाली रहेगा तो इसे खुराफात सूझेगी। ब्रह्मचर्य सबके लिए उपकारी चीज है—बच्चेसे लेकर वृद्ध तक। और बच्चोंको तो ब्रह्मचर्यकी क्या शिक्षा देना ? वे तो स्वयं ब्रह्मचर्यकी मूर्ति हैं। उनका तो प्रकृत्या ही सरल चित्त है। यदि ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेकी बात मनमें आती हो तो इस मनको किसी न किसी अच्छे काममें लगाये रहो। बिना किसी कामके ठाली बैठना यह तो एक शत्रु है। बच्चोंको ब्रह्मचर्यकी क्या शिक्षा देनी, अरे उन्हें पढ़ने लिखने आदिकके कार्योंमें लगाये रहो। बच्चे लोग पढ़ें लिखें, काम करें यह भी उनका एक तप है।

व्यभिचारकी कठिनता व ब्रह्मचर्यकी सुगमता व सुखदता—लोग कहते हैं कि ब्रह्मचर्य बड़ी कठिन चीज है, असिधारा है, पर बात क्या है ? ब्रह्मचर्य सरल है और व्यभिचार कठिन है। व्यभिचारी पुरुषको न जाने कितना क्षुब्ध रहना पड़ता, उसमें न जाने कितनी बेचैनी है, कितनी पराधीनता है और ब्रह्मचर्य क्या है कि खुद खुदमें रम रहे, पहले भी आनन्द, बादमें भी आनन्द। ब्रह्मचर्यमें बुद्धि स्वच्छ है, प्रभुका स्मरण है, आत्मकल्याण है, वह सरल ही है, उसका आदर करना चाहिए। पर बात एक है कि सत्संग बिना ये सब बातें कठिन हो जाती हैं। आजकलके जमानेमें तो सत्संग और स्वाध्याय इन दो का बड़ा सहारा है। प्रयोजन क्या रखो, सत्संग क्यों करना कि जो आनन्दधाम निजस्वरूप है उस स्वरूपमें मेरा उपयोग बैठ जाय, बस सारे संकट समाप्त हो जायेंगे, प्रयोजन यह है। देखो जगतमें जितने भी जीव हैं वे सब समान हैं, सबका एक स्वरूप है और जो स्वरूप है वही उनका धाम है और जो उनका धाम है उसमें पहुंचना ही धर्म है। यदि किसीको कल्याणकी तीव्र वाञ्छा हो, मेरेको तो कल्याण चाहिए, सुख चाहिए, शान्ति चाहिए, मुझे जाति, कुल, मजहब आदिकी कुछ बात नहीं सोचना है, मैं तो एक निष्पक्षरूपसे समझना चाहता हूं कि मेरा कल्याण किसमें है ? यदि निष्पक्ष बुद्धि हो जाय तो वह अपने आप अपना कल्याण कर सकता है। यह जो जाति कुल, समाज, मजहब आदिकी एक रूढ़ि, परम्परा चली आयी है वह तो आत्मकल्याणमें बाधक है। उसी कुल परम्परामें वे रचपच जाते हैं। यदि धर्म भी सच्चा हो तो उस रंगढंगके कारण भी उस सत्य धर्मकी ओट हो जाती है। जिसे अपना धर्म चाहिए, शान्तिलाभ चाहिए तो उसकी एक यह दृष्टि रहे कि मैं तो एक आत्मा हूं, यह शरीर भी मैं नहीं, ये जाति, कुल, धर्म वाला भी मैं नहीं। ये तो व्यावहारिक चीजें हैं। मुझे इनमें नहीं अटकना है। मुझे तो मात्र आत्मतत्त्वपर दृष्टि रखना है। इसमें कोई कठिनाई नहीं, स्वाधीन बात है।

असत्संगके कारण तो हम आपकी बड़ी हानि है। जो संसार भोगविषयोंसे विरक्त हों, जिनको ज्ञान प्रिय है ऐसे पुरुषोंका सत्संग करें। किसलिए करें ? अपने सहज आनन्दका जो धाम है, ब्रह्म है, निजस्वरूप है उसमें लीन होनेके लिए, उसमें रमनेके लिए सतत प्रयत्नशील रहें। यह सब मुक्त संगतामें सुलभ है। अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम्। अनादिमध्य निधनं नित्यं वाङ्मनसः परम्। यह भागवतका श्लोक है। बताओ परमब्रह्म किसे दिखता ? अनुमान तक नहीं होता। वह तो ज्ञानगम्य है। वह तो विशेषणसे भी नहीं पहिचाना जा सकता। वह तो एक अनुभवसे ही समझा जाता है। जो आदि, मध्य, अन्तरहित है, थोड़ा जरा दो चार मिनटको धैर्य धारण करके सुनो, यदि कुछ उपयोग इधर लगाओगे तो बड़ी आसानीसे वात समझमें आ जायगी, वात कुछ कठिन न लगेगी। देखो जो ॐ शब्द लिखा जाता है उसमें ५ भाग हैं ३–० — ० सबसे पहिले ३ जैसा लिखा है। उसका अर्थ है अनेक व्यवहार। उसके बाद जो डैस जैसा बीचमें डण्डा है वह है प्रमाणका प्रतीक, उसके बाद जो ० है वह शून्य निश्चयनयका प्रतीक है। यह शून्य आदि मध्य अन्तरहित है ऐसा है परम ब्रह्म, अतः उसका वाचक भी ऐसा ही है निश्चयनय। तो दो नय हो गए—निश्चयनय और व्यवहारनय। इन ३ और शून्य (०) के बीजमें जो डंडा सा लगा है वह है प्रमाणका संकेत करने वाला, माने न तो कोरा व्यवहार कार्यकारी होता और न कोरा निश्चय, अतः दोनों ही चाहिए। अगर व्यवहार और निश्चय दोनों एक साथ न जुड़े हों तब तो फिर कोई यह भी कह सकता कि अरे खूब मनचाहा जो चाहे जब चाहे खावो, यों तो फिर स्वच्छन्दता आ जाती है। व्यवहारनय, निश्चयनय व प्रमाणका उपयोग करके अब उनसे परे एक अनुभवमें आ जावो—प्रमाणनय, निक्षेप कुछ न रहो, स्वानुभूति ही रहो तब क्या होगा ? उस अनुभूतिका फल है कि सिद्ध बन जायगा। इस ॐ शब्दमें जो ऊपर अर्द्धचन्द्रसा है वह है अनुभूति, ऊपर का शून्य है वह सिद्धके स्वरूपका सूचक है। यों हम ब्रह्मस्वरूपमें पहुंचें उसके लिए हमें जो कुछ भी करना चाहिए उसके करनेमें संकोच न करें। यदि एक सरसरी निगाह करके देखें तो यह सारा संसार, ये सव मनुष्य क्या हैं ? "जगत चवेना कालका, कुछ मुखमें कुछ गोद। विषय सुखनके राजमें, मूरख माने मोद॥ जैसे यहाँ बच्चे लोग चने चवाते हैं ना तो कुछ चने गोदकी झोलीमें रखे रहते हैं और कुछ चने मुखमें रखकर चवाते रहते हैं, तो बताइये झोलीमें रखे हुए चनोंकी खैर कब तक है ? बस थोड़ी ही देरमें उनका भी नम्बर आ जाता है, वे भी चवाये जाते हैं, ठीक ऐसे ही हम आपका यह जीवन है। सभी प्राणीकालके चवेना हैं। कुछ लोग तो कालके गालमें आ चुके हैं, कुछ आ रहे हैं और कुछ आने वाले हैं। यह काल किसी को छोड़ता नहीं है। तो भाई इस जीवनका भरोसा कुछ नहीं है, इसलिए यहाँ किन्हीं बाहरी बातोंसे कुछ मौज न मानो। अद्भुत तेज है, अद्भुत आनन्द है ब्रह्मस्वरूपके बोधमें। बाकी

सब सारहीन बातें हैं। तो ऐसा जो सारभूत तत्व है उसकी ओर दृष्टि दें। भैया ! काम तो करनेका एक है—क्या, कि इस भवदुःखकी भाररचनाका विध्वंस करके एक निज ब्रह्मके आनन्द पदमें प्रवेश करें। बाकी तो सब फिजूल बातें हैं। यदि एक परमब्रह्मस्वरूपको ध्येय में न रखें तो ये वेद, स्मृति, पुराण, शास्त्र आदिक पढ़नेसे क्या लाभ है ? यदि कोई करने योग्य कार्य है तो यही एक काम है, बाकी तो सब एक रोजिगार हैं। जहाँ कुछ लेना-देना नहीं, मतलब नहीं। कभी सुखी होते, कभी दुःखी होते, कभी गरीब बनते, कभी कंगाल बनते। यों यहाँ कोई सारभूत चीज नहीं है। यहाँ सारभूत चीज तो एक स्वात्मपद है।

दसलक्षण धर्मोके क्रममें मुक्तिके उपायका संदर्शन—देखो क्या-क्या बातें अभी तक आयीं ? क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच धर्मका पालन करें याने क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंका त्याग करें। जब इन चारों कषायोंका त्याग किया तो अब एक सच्चाई आयी। अब क्या करना है ? सो इसे यों समझो कि जैसे एक आदसी कांच होता है, तो उसपर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उसके नीचे रखे हुए कागजके टुकड़े जल जाते हैं, तो जैसे कागज जलाने की शक्ति आयी किरणोंके केन्द्रित करनेसे, ऐसे ही फैले हुए उपयोगको ब्रह्मस्वरूपमें केन्द्रित करना संयम है, और इस प्रकारके नियमित रूपसे संयम कर ले, उपयोगको केन्द्रित करनेसे तप परमार्थतपन प्रकट होता है। तपसे मैल जलते हैं, तब अपने आपका आकिंचन्य स्वरूप प्रकट होता है। तो जब चारों प्रकारकी कषायोंका त्याग कर चुके तो अब क्या करें ? अब संयमी बनकर संयमको अपनायें। हम अपने ज्ञानको इस ब्रह्मस्वरूपमें जोड़ दें यही हुआ संयम। जैसे कि सूर्यकी किरणोंका जब संयम किया गया तो आधारमें तप पैदा हुआ, ऐसे ही जब अपने अन्दरसे ये चारों प्रकारकी कषायें निकल गईं तो अन्दरसे एक तप पैदा हुआ। उस तपसे शेष बचे हुए रागद्वेषादिक विकारोंका त्याग हुआ। अब रह गए अकिंचन तो फिर यह ब्रह्म अपने आपके स्वरूपमें लीन हो जायगा। यही वास्तविक ब्रह्मचर्य है।

संसारसंकटोंसे छूटनेका निर्णय हो जानेपर छुटकारा पानेकी अवश्यंभाविता—यदि अपने आपके चित्तमें यह जिज्ञासा हुई है, ऐसा संकल्प किया है कि मुझे तो संसारके दुःखोंसे छूटना ही है तो वह नियमसे संसारके दुःखोंसे छूट जायगा। सच बात तो यह है कि अब तक चित्तमें यह बात नहीं समायी कि मुझे तो संसारके दुःखोंसे छूटना है। आप लोग सोचेंगे कि यह क्या कहा जा रहा है ? सभी लोग दुःखोंसे छुटकारा चाहते हैं और बताया यह जा रहा कि अभी तक इन्होंने यह संकल्प ही नहीं किया कि मुझे तो संसारके संकटोंसे छूटना है। यदि संकल्प किया होता, मनमें यह बात समायी होती कि मुझे संसारके दुःखोंसे छूटना है तो संसार में फिर उनका यह जन्ममरण न चलता। जिस चाहे घटनामें अनेक प्रकारकी कल्पनायें करके दुःख मानने लगते हैं, और भी अनेक संसारकी घटनायें हैं जिनसे अपना कोई मतलब नहीं।

बाह्य पदार्थ हैं, कर्मोंकी चीज है। ये तो परिणमन हैं [illegible], मेरा [illegible], इनसे मेरा कुछ बनता नहीं। संसारमें दुःख है क्या चीज? अपने [illegible] आनंद, [illegible], रमणसे च्युत होकर बाह्य पदार्थोंकी ओर उपयोग। [illegible] दुःख। दुःख नाम तो उसीका है कि जिसमें क्षोभ हो, आकुलता हो। आकांक्षाओंमें [illegible] उपयोग लगता है उनको नियमसे दुःख है। चाहे वह पदार्थ [illegible], [illegible] अपनी बुद्धिमें ऐसा बेहोश है यह प्राणी कि वह अपने दुःखके कारणको नहीं पहिचानता। सब दुःखोंकी जड़ एक प्रेम ही तो है, और उस प्रेममें ऐसा मुग्ध है यह जीव कि अपने वास्तविक स्वरूपको भूल गया।

वस्तुस्वरूपके विरुद्ध विचार बनानेकी विपदाका देखा-जोखा देख लेनेका कर्तव्य—भैया! खूब सावधानीसे सुनो और अपने चित्तमें उतारो कि मैंने अपने आपके श्रद्धान ज्ञान और आचरणसे च्युत होकर किसी बाह्य पदार्थमें यह अभिलाषा रखी है कि इससे मेरा हित है, यह मुझे सुख देगा और उस ही ओर आकर्षण होता है। यह जो भीतरमें उपयोग स्वसे हटकर बाह्यकी ओर लगा है यही है विपदा, यही है संकट। पुण्यका उदय है तो कुछ लग रहा होगा ऐसा कि मेरेको क्या संकट है? ये तो मामूलीसी बातें हैं? हाँ उदय है अच्छा। मिल गए हैं विषयसाधन, मगर ये आग हैं, संकट हैं, क्लेश हैं। उनसे छुटकारा पानेका जो उपाय है वह है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। चित्तमें ऐसी भावना जगनी चाहिए और ऐसी हिम्मत बनाना चाहिए कि ये बाह्यपदार्थ, त्रिलोक सम्पदा, समस्त वैभव ये सब कुछ मेरे लिए कुछ नहीं हैं, मेरा उनसे कोई सम्बंध नहीं, उनसे मेरेमें कुछ आता जाता नहीं। भला वस्तुका स्वरूप तो परखो, प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपमें है, अपने स्वरूपमें परिणमन करता है, अपने स्वरूपमें ही सदा काल रहता है। यदि ऐसा न हो तो दुनियामें फिर कोई व्यवस्था ही न बन पायगी। जैसे देखो—कि यह घड़ी है और यह चौकी है तो चौकी चौकीमें है, घड़ी घड़ीमें है, सब आप जान रहे होंगे। घड़ीका कोई भी परिणमन चौकीमें नहीं आता और चौकीका कोई परिणमन घड़ीमें नहीं आता। ये दोनों ही चीजे अलग-अलग हैं, दोनोंका अपना अपना अलग-अलग परिणमन है। तो ऐसे ही जगतमें जितने भी जीव हैं वे सब स्वतंत्र हैं, उनका उनमें परिणमन है। ये मेरेमें कुछ नहीं कर सकते।

दृष्टान्तपूर्वक वस्तुस्वातन्त्र्यका प्रकाश—कुछ ऐसा पूछा जा सकता है कि लो गुरु पढ़ाते हैं, मास्टर पढ़ाता है, लड़कोंको कुछ ज्ञान मिलता है। कैसे कहा जा रहा कि कोई किसीका कुछ नहीं करता। यहाँ भी गुरु आपका कुछ नहीं करते। मास्टर बच्चोंका कुछ नहीं करता, गुरुको अपनेमें एक करुणा उत्पन्न हुई है तो वह अपने ख्यालके कारण अपनी चेष्टा करता है, उन शिष्योंमें ऐसी समझ है कि वे अपने आपकी समझ द्वारा अपने आपमें ज्ञानप्रकाश

पते हैं, हाँ ये मास्टर वगैरह निमित्त जरूर हुए, पर ये किसीमें कोई जबरदस्ती नहीं करते । अगर मास्टर बच्चोंको ज्ञान देने लगें तो १०, २०, ५० शिष्योंको ज्ञान देनेके बाद मास्टर तो कोरा रह जायगा । पर ऐसा नहीं होता । कक्षाके अन्दर जितने भी विद्यार्थी हैं, सबकी बुद्धि अलग-अलग है । फिर बालकमें जैसी योग्यता है उसरूप वह अपना विकास कर लेता है । तभी तो देखा जाता है कि कक्षामें कोई बालक बड़ा बुद्धिमान निकलता है और कोई कम । तो ऐसे ही आप सर्वत्र समझ लीजिए । इस लोकमें आप सर्वत्र अकेले हैं, अकेले ही रहते हैं, अकेले ही अपने आपमें परिणमते हैं, तो इसी तरह अपनी बात सोचो ना । जब जगतमें किसी दूसरे जीवसे मेरा कुछ सम्बंध नहीं, केवल एक कारणकलापवश एक जगह संयोग हुआ है तो उससे मेरा क्या भला होगा ? अपना भला होगा अपने रत्नत्रय धर्मसे । परख लो बाहरमें बहुत भटके अब तक, पर कहीं शान्ति न मिली । अब एक बार अपने आपके इस ज्ञानप्रकाशमय आनन्दस्वरूप निज आत्मउपवनमें आयें और अपने आपमें परमविश्राम पायें । संसारके दुःखोंसे छूटना है तो विश्वास बनाओ अपने आत्मस्वरूपका । बात असलमें यह है कि दुःख नामकी चीज तो यहाँ कुछ है नहीं, पर मानते सभी हैं बड़ा दुःख ।

ज्ञानकलाके उपयोगमें क्लेशका अभाव—एक घटना है बदरवास नामक ग्रामकी । वहाँ एक हलवाई था, वह बड़ा निर्मोही प्रकृतिका था । एक बार उसका लड़का अचानक ही गुजर गया, तो उसकी सहानुभूति प्रकट करने बहुतसे लोग आये, सभी वहाँ आनेपर रोने जैसी शक्ल बना लें । देखो यह भी सहानुभूति प्रकट करनेकी एक पद्धति है । मान लो कोई किसी दूसरे गाँवसे आ रहे हों, चाहे वे रेलगाड़ीमें रास्तेमें गप्पसप्प करते हुए, तास खेलते हुए आयें, पर जब उसके घरके निकट या उस गाँवके पास पड़ौसमें आ जाते हैं, तो एक रोने जैसी शक्ल बना लेते हैं, तो ऐसे ही बहुतसे लोग सहानुभूति प्रकट करने आये । सभी लोग तो रोते थे, पर वह हँसता था । वह जानता था कि अरे जो आया है वह तो एक दिन जायगा ही, फिर उसके पीछे रोनेसे फायदा क्या ? यदि ऐसा भाव सम्यक्त्वपूर्वक हो तो ऐसी बात तत्त्वज्ञानी पुरुषमें आ सकती है । एक तत्त्वज्ञानी पुरुष लोगोंको तो ऐसा ही दिखता है कि वह फँसा बहुतसे कार्योंमें फँसा है, व्यस्त है, पर उसकी दृष्टि बड़ी निर्मल रहती है । वह किये जाने वाले उन समस्त कार्योंको एक झंझट समझता है । वह प्रधानता देता है अपने आत्महितके कार्यको । उसकी दृष्टिबदल कर सकने वाला कोई नहीं है । आत्मस्वरूपके दृष्टिको ऐसी कला उसके उत्पन्न हुई है कि जिस कलाके आधारपर वह समस्त दुःखोंसे छुटकारा पा सकता है ।

दृष्टान्तपूर्वक अन्तस्तत्त्वमें मग्न होनेकी कलाका स्मरण—जैसे यमुना नदीमें तैरने वाला कछुवा पानीसे ऊपर अपनी चोंच निकाले हुए तैरता रहता है । तो उसकी चोंचको चोंटनेके लिए अनेक पक्षी उसपर मंडराते रहते हैं । वह बेचारा कछुवा उन पक्षियोंसे हैरान

होकर इधर उधर भागता फिरता है, दुःखी होता फिरता है। पर उसे कोई समझा दे कि अरे कछुवे, तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिसके उपयोगसे तेरे सारे संकट दूर हो सकते हैं। वह कला क्या है? बस पानीमें ८ अंगुल अपनी चोंच डुबा लो—फिर सैकड़ों पक्षी भी तेरा क्या कर सकेंगे? ठीक ऐसे ही हम आपपर अनेक उपद्रव छाये हैं, बड़ी विपत्तियोंसे घिरे हुए हैं, पर इन सारी विपत्तियोंसे बचनेके लिए एक जरासा ही तो उद्यम करना है, क्या, कि अपने ज्ञानसागरमें जरा डुबकी तो लगा दें, बस सारे संकट एक साथ ही समाप्त हो जायेंगे। तो भाई इन समस्त संकटोंसे छुटकारा प्राप्त करनेका सर्वप्रथम काम है आत्मविश्वास। अभी तक आपने अनेक पुरुषार्थ किए, बाहरी-बाहरी अनेक धारणायें बनाकर अनेक गर्व अनुभव किये—मेरे पास इतना वैभव है, मेरे पास इतने मकान हैं आदि, लेकिन तेरे ये सब अहंकार व्यर्थके थे। जैसे कोई साँड़ घूरेको अपनी सींगोंसे उलीचता है और एक बड़ी अहंकार भरी मुद्रा बनाता है ऐसे ही यह मोही प्राणी भी जरा-जरासी बातोंमें गर्व करता है। तो अभी तक न जाने कितने-कितने गर्व किए, पर वह तो एक घूरेका उलीचना जैसा रहा। उसमें इस जीव के लिए कोई बड़प्पनकी बात नहीं है। ऐसा व्यर्थका गर्व भी करें और चाहें कि समस्त दुःखों से हमें छुटकारा प्राप्त हो जाय तो यह कैसे हो सकता है? बल्कि फल उसका यह मिलता है कि ज्यों-ज्यों दुःखसे छुटकारा पानेका बाहरमें पौरुष बनाते हैं त्यों-त्यों दुःखोंमें और बढ़ जाते हैं। [illegible] कि देखो मैंने १० वर्ष पहिले ऐसा विचार किया था कि मेरी ऐसी स्थिति हो [illegible] ये काम निपट जायें, फिर मैं इन सारे झंझटोंसे निवृत्त होकर आत्मसाधनामें [illegible] पर [illegible] उल्टा पाते क्या हैं कि अपनेको पहिलेसे भी बहुत अधिक फंसा हुआ पाते हैं। [illegible] इन संकटोंसे छुटकारा कैसे हो?

इसलिए ये मिथ्या हैं। दूसरी बात यह है कि वह व्यक्ति जान तो रहा सब, पर उनका वास्तविक स्वरूप नहीं समझ रहा। इसमें क्या शक्ति है, इसमें क्या गुण है, पर्याय है आदि, ये कोई बातें उसे नहीं मालूम हो पातीं जिसके सम्यक्त्व नहीं है। सम्यग्ज्ञान सहित जो आचरण होगा, जो रमण होगा, अपने आपकी दृष्टि बनेगी वह तो एक अद्भुत चीज होगी।

दुःखमुक्तिका उपाय परमार्थब्रह्मचर्यकी वृत्ति—दुःखोंसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय मात्र यही है कि दुःखरहित सबसे निराले ज्ञानमात्र, स्वयं उत्तरदायी, जिसपर किसीका भार नहीं, ऐसे इस परमात्मस्वरूपको निरखो, और ऐसा ही ज्ञान बनाओ और ऐसा ही अपना उपयोग रमाओ, यह है दुःखोंसे सदाके लिए छुटकारा पाना। इसके अतिरिक्त और क्या उपाय बतायें ? जो भी अन्य उपाय बतायेंगे वे सब बाहरी-बाहरी उपाय होंगे, उन उपायोंमें आप थोड़ी देरको तो शान्ति अनुभव करेंगे, पर थोड़ी ही देरमें वहीका वही दुःख सामने खड़ा हो जायगा। मान लो आपने किसीको घर दिला दिया, किसीका रोजिगार लगा दिया, किसीका अन्य कोई काम बना दिया तो कहीं इतने मात्रसे उसके सारे दुःख तो न मिट जायेंगे और न कोई दुःख सदाके लिए मिटेगा। सर्व दुःखोंसे छूटनेका एक मूल उपाय है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति, जिसकी आप भावना कर रहे हैं। तो अब सोच समझकर अपने कदम सही दिशाकी ओर बढ़ाओ। मुझे सही ज्ञानार्जन करना है, सम्यग्ज्ञानका प्रकाश पाना है, उसमें ही मेरा वास्तविक बड़प्पन है। तो अपने आपका कल्याणका उपाय बनाना चाहिए। अब अधिक न कहकर केवल इतना ही कहना है कि अपने आपके इस ज्ञानमूर्ति निज परमब्रह्मका आदर करें तो नियमसे सारे दुःख छूटेंगे। यही परम ब्रह्मचर्य सहज आनन्दका धाम है।

॥ धर्म प्रवचन समाप्त ॥

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः प्रास्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरसमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दमुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

भागवत ६

प्रवक्ता :—
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक —
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्यमन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें ।

प्रथम संस्करण]
१०००
सन् १९७१
[मूल